बी.कॉम. तृतीय वर्ष हिन्दी

प्रश्नपत्र XV : मानविकी वर्ग
हिन्दी भाषा, साहित्य एवं साहित्येतिहास
अध्ययन सामग्री : 1(क-ख)



मुक्त शिक्षा विद्यालय
(मुक्त शिक्षा परिसर)
दिल्ली विश्वविद्यालय

हिन्दी - विभाग
सम्पादक : डॉ. मनीराम यादव

प्रश्नपत्र- xv : मानविकी वर्ग
हिन्दी भाषा, साहित्य एवं साहित्येतिहास

अध्ययन सामग्री : 1 (क-ख)

अनुक्रम

(क) भाषिक अभिव्यक्तियाँ

(i) पल्लवन — डॉ. दिनेश कुमार गुप्ता
(ii) अनुच्छेद विश्लेषण — ''
(iii) अनुवाद (अंग्रेजी से हिन्दी) — डॉ. रामप्रकाश
(iv) यात्रा–वर्णन, रोचक घटना का वर्णन और संस्मरणात्मक–लेखन — डॉ. दिनेश कुमार गुप्ता
(v) समाचार पत्र के सम्पादक के नाम पत्र — ''

(ख) साहित्यिक पाठ

(i) खण्ड काव्य : रश्मिरथी : (रामधारीसिंह 'दिनकर') — डॉ. रमेशकुमारी खनेजा
(ii) उपन्यास : महाभोज (मन्नू भण्डारी) — डॉ. हर्षबाला शर्मा

(ग) नाटक : कोणार्क : (जगदीशचन्द्र माथुर) — डॉ. रमेशकुमारी खनेजा
(i) कोणार्क की ऐतिहासिकता — डॉ. मीनाक्षी व्यास
(ii) पात्र – योजना — डॉ. रमेशकुमारी खनेजा
(iii) कोणार्क की संवाद योजना और भाषाशैली — डॉ. मीनाक्षी व्यास
(iv) मूल संवेदना — डॉ. दिनेश कुमार गुप्ता
(v) अभिनेयता — डॉ. मीनाक्षी व्यास
महत्त्वपूर्ण स्थलो की व्याख्या — डॉ. दिनेश कुमार गुप्ता

सम्पादक :

डॉ. मनीराम यादव

मुक्त शिक्षा विद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय
5, कैवेलरी लेन, दिल्ली–110007

शिक्षा-सत्र 2012-2013 (8000 प्रतियाँ)

© मुक्त शिक्षा विद्यालय

कार्यकारी निदेशक, मुक्त शिक्षा विद्यालय, 5 कैवेलरी लेन, दिल्ली - 110007 द्वारा प्रकाशित एवं
शाहदरा प्रिंटिंग प्रैस, K-18 नवीन शाहदरा, दिल्ली - 110032 द्वारा मुद्रित।

(क) भाषिक अभिव्यक्तियाँ

1. पल्लवन

डॉ० दिनेश कुमार गुप्ता
रीडर, हिंदी-विभाग,
मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

पल्लवन शब्द से अभिप्राय विस्तार से है। लेखन-कला के संदर्भ में इसका अर्थ है किसी दिए गए विषय का विस्तार करना। पल्लवन के लिए किस प्रकार के विषय उपयुक्त रहते हैं इसका कोई बंधा-बंधाया नियम नहीं है। इसका कारण यह है कि लेखन-कला में दक्ष व्यक्ति किसी भी विषय को पल्लवित कर एक रम्य रचना का रुप प्रदान कर सकता है। इसके विपरीत जिसे लेखन-कला में दक्षता प्राप्त नहीं है उसे किसी भी विषय पर लिखना पहाड़ का बोझ उठाने जैसा लगता है। फिर भी विभिन्न परीक्षाओं मे पूछे गए पल्लवन सम्बन्धी प्रश्नों को ध्यान में रखने के बाद हम यह कह सकते हैं कि परीक्षकों की प्रवृत्ति प्रायः तीन प्रकार के विषय को पल्लवित कराने की रही है–

(क) पल्लवन के लिए कोई सूत्र, वाक्य अथवा लोकोक्ति दे देना। यथा– 'थोथा चना बाजे घना', 'का बरखा जब कृषि सुखाने', 'समरथ को नहिं दोष गुसाई', 'पराधीन सपनेहुं सुख नाही', 'सबै दिन होत न एक समान', 'निन्दक नियरे राखिए', 'करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान'। इस प्रकार के विषयों का पल्लवन करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–

(1) सर्वप्रथम सूत्र वाक्य अथवा लोकोक्ति का अर्थ भली-भांति समझ लेना चाहिए। जिस सूत्र, वाक्य अथवा लोकोक्ति का अर्थ ज्ञात न हो तो उस विषय को पल्लवन के लिए हर्गिज नहीं चुनना चाहिए-आखिर जिस विषय का आप अर्थ नहीं जानते उसका पल्लवन क्या करेंगे। यह तो अंधेरे में तीर मारने की तरह होगा।

(2) अर्थ समझ लेने के बाद यह निश्चय करना चाहिए कि आप उस सूत्र, वाक्य अथवा लोकोक्ति को सिद्ध करना चाहते हैं अथवा असिद्ध। यद्यपि सामान्यतः पल्लवन के लिए दी गई लोकोक्ति वाक्य अथवा सूत्र को सिद्ध करना ही अभीष्ट होता है किन्तु यदि आपको ऐसा लगता है कि आप उसे प्रभावशाली ढंग से असिद्ध कर सकते हैं तो फिर आप उसे असिद्ध ही कीजिए।

(3) इसके बाद वे सभी तर्क सोचिए जो आप अपने मंतव्य की पुष्टि में प्रस्तुत करना चाहते हैं। इसके साथ ही सम्भावित विरोधी तर्कों को पुष्ट करने के लिए दिए जाने वाले आंकड़ों, दृष्टान्तों आदि के बारे में सोचना भी मत भूलिए।

(4) सब कुछ सोचने के बाद उन्हें एक क्रम में बाँधते हुए कागज पर एक रूपरेखा के रूप में उतार लीजिए।

(ख) कभी-कभी पल्लवन के लिए घटना-प्रधान विषय दे दिया जाता है। यथा– माल रोड पर बस दुर्घटना, उत्तर प्रदेश में भयंकर बाढ़, बिहार में भीषण सूखा आदि। ऊपर से तो ऐसे विषयों का पल्लवन करना अत्यन्त सरल प्रतीत होता है किन्तु वास्तव में इन पर लिखना भी कोई सरल काम नहीं है। इसका कारण यह है कि ऐसे विषयों पर लिखते समय सबसे पहले तो विषयानुसार आंकड़े पता होना चाहिए और यदि आंकड़े पता हो तो फिर उसे एक ऐसा रूप देने की जरूरत होती है कि वह जनसमाज की संवेदना को झकझोर सके और अपेक्षित जानकारी उपलब्ध करा सके।

(ग) पल्ल्वन के लिए कल्पना की भरपूर गुंजाइश वाले भावात्मक विषयों का, यथा– सूर्योदय का दृश्य, प्राकृतिक सुषमा तथा अमूर्त भावों को व्यक्त करने वाले विषयों यथा सहिष्णुता, धन, धर्म अथवा विविध प्रकार के सामान्य विषय देने की भी परम्परा रही है। ऐसे विषय का पल्लवन करते समय भी संयम से काम लेना चाहिए। इस बात का हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि पल्लवित रूप कथ्य, आकार-प्रकार एवं शैली-शिल्प की दृष्टि से एक प्रभावी रचना के रूप में उभर आए।

रचना-प्रकिया

पल्लवन के लिए कोई भी विषय दिया जा सकता है और प्रत्येक विषय पल्लवित किया जा सकता है। पल्लवित विषय का रूप क्या होगा, यह लेखक के अध्ययन, रुचि, कल्पना, प्रवणता, भाषाधिकार आदि बहुत-सी बातों पर निर्भर करता है। यही कारण है कि एक ही विषय पर विभिन्न व्यक्तियों द्वारा लिखी गई रचनाएँ एक दूसरे से सर्वथा भिन्न होती हैं। कोई

रचना तथ्यों से भरपूर होती है तो कोई काल्पनिक उड़ान से। किसी से लेखक का अध्ययन व्यक्त होता है तो किसी से उसका विनोदी व्यक्तित्व। यही कारण है कि पल्लवन के सम्बन्ध में किसी प्रकार के आत्यन्तिक नियम नहीं बनाए जा सकते है। इस सम्बन्ध में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि आप पल्लवन के लिए उसी विषय का चयन कीजिए जो आपकी रुचि के अनुरूप पड़ता है। ऐसा होने पर ही उसके सम्बन्ध में आपकी सहज प्रतिक्रिया मुखरित हो सकेगी और सोचने का सिलसिला जुड़ पाएगा। किसी भी विषय का पल्लवन करने के लिए यह बहुत जरूरी है कि आप उस पर निर्बाध रूप से सोच सकें, आपके मानस-पटल पर उस विषय में विचार इकट्ठा होने लगेंगे। यदि ऐसा नही होता तो एक पंक्ति लिखना भी कठिन हो जाता है।

विचार-बिन्दुओं को कागज पर लिखना – विषय-विशेष पर सोचना शुरू करने के बाद आप विभिन्न विचार बिन्दुओं को एक कागज पर उतारते जाइए। यह केवल इसलिए जरूरी नहीं है कि लिखते समय कोई विचार आपके मन से उतर सकता है और लिखते-लिखते सहसा किसी विचार के स्मृति-पटल से इधर-उधर हो जाने पर लिखने का सारा सिलसिला टूट जाता है बल्कि इसलिए भी जरूरी है क्योंकि मन रूपी सागर में कभी-कभी ऐसी विचार-तरंग भी तरंगायित होने लगती है कि उनमें परस्पर किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता। इस सम्बन्ध-विहीनता के फलस्वरूप रचना के पैनेपन तथा प्रभाव-क्षमता में कमी आती है । लेकिन जब विचार–बिन्दू कागज पर उतार लिए जाते हैं तब प्रभाव क्षमता को कम करने वाले सर्वथा असंपृक्त विचार–बिन्दुओं को पृथक करने में सरलता रहती है ।

विचार-बिन्दु के अनुरूप अतिरिक्त सामग्री सोचना – किसी विषय का पल्लवन करने के लिए केवल विचार बिन्दु सोच लेना ही पर्याप्त नहीं है अपितु विभिन्न विचार-बिन्दुओं को एक सूत्र में बाँधने तथा एक सुगठित प्रभावी अनुच्छेद का रूप देने के लिए अतिरिक्त सामग्री संजोने की भी जरूरत होती है। यह अतिरिक्त सामग्री विभिन्न प्रकार की हो सकती है। इसमें विषय से सम्बद्ध आंकड़े भी हो सकते है तथा दृष्टान्त भी। विषय-विशेषज्ञों के विचारों को व्यक्त करने वाले उद्धरण भी हो सकते हैं तथा कोई सूक्ति या नीति वाक्य भी।

सामग्री संजोना – सामग्री सोचने तथा कागज पर उसे सांकेतिक रीति से शीर्षक रूप से उतार लेने के बाद उसे संजोने अर्थात् एकरूपता देने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। कौन-कौन से विचार-बिन्दुओं का प्रयोग करना है तथा कौन से पूरी विचारधारा से मेल नहीं खाते, कितने आंकड़े, दृष्टान्त आादि प्रमाण के रूप में दिए जाने हैं और कितने नही, ये पूरे विस्तार से दिए जाएंगे, या इनका उल्लेख भर होगा आदि का निर्णय करना वास्तव में सामग्री का समुचित संयोजन करना ही है। कथ्य अथवा सामग्री के सम्बन्ध में इस प्रकार सोचने से यह लाभ होता है कि विषय की एक स्पष्ट एवं निर्भ्रान्त रूपरेखा तैयार हो जाती है ।

पल्लवित सामग्री के आकार-प्रकार का निर्णय करना – यह एक विचारणीय विषय है कि रूपरेखा को एक रम्य रचना के रूप में ढालते समय उसका आकार-प्रकार क्या रखा जाए। सामान्यतः किसी भी विषय को एक ही अनुच्छेद में पल्लवित करने की प्रथा है। इस अनुच्छेद का आकार क्या होना चाहिए इसका भी कोई बंधा-बंधाया नियम नहीं है। यदि परीक्षक ने शब्द-संख्या निश्चित कर दी हो तब तो विषय का पल्लवन उतने ही शब्दों में करना चाहिए किन्तु यदि शब्द-संख्या निश्चित न की गई हो फिर अनुच्छेद का आकार-प्रकार दस बारह पक्तियों का होना चाहिए तथा प्रत्येक पंक्ति में चौदह-पन्द्रह शब्द होने चाहिए। दूसरे शब्दों में पल्लवन 100-150 शब्दों तक सीमित होना चाहिए। यदि कथात्मक शैली का आश्रय लिया गया हो तो शब्द-संख्या थोड़ी बढ़ भी सकती है। लेकिन एक अनुच्छेद तीन सौ शब्दों से अधिक बड़ा नही होना चाहिए। इसका कारण यह है कि अनुच्छेद के आवश्यकता से अधिक बड़े हो जाने से कथ्य के बिखर जाने की सम्भावना बनी रहती है और इस प्रकार पाठक पर उसका अपेक्षित प्रभाव नहीं पड़ता।

कुछ लोग तीन-तीन, चार-चार पंक्तियों के छोटे-छोटे एकाधिक अनुच्छेद लिख देते है। लेकिन ऐसा करना ठीक नहीं है। इसके दो कारण हैं– प्रथम तो यह है कि ऐसा करने से रचना के बिखर जाने का भय बना रहता है और दूसरा यह कि पाठक को ऐसा लगता है कि लेखक में किसी एक विचार बिन्दु पर जमकर सोचने-समझने एवं लिखने की क्षमता का अभाव है।

विषय-प्रवर्तन के सम्बन्ध में निर्णय लेना – रचना के आकार-प्रकार का निर्णय कर लेने के बाद अगला महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि विषय-प्रवर्तन किस समय किया जाए? इस सम्बन्ध में भी कोई आत्यन्तिक नियम नहीं बनाए जा सकते। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि इस सम्बन्ध में तीन शैलियों का प्रचलन है। कतिपय विद्वान पहले वाक्य में ही विषय-प्रवर्तन करते हुए यह संकेत दे देते हैं कि परवर्ती वाक्यों मे क्या होगा, तो कुछ अन्य प्रारम्भ की तीन-चार पंक्तियों में पल्लवित

किए जाने वाले विषय की भूमिका के बाद पन्द्रह-सोलह पंक्तियों में विषय का प्रतिपादन करते हैं। कुछ विद्वान यह मानते हैं कि एक संक्षिप्ताकार रचना-रूप होने के कारण इसमें भूमिका-भाग, मध्य-भाग एवं उपसंहार की पृथक्-पृथक् व्यवस्था करने की गुंजाइश नहीं है। इस रचना-रूप में तो कथ्य पूरे अनुच्छेद में इस प्रकार गुंथा हुआ होना चाहिए कि एक शब्द भी इधर-उधर करने से पूरी रचना का सौंदर्य क्षत-विक्षत हो जाए। निश्चय ही यह दृष्टिकोण समीचीन प्रतीत होता है।

रूपरेखा को एक स्वतःपूर्ण (Self Contained) प्रभावी रचना के रूप में ढालना – रूपरेखा सम्बन्धी कार्य पूरा हो जाने, आकार-प्रकार के बारे में निर्णय ले लेने तथा विषय-प्रवर्तन के बारे में सोच लेने के बाद रूपरेखा को एक स्वतःपूर्ण प्रभावी रचना के रूप में ढालने का प्रयत्न करना चाहिए। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि रूपरेखा का विस्तार करते हुए उसे एक स्वतःपूर्ण अनुच्छेद के रूप में लिख लेना चाहिए। लिखते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसमें बहुत कांट–छांट न की जाए अन्यथा उसकी स्वच्छ प्रतिलिपि तैयार करनी पड़ेगी। परीक्षा-भवन में ऐसा करना सम्भव नहीं होता। क्योंकि वहाँ तो प्रत्येक मिनट बहुत कीमती होता है।

लिखित अनुच्छेद का पुनरीक्षण करना – पल्लवन के लिए दिए गए विषय की रूपरेखा बनाकर उसे एक स्वतःपूर्ण रचना के रूप में ढाल लेने के बाद उसका एक बार ध्यान से पुनरीक्षण कर डालना चाहिए। पुनरीक्षण करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–

(1) सभी महत्त्वपूर्ण विचार-बिन्दुओं का उपयोग हो गया है अथवा नहीं। कहीं कोई ऐसा विचार-बिंदु तो नहीं छूट गया है जिससे रचना बिखरी हुई अथवा प्रभावहीन लगती हो। इसके साथ ही यह भी देखना चाहिए कि पूरी रचना में कोई बात ऐसी न हो जिससे अभिप्रेत अर्थ की संगति न बैठती हो या फिर वह उसके विरोध में पड़ती हो।

(2) जब कोई सूत्र, वाक्य, लोकोक्ति आदि पल्लवन के लिए दी जाती है तब वह पूरी सामग्री का निष्कर्ष होती है। अतएव ऐसे विषयों का पल्लवन करने के बाद देखना चाहिए कि पल्लवित सामग्री उसके अनुरूप है अथवा नहीं। यदि पल्लवित सामग्री सूत्र, वाक्य, लोकोक्ति आदि के अनुरूप न बैठ रही हो तो फिर उसे काट-छांट कर उसके अनुरूप कर लेना चाहिए।

(3) लिखित सामग्री का पुनरीक्षण करते समय यह भी देखना चाहिए कि वर्तनी, शब्द-प्रयोग, वाक्य-विन्यास तथा विराम-चिह्नों का सही प्रयोग हुआ है अथवा नहीं।

(4) अन्ततः यह देखना चाहिए कि पूरी रचना एक सुगठित अनुच्छेद का रूप ले पाई है अथवा नहीं।

पल्लवन के वास्तविक रूप को उद्घाटित करने के लिए विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखे गए कतिपय उदाहरण नीचे दे रहे हैं।

उदाहरण

1. सहिष्णुता

शिक्षा का सर्वोच्च फल है – सहिष्णुता। प्राचीनकाल में लोग अपने-अपने धर्म और अपनी-अपनी मान्यताओं के पीछे जूझते थे, युद्ध करते थे और प्राण गंवाते थे। यह बहुत बड़े साहस की बात मानी जाती थी। कितने ही युग बीत गये, मानव को एक दूसरे प्रकार के साहस की शिक्षा पाने में – वह साहस जो अपने अन्य भाइयों की धार्मिक भावनाओं का और उन्हें अपनी श्रद्धा के अनुरूप अपनी मान्यताओं को पालने के हक को मान देता है। समाज का मूल आधार सिद्धांत ही 'सहिष्णुता' है यही भावना उन सर्वोत्तम विचारों को जीवित और जागृत रखती हैं जो मानव जाति के द्वारा सोचे विचारे गये हैं। न किसी तूफान के प्रवाह ने, न बिजली के तार ने, न नगरों और मन्दिरों को ध्वस्त कर देने वाले प्रकृति के प्रचण्ड कोप ने ही मानव-जाति को उस हद तक उत्कृष्ट मानवों और बहुमूल्य विचारों से वंचित किया है, जिस हद तक उसकी असहिष्णुता ने इन्हें नष्ट किया है।

2. सच्चा सत्याग्रही

सत्याग्रही झूठी प्रतिष्ठा के फेर में नहीं रहता। अपनी विचार प्रणाली या योजना में गलती मालूम होने पर, वह चाहे जितना आगे बढ़ गया हो तो भी ठहर जाने में, अथवा जो 'पीछे हटना सा' जान पड़े वैसा आचरण करने और अपनी भूल कबूल करने में, तथा जो हानि हो उसे सहन कर लेने या उसके लिए उचित प्रायश्चित स्वीकार करने में वह संकोच नहीं करता, न ही कोई अपमान समझता है, क्योंकि किसी भी दूसरे विचार, या कारण को सत्याग्रही सत्य के सामने कम

महत्त्व की वस्तु समझता है। इससे उसका इष्ट-कार्य बिगड़ता नहीं बल्कि बनता है, और बाद में यह सिद्ध होता है कि उसका 'पीछे हटना' दरअसल 'आगे बढ़ना' था।

3. मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य और समाज का पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा है। दोनों एक दूसरे से पृथक नहीं किये जा सकते। मानव के बिना समाज नहीं है और समाज के बिना मानव का जीवन दुर्लभ है, इस प्रकार की बातें हम प्रायः सुनते हैं और पढ़ते हैं और विचारक भी सदा से यह प्रश्न पूछते आ रहे हैं कि मानव बड़ा है या समाज? मानव के लिए समाज बना है अथवा समाज की रक्षा के लिए मानव को अपने सर्वस्व की आहुति दे देनी चाहिए? अन्ततोगत्वा समाज चरम लक्ष्य है अथवा मानव? इस पर भी देश-विदेश के विद्वानों ने चिरकाल तक गहरा विचार किया है और भिन्न-भिन्न उत्तर दिये हैं। एक समय ऐसा रहा जबकि समाज को अधिक महत्त्व दिया गया और राज्य, समाज या बिरादरी के आगे मानव का कोई अस्तित्व नहीं था। फिर इस विचार ने जोर पकड़ा कि नहीं, समाज की रचना अन्ततोगत्वा मानव के लिए ही तो हुई थी। राज्य, समाज, पंचायत या बिरादरी आदि सभी का मुख्य उद्देश्य मानव की नैतिक उन्नति के लिए ही सब प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करना है।

4. पुस्तकों का भी जीवन है

पुस्तकें भी जीती हैं। ऐसे व्यक्तियों का अभाव नहीं, जो इस पर विश्वास नहीं करते। उनके अनुसार पुस्तकें प्राणहीन वस्तु—कड़ी जिल्द में सावधानी के साथ बद्ध छपे कागज का संग्रह-मात्र है, जहाँ एक विचारवान मनुष्य इसे पड़ा रहने के लिए छोड़ देता है। लेकिन ऐसी धारणा वाले व्यक्तियों की संख्या बहुत अधिक नहीं है। सच तो यही है कि पुस्तक लेखक के व्यक्तित्व का प्राण होती है। इसी से वह सांसारिक अमरत्व प्राप्त करता है। भले ही उसकी भौतिक काया बहुत पहले कब्र में चली गई हो, किंतु वह अपनी लिखी हुई वस्तुओं में जीता है और युग-युगांतर तक उसकी आवाज पाठकों को सुनाई पड़ती रहती है। यही एक कारण है जिससे हम कह सकते हैं कि पुस्तकें जीती हैं।

5. धन

धन नदी के समान है। नदी सदा समुद्र की ओर अर्थात् नीचे की ओर बहती है। इसी तरह धन को भी जहाँ आवश्यकता हो वहीं जाना चाहिए, परन्तु जैसे नदी की गति बदल सकती है वैसे धन की गति में भी परिवर्तन हो सकता है। कितनी ही नदियाँ इधर-उधर बहने लगती हैं और उनके आसपास बहुत-सा पानी जमा हो जाने से जहरीली हवा पैदा होती है। इन्हीं नदियों पर बाँध बाँधकर जिधर आवश्यकता हो उधर ले जाकर उस पानी से जमीन को उपजाऊ और आसपास की वायु को उत्तम बनाया जा सकता है। इसी प्रकार से धन का असमान वितरण होने से बुराई बढ़ती है, गरीबी बढ़ती है—दूसरे शब्दों में वह धन विषतुल्य हो जाता है; पर यदि उसी धन की गति निश्चित कर दी जाय, उसका वितरण कम कर दिया जाए, तो बाँधी हुई नदी की तरह वह सुखप्रद बन जाता है।

6. लोकगीत

लोक-साहित्य के भण्डार में लोकगीतों का स्थान निस्संदेह अत्यन्त उच्च है। लोकगीत स्वतः स्फूर्त प्राकृतिक काव्य के अंग हैं। लोक-गीतों में उनके रचयिता अथवा रचनाकाल का प्रश्न महत्त्वपूर्ण नहीं होता। उनका महत्त्व तो उनकी सहज रसोद्रेक की शक्ति तथा सरल सौन्दर्य में रहता है। उनमें एक व्यक्ति की अपेक्षा लोक-हृदय की अनुभूति ही अधिक रहती है: वे व्यक्ति-विशेष की भावनाओं का प्रतिनिधित्त्व न कर समुदाय की भावना के अधिक सच्चे प्रतीक होते हैं। काल और स्थान की सीमा को लांघ, लोक-नायकों और गायिकाओं के अधरों पर जीवित रहने वाले ये लोकगीत अतीत की परम्परा को वर्तमान में भी अंशतः जीवित बनाये रखते हैं। समय के व्यवधान से लोकगीतों के बाह्य स्वरूप में तो परिवर्तन अवश्य होते हैं, किन्तु उनके मूल भाव तथा अभिव्यक्ति की अपनी शैली सामान्यतः अपरिवर्तित ही रहती है।

7. राष्ट्रीय जागृति के गीत

राष्ट्रीय जागृति तभी ताकत पाती है जब उसके पीछे संस्कृति की जागृति हो और किसी भी संस्कृति की जान उसकी भाषा और साहित्य में होती है। इसी बात को हम यों कह सकते हैं कि बिना संस्कृति के राष्ट्र नहीं और बिना भाषा के संस्कृति नहीं। कुछ लोग ऐसा समझ सकते हैं कि आधुनिक हिंदी साहित्य के विद्वान महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भाषा के लिए नियम ही ज्यादा बनाए, उसमें जान नहीं फूंकी, इसीलिए कोई बड़ी बात नहीं की। लेकिन ऐसे लोगों को समझना चाहिए कि बिगुल बजाकर सिपाही को जगाने और जोश दिलाने वाले का काम जितने महत्त्व का है, कम-से-कम उतना ही महत्त्व उस आदमी का भी है जो सिपाही को ठीक ढंग से वर्दी पहनाकर और कदम मिलाकर चलने की तमीज सिखाता है।

संस्कृति की चेतना को जगाने के काम में तो रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कोई क्या बराबरी करेगा, लेकिन उसे संगठित करने के काम में महावीरप्रसाद द्विवेदी का स्थान किसी से कम नहीं है।

8. धर्म

भारतीय संस्कृति का मूल मन्त्र धर्म है। इस शब्द का अर्थ बहुत ही व्यापक है। हमारे जीवन की कौन-सी ऐसी दशा है जिसके ऊपर धर्म का प्रभाव साक्षात या परम्परा रूप से नहीं पड़ा है। मनुष्य की विशिष्टता दिखाने वाली यदि कोई वस्तु है तो वह धर्म ही है। धर्म शब्द नितांत व्यापक, सहनीय तथा सारगर्मित है। यह न तो अंग्रेजी भाषा के 'रिलिजन' शब्द का हिन्दी-पर्याय है और न हो ही सकता है। कारण बहुत साफ है। 'रिलिजन' शब्द तो केवल उन बाह्य आचारों के लिए प्रयुक्त होता है जो किसी देश के मानवों को एकता के सूत्र में बांधने में समर्थ होते हैं, परन्तु धर्म शब्द केवल बाह्याचार का ही बोधक नहीं है, प्रत्युत् महत्त्वपूर्ण बातों का द्योतक है। पश्चिमी भाषा में जिसे कल्चर सिविलाइज़ेशन कहते हैं उन सबका समावेश हमारे इस छोटे परन्तु महत्त्वपूर्ण शब्द धर्म के अन्तर्गत होता है। भारतीयों का तो धर्म ही प्राण है। पुरुषार्थत्रय-धर्म, अर्थ, काम–के भीतर धर्म ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

9. देशभक्त

देशभक्त अपनी मातृभूमि को सच्चे ह्रदय से प्रेम करता है। यदि एक ओर उसे अतीत के गौरव पर गर्व है तो दूसरी ओर वह अपने भविष्य को भी उज्ज्वल बनाना चाहता है। वह सैदव समाज में क्रांति चाहता है, किंतु वह क्रांति न विशृंखल कही जा सकती है, न नागरिकता के प्रतिकूल। समाज में प्रचलित रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों तथा उन परम्पराओं एवं परिपाटियों के विरुद्ध वह क्रांति करता है, जो देश की उन्नति के पथ की बाधाएँ हैं। लोगों में एकता, प्रेम और सहानुभूति उत्पन्न करना, उनकी राष्ट्रीय, सामाजिक एवं नैतिक चेतना जागृत करना, उन्हें कर्त्तव्य-परायण और अध्यवसायी बने रहने के लिए प्रोत्साहन देना ही देशभक्त के मुख्य कार्य हैं।

2. अनुच्छेद-विश्लेषण

डॉ. दिनेशकुमार गुप्ता
रीडर, हिन्दी-विभाग
मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रिय विद्यार्थी, क्या आपको पता है कि अनुच्छेद-विश्लेषण आपके पाठ्यक्रम में क्यों रखा गया है? इसलिए कि सामाजिक, कार्यालयी, वाणिज्य-व्यवसायपरक और सूचना-संचार आदि क्षेत्रों में कभी भी इसकी जरूरत पड़ जाती है। किसी अनुच्छेद या 'नोट' को पढ़कर उसे विभिन्न दृष्टिकोण से समझना पड़ता है और उसके बाद अपने उच्च अधिकारी या 'टीम-लीडर' को उस अनुच्छेद के विभिन्न दृष्टिकोण से परिचित कराना पड़ता है। इसलिए इस विषय को ध्यान से पढ़िए और अभ्यास कीजिए।

अनुच्छेद-विश्लेषण से अभिप्राय उस सामग्री से है जिसे आपने किसी पाठ्यक्रम में विधिवत् नहीं पढ़ा। आपके द्वारा न पढ़ा हुआ कोई अनुच्छेद (गद्यांश या पद्यांश) परीक्षा में देकर, उससे सम्बन्धित कुछ ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं जिससे आपकी भाषा-संबंधी योग्यता को परखा जा सके। कई बार उस अनुच्छेद का सारांश लिखने के लिए कहा जाता है। कभी उस अनुच्छेद में आए हुए कुछ विशेष शब्दों का अर्थ या भाव लिखने का निर्देश होता है। कभी यह पूछा जाता है कि उस अनुच्छेद का उपयुक्त शीर्षक क्या हो सकता है। यदि कोई अपठित पद्य दिया गया हो तो उसकी व्याख्या लिखने को कहा जा सकता है। उसमें प्रयुक्त अलंकार का नाम बताने का निर्देश भी हो सकता है। यह भी पूछा जा सकता है कि उस पद्य में तत्सम, तद्भव या देशज अथवा विदेशी शब्द कौन-कौन से हैं। कुछ विशेष शब्दों, वाक्यांशों या वाक्यों के स्पष्टीकरण के लिये भी कहा जा सकता है।

अनुच्छेद-विश्लेषण को समझने एवं उत्तर लिखने की विशेषताएँ

किसी अनुच्छेद से सम्बन्धित विभिन्न प्रश्नों के उपयुक्त उत्तर लिखने की योग्यता आप निरन्तर अभ्यास द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं। मार्ग-दर्शन के लिए नीचे दिये गये सुझावों को ध्यान में रखना उपयोगी होगा।

मौन वाचन– दिये गये अनुच्छेद को एक बार मन-ही-मन पढ़ें, हो सकता है, पहली बार आप यह न समझ पाएँ कि उस अनुच्छेद का मूल कथ्य क्या है। अतः एक बार फिर ध्यान से पढ़ें। आपको यह आभास तो अवश्य हो जाएगा कि मोटे तौर पर उस गद्यांश या पद्यांश में क्या कहने की चेष्टा की गयी है।

विशिष्ट स्थलों का रेखांकन– तीसरी बार पुनः उस अंश को पढ़ते समय उन शब्दों या वाक्यांशों को रेखांकित करते जाएँ जो आपका ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करते हैं। कई बार परीक्षक की ओर से स्वयं ही कुछ शब्द या वाक्यांश मोटे टाईप में या रेखांकित करके दिये जाते हैं और उनका अर्थ या भाव स्पष्ट करने के लिए कहा जाता है। ऐसी स्थिति में आपका कार्य और भी सरल हो जाएगा।

मूल कथ्य ही पहचान– अनुच्छेद को मन-ही-मन पढ़ने के बाद सोचें कि उसमें आरम्भ, मध्य और अंत में किसी एक बात पर बल दिया गया है या किसी विषय-विशेष के दो-तीन या अधिक पहलुओं का संकेत है। तनिक गहराई से सोचने पर आप समझ जाएँगे कि उस अंश का वास्तविक कथ्य क्या है।

सुस्पष्ट और क्रमबद्ध लेखन– अब आप उत्तर लिखना आरम्भ कर सकते हैं। यदि केवल 'सार' या 'भाव' लिखना हो तो उस अनुच्छेद में कही गयी मुख्य बातों को अपनी भाषा में, संक्षेप में लिख दें। ध्यान रहे कि पहले की बात बाद में और बाद की बात पहले न लिखें। इस तरह क्रम टूट जाने से कथ्य में तारतम्य नहीं रहता।

सहज भाषा-शैली– किसी अनुच्छेद का विश्लेषण करते हुए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आपकी भाषा एकदम सरल और व्यावहारिक हो। ऐसी शब्दावली का प्रयोग करें जैसे आप अपने किसी सहपाठी या मित्र को संक्षेप में सब कुछ समझा रहे हों। वाक्य छोटे-छोटे बनायें। न तो किसी बात को दोहराएं और न ही आलंकारिक भाषा का प्रयोग करें। अनुच्छेद (पैराग्राफ) बिल्कुल न बदलें।

संक्षिप्तता– चाहे आप सार या भाव लिखें अथवा अनुच्छेद से सम्बन्धित किसी प्रश्न का उत्तर लिखें– कम-से-कम शब्दों में आपनी बात लिखने का प्रयास करें। किसी भी प्रश्न का उत्तर एक-दो वाक्य से अधिक नहीं होना चाहिए। **शीर्षक देते समय तो संक्षिप्तता का विशेष ध्यान रखना चाहिए।** यदि किसी कारण एक ही शब्द का शीर्षक उपयुक्त न बन पाये

तो दो-तीन शब्द से अधिक बड़ा शीर्षक न दें। उदाहरणतः 'महँगाई' या 'महँगाई की मार' शीर्षक तो ठीक है किन्तु 'हाय! महँगाई ने मार डाला!' शीर्षक न होकर वक्तव्य माना जाएगा।

उन्मुक्तता– उन्मुक्तता का अर्थ है – खुलापन। प्रश्नपत्र में दिये अनुच्छेद को किसी कारण पूरी तरह न समझ पाने पर परेशान न हों। जो कुछ भी समझ में आए, उसे अपने शब्दों में लिख दें। **पद की व्याख्या में विशेष रूप से उन्मुक्तता की आवश्यकता है।** चार या आठ पंक्तियों की कविता को ध्यान से पढ़ने पर कुछ-न-कुछ भाव आप अवश्य ग्रहण कर लेंगे। उसे अपने शब्दों में व्यवस्थित रूप से लिख देने की योग्यता आपमें होनी चाहिए। यही परीक्षक का उद्देश्य है।

याद रखें, 'सार' और 'व्याख्या' में अन्तर है। किसी गद्य अवतरण का 'सार', 'भाव' या 'मूलभाव' लिखने को कहा जाए तो दिये गये अंश का भावार्थ लगभग एक तिहाई शब्दों में प्रस्तुत करना चाहिए, इससे भी संक्षिप्त हो सके तो अच्छा है। इसके विपरीत अनुच्छेद के किसी वाक्य या वाक्यांश अथवा किसी पद्य-अवतरण की व्याख्या करने के लिए कहा जाए तो दिये गये अंश को तनिक विस्तार में स्पष्ट करना चाहिए। केवल शब्दार्थ न देकर उन शब्दों में से प्रकट होने वाले तात्पर्य को स्पष्ट रूप में समझाना चाहिए।

अनुच्छेद-विश्लेषण के उदाहरण

1. ''सगुण भक्ति से हमारा तात्पर्य ईश्वर के साकार रूप की उपासना करने से है। इस दृष्टि से भक्तिकाल में श्री राम और श्री कृष्ण की भक्ति की गई है। भक्ति के इन दोनों पक्षों को हिन्दी साहित्य में 'राम भक्ति शाखा' तथा 'कृष्ण भक्ति शाखा' के रूप में विभाजित किया गया है। भारतवर्ष में भगवान राम की उपासना प्राचीन काल से प्रचलित है। वस्तुतः वैष्णव भक्ति के अन्तर्गत राम भक्ति को कृष्ण भक्ति से अधिक प्राचीन कहा गया है। उत्तरी भारत में राम की भक्ति का प्रचार मुख्य रूप से स्वामी रामानन्द द्वारा किया गया था। वे श्रीयुत रामानुजाचार्य के भक्ति-सिद्धान्तों से प्रभावित थे। उन्होंने वैष्णव धर्म के तत्कालीन स्वरूप में सुधार करते हुए एक ओर तो लोक मर्यादा के अनुकूल सदाचार से युक्त रामभक्ति पर बल दिया और दूसरी ओर भक्ति के क्षेत्र से जाति-भेद को दूर किया तथा तीसरी ओर भक्ति के क्षेत्र में संस्कृत के स्थान पर जनता की भाषा को अपनाया।''

(इस गद्यांश की महत्त्वपूर्ण बातों को मोटे अक्षरों में दिया गया है। आप रेखांकित करके उनको ध्यान देने योग्य बना सकते हैं।)

प्रश्नः 1. उपर्युक्त अनुच्छेद का उचित शीर्षक लिखिए।

2. इस अनुच्छेद का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

3. स्वामी रामानंद के भक्ति-प्रचार की विशेषताएँ लिखिए।

उत्तरः 1. शीर्षक : सगुण भक्तिकाव्य

2. सार– 'भक्तिकालीन सगुण भक्तिकाव्य में रामभक्ति शाखा और कृष्णभक्ति शाखा के अन्तर्गत राम-कृष्ण की भक्ति की गयी। कृष्णभक्ति से रामभक्ति अपेक्षाकृत प्राचीन है, इसके उत्तरी भारत में प्रचार का श्रेय रामानुजाचार्य से प्रभावित स्वामी रामानन्द को है। उन्होंने भक्ति-क्षेत्र में लोकमर्यादा-पालन, जातिभेद-खण्डन और संस्कृत की अपेक्षा जनभाषा के प्रचार पर बल दिया।

3. स्वामी रामानंद के भक्ति-प्रचार की विशेषताएँ इस प्रकार हैं:– (क)लोकमर्यादा का पालन, (ख) जातिगत भेदभाव का विरोध, (ग) जनभाषा हिंदी पर बल।

प्रश्नः 1. निम्नलिखित अनुच्छेद का सार लिखिए।

2. इस अनुच्छेद का उचित शीर्षक लिखिए।

2. मानव एक सामाजिक प्राणी है। मानव और समाज का पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीनकाल से चला आ रहा है। दोनों एक दूसरे से पृथक नहीं किये जा सकते। मानव के बिना समाज नहीं है और समाज के बिना मानव का जीवन दुर्लभ है, इस प्रकार की बातें हम प्रायः सुनते हैं और पढ़ते हैं विद्वान लोग भी सदा से यह प्रश्न पूछते आ रहे **हैं कि मानव बड़ा है या समाज? मानव के लिए समाज बना है अथवा समाज की रक्षा के लिए मानव को अपने सर्वस्व की आहुति दे देनी चाहिए? वास्तव में समाज चरम लक्ष्य है अथवा मानव? इस पर यूरोप या भारत के विद्वानों ने चिरकाल तक गहरा विचार किया है और भिन्न-भिन्न उत्तर दिये हैं। एक समय ऐसा भी रहा जबकि समाज को अधिक महत्त्व दियां गया और राज्य, समाज का बिरादरी के आगे मानव** या कोई अस्तित्व नहीं था। फिर इस विचार ने

ज़ोर पकड़ा कि नहीं, समाज की रचना अन्ततोगत्वा मानव के लिए ही तो हुई थी। राज्य, समाज, पंचायत या बिरादरी आदि सभी का मुख्य उद्देश्य मानव की नैतिक उन्नति के लिए ही सब प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करना है।"

उत्तरः 1. शीर्षक : मानव और समाज

2. सार– 'सामाजिक प्राणी होने के कारण समाज से मानव का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। प्रायः यह जिज्ञासा रहती है कि इसमें से कौन अधिक महत्त्वपूर्ण है और दूसरे के प्रति किसका अधिक उत्तरदायित्व है। यूरोपीय और भारतीय विद्वानों ने विभिन्न उत्तर दिये हैं। कभी मानव की अपेक्षा समाज अथवा राज्य को महत्त्व दिया गया और कभी समाज को मानव के लिए सुविधायें देने वाली संस्था बताया गया।'

3. 'जो धीर हैं, जो उद्वेगरहित हैं, वही संसार में कुछ कर सकते हैं। जो <u>लोहे की चादर</u> की भाँति थोड़ी देर में ही गर्म हो जाते हैं और थोड़ी देर में ही ठण्डा पड़ जाते हैं, उनके लिये क्या हो सकता है। कहा भी गया है- जो वादल गरजते हैं बरसते नहीं। धीर पुरुष का मन समुद्र के समान होता है। वह गम्भीर और अथाह होता है। <u>समुद की तरह</u> मर्यादा-पालन में उसकी यह दशा है कि <u>आनन्द और ऐश्वर्य</u> रूपी नद-नदियाँ उसमें गिरती हैं पर क्या मजाल कि वह ज़रा-सा भी मर्यादा का उल्लंघन करे।

प्रश्नः (क) उपर्युक्त अनुच्छेद का सार अपने शब्दों में लिखिए।

(ख) इस अवतरण का उपर्युक्त शीर्षक दीजिए।

(ग) काले-मोटे (रेखांकित) अंशों का अभिप्राय स्पष्ट कीजिए।

उत्तरः (क) **सार**–संसार में धैर्यवान पुरुष ही कुछ कर सकते हैं। ज़रा-सी बात से एकदम प्रसन्न या बहुत उदास हो जाने वाले लोग सफल नही हो सकते। जिस प्रकार समुद्र अपने भीतर अनेक नदियाँ गिरने पर भी शांत और गम्भीर रहता है उसी प्रकार गम्भीर पुरुष विभिन्न परिस्थितियों में भी विचलित नहीं होता।

(ख) शीर्षक-धैर्य का महत्त्व

(ग) काले-मोटे (रेखांकित) अंशों का स्पष्टीकरण

उद्वेग रहित – बिना किसी हलचल के।

लोहे की चादर.....-लोहे की चादर तनिक गर्मी में गर्म और सर्दी में तुरन्त ठण्डी पड़ जाती है। अस्थिर चित्त वाले व्यक्ति भी ज़रा-से लाभ से फूल जाते हैं और थोड़ा-सा कष्ट आने पर ही मुँह लटका लेते हैं।

जो वादल गरजते हैं.....-वहुत अधिक बढ़-चढ़कर बातें बनाने वाले व्यक्ति व्यावहारिक रूप से कुछ नहीं करते।

समुद की तरह.....-समुद्र विशाल होता है। उसमें असंख्य नदियों का जल प्रतिदिन भरता रहता है। फिर भी वह सदा एक-सा रहता है। इसी प्रकार धैर्यवान और गम्भीर व्यक्ति बहुत ऐश्वर्य होने पर भी शांत और विनम्र रहते हैं।

आनन्द और ऐश्वर्य.....-समुद्र में मिलने वाली छोटी-बड़ी नदियाँ मानो समुद्र को मिलने वाले छोटे-बड़े लाभ हैं। इतना वैभव और सुख मिलने पर भी समुद्र स्थिर रहता है।

4. युद्ध है नरवुद्धि का अभिशाप।

जल रहा जिसमें जगत का भाग्य अपने आप।

चाहता वामन सदृश नर स्वर्ग लेना नाप।

और निज विस्तार से भारी मही को ढाँप।

प्रश्नः (क) उपर्युक्त पद्य की व्याख्या अपने शब्दों में लिखिये।

(ख) इस काव्यांश में प्रयुक्त दो अलंकारों के नाम लिखिए।

(ग) युद्ध-लोलुप मनुष्य की समता कवि ने किससे की है और क्यों?

उत्तर– (क) व्याख्या – प्रस्तुत पद्य में कवि ने युद्ध की भावना को मनुष्य जीवन के लिये हानिकारक बताया है। कवि का मत है कि युद्ध मनुष्य जीवन के लिये अभिशाप के समान है। मनुष्य युद्ध रूपी आग जलाकर स्वयं उसमें अपने जीवन और सारे जगत के भाग्य को जलाकर राख कर देता है। भाव यह है कि युद्ध से सभी का विनाश होता है, किसी को कोई लाभ नहीं होता। जिस प्रकार विष्णु ने राजा बलि के सौभाग्य को दुर्भाग्य में बदलने के लिए अपने

तीन ही पगों में सारी भूमि नापकर ले ली थी उसी प्रकार आज का मनुष्य सारे संसार पर अपना साम्राज्य स्थापित कर लेना चाहता है।

(ख) इस काव्यांश में निम्नलिखित अलंकार प्रयुक्त हुए हैं–

अनुप्रास– जल रहा जिसमें जगत का भाग्य (ज वर्ण की आवृत्ति)

उपमा– चाहता वामन सदृश नर...

(यहाँ नर (उपमेय) को वामन (उपमान) के समान बताया गया है।)

(ग) कवि ने युद्ध-लोलुप मनुष्य की समता वामन से की है, क्योंकि जिस प्रकार वामन ने तीन ही कदमों अर्थात् थोड़े से प्रयत्न से सारी धरती नाप ली थी उसी प्रकार मनुष्य युद्ध के द्वारा सारी सृष्टि को अपने अधीन कर लेना चाहता है।

अनुच्छेद-विश्लेषण के अभ्यास के लिए कुछ स्थल

निम्नलिखित अनुच्छेदों के नीचे दिये गये प्रश्नों के उत्तर लिखिए:

1. जो लोग फूलों की सेज पर खेलते और सोते हैं, उन्हीं के लिए जीवन के असली मज़े नहीं होते। बल्कि फूलों की छाँह में अगर जीवन का कोई स्वाद छिपा है तो वह उन लोगों के लिए भी है जो दूर रेगिस्तान से आते हैं, जिनका कंठ सूखा हुआ, ओठ फटे हुए और सारा शरीर पसीने से तर है। पानी में जो अमृत तत्त्व है, उसे वही जानता है, जो धूप में खूब सूख चुका है। वह नहीं जानता जो रेगिस्तान में कभी रहा ही नहीं। भीगने के खौफ़ से जो पानी से बचते रहते हैं, समुद्र में डूब जाने का खतरा उन्हीं के लिए होता है। लहरों में तैरने का अभ्यास जिन्हें होता है, वे समुद्र के गहरे पानी में नीचे गोता लगाकर मोती लेकर ही बाहर निकलते हैं।

प्रश्न - (क) इस अनुच्छेद का उपयुक्त शीर्षक लिखिए।

(ख) जिंदगी के असली मज़े किसके लिए होते हैं?

(ग) पानी में छिपे अमृत तत्त्व को कौन पहचान सकता है?

(घ) समुद्र से मोती कौन ला सकता है?

(ङ) उपर्युक्त अनुच्छेद का सारांश लिखिए।

2. मानव-संस्कृति अभिभाज्य है। रोगी, कवि, कलाकार, वैज्ञानिक चाहे किसी भी देश के निवासी हों–मनुष्य मात्र की विभूति हैं। इसके साथ ही आर्थिक विभाजन भी समाप्त होना चाहिए। प्रकृति ने जो सामग्री उपभोग के लिए प्रदान की है उस पर सभी व्यक्तियों का समान रूप से उपभोग करने का अधिकार होना चाहिए। जब तक पृथ्वी शक्तिशाली लोगों की सम्पत्ति समझी जाएगी, जब तक किसी भी देश को यह अधिकार रहेगा कि वह अपनी शक्ति और इच्छा के अनुसार ही यह तय करे कि किस-देश की आवश्यकता की पूर्ति होनी चाहिए और किस की नहीं, तब तक संसार में मनुष्य-समाज सुख से नहीं रह सकेगा। तब तक ईर्ष्या, द्वेष, आपाधापी **भाईभतीजावाद** और **असमानता** बनी रहेगी।

प्रश्न - (क) इन प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में लिखिए:

(i) आर्थिक विभाजन क्यों समाप्त होना चाहिए?

(ii) मनुष्य-समाज कब तक सुखी नहीं रह सकता?

(ख) उपर्युक्त अनुच्छेद का समुचित शीर्षक लिखिए।

(ग) इस अनुच्छेद का सार अपने शब्दों में लिखिए।

(घ) काले-मोटे शब्दों के अर्थ लिखिए।

3. अनुवाद (अंग्रेजी से हिंदी)

डॉ. रामप्रकाश
पूर्व रीडर, हिंदी-विभाग,
मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

आपके पाठ्यक्रम में 'अनुवाद' -विषय इसलिए रखा गया है कि आप सामान्य काम-काज में प्रयुक्त होने वाले अंग्रेजी-कथनों, अनुच्छेदों, वाक्यों-वाक्याशों आदि को आसानी से हिन्दी में रूपान्तरित करने की योग्यता प्राप्त कर सकें। इसके लिए आवश्यक है कि आप पहले 'अनुवाद' के महत्त्व, उसके सामान्य स्वरूप और अच्छे अनुवाद की प्रमुख विशेषताओं को समझ लें।

'अनुवाद' का महत्त्व

आज 'अनुवाद' हर शिक्षित व्यक्ति के जीवन का एक अनिवार्य अंग बन चुका है। विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ जो नये संचार-माध्यम विकसित हो रहे हैं उनका सही उपयोग और लाभ 'अनुवाद' के बिना संभव नहीं। अब हम केवल किसी एक नगर, क्षेत्र या देश के निवासी नहीं, पूरे विश्व-समाज का एक भाग हैं। विश्व में, स्थान-स्थान पर नई खोजें हो रही हैं। ज्ञान-विज्ञान के नये द्वार खुल रहे हैं। इस सबकी जानकारी, शुरू में ही एकदम संसार की सभी भाषाओं में नहीं मिल पाती। हमारा देश अभी विकासशील है। यहां अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व का सारा ज्ञान प्रायः विकसित देशों की भाषाओं में पहुँचता है। हम अपनी भाषा में उसका अनुवाद करके ही उपयोग कर सकते हैं। संयोगवश, विकसित देशों की भाषाओं में 'अंग्रेजी' सर्वप्रमुख है। हमारे समाचारपत्रों, आकाशवाणी, दूरदर्शन आदि के पास पहुँचने वाले सभी अन्तर्राष्ट्रीय समाचार (बल्कि प्रमुख राष्ट्रीय समाचार भी) पहले अंग्रेजी में आते हैं। पत्रों के संपादक, आकाशवाणी और दूरदर्शन के समाचार-विभाग के कार्यकर्त्ता उन्हें 'अनुवाद' द्वारा ही, हमारी भाषा में हम तक पहुँचाते हैं। इसी प्रकार बड़े-बड़े उद्यमों, संस्थानों, कार्यालयों आदि को, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सफल होने के लिए, अपना काम-काज अंग्रेजी में चलाना पड़ता है। **आम भारतीय नागरिक 'अनुवाद' के बिना उनकी योजनाओं, कार्यवाहियों तथा विभिन्न गतिविधियों से तभी परिचित हो सकते हैं, जब 'अनुवाद' का सहारा लिया जाए।**

आप वाणिज्य (कॉमर्स) के विद्यार्थी हैं। आपने कई बार अनुभव किया होगा कि वाणिज्य और अर्थशास्त्र के क्षेत्र का बहुत-सा काम-काज अंग्रेजी में ही चलता है। आम जनता की सुविधा के लिए, सभी बातों को उसकी अपनी भाषा अर्थात् हिन्दी में समझाना आवश्यक है। इस कार्य में 'अनुवाद' ही सहायता कर सकता है। इसीलिए, जैसा कि आपने स्वयं भी देखा होगा, बैंक, रेल, डाक-तार, बीमा तथा अन्य बड़े सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के सभी कागज-पत्र, प्रपत्र, फार्म आदि अंग्रेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में होते हैं। इसके लिए 'अनुवाद' से कितनी सुविधा है– इसका अनुमान आप स्वयं लगा सकते हैं।

आप आज संस्कृत, फारसी तथा अंग्रेजी के कई महान प्राचीन और आधुनिक साहित्यिक रचनाओं एवं उनके रचयिताओं के नाम से परिचित हैं। वाल्मीकि, कालिदास, शेक्सपियर और टालस्टाय आदि श्रेष्ठ लेखकों के आदर्श विचार हम तक 'अनुवाद' के माध्यम से ही पहुँचे हैं। **विभिन्न जातियों, देशों और समाजों में वैचारिक तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान का कार्य भी 'अनुवाद' द्वारा ही संभव होता है। विशेष रूप से, वर्तमान लोकतंत्रीय राजनीति में, हम बिना 'अनुवाद' के तनिक भी आगे नही बढ़ सकते। विभिन्न राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के सम्बन्ध में जो भी विचार-विमर्श होता है उसकी जानकारी 'अनुवाद' के माध्यम से सर्वसाधारण तक आसानी से पहुँच जाती है।**

आज के युग में, हमें अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सफलता प्राप्त करने के लिए 'अनुवाद' की विशेष आवश्यकता है। एक 'विश्व-नागरिक' बनने के लिए 'अनुवाद' का माध्यम अनिवार्य हैं।

अनुवाद का स्वरूप

'अनुवाद' का शाब्दिक अर्थ है– पुनःकथन। 'अनु'– अर्थात् पीछे, पश्चात्, साथ, पुनः और 'वाद' अर्थात् कथन। (एक भाषा में) कहीं हुई बात को (दूसरी भाषा में) पुनः प्रस्तुत करना 'अनुवाद' है। भर्तृहरि ने 'वाक्यपदीय' म अनुवाद को आवृत्ति का समानार्थी बताया है– **'आवृत्तिरनुवादो वा।'** उस युग में, संस्कृत में, सूत्र-रूप में प्रस्तुत कथ्य का 'अनुवाद' (भाष्य, स्पष्टीकरण) किए जाने की परम्परा के कारण उसे 'आवृत्ति' कहना उपयुक्त ही था। जैमिनीय न्यायमाला में 'जानी हुई बात को कहना' अनुवाद माना गया है– **'ज्ञातस्य कथनमनुवादः।'** अनुवाद किसी एक भाषा से दूसरी भाषा (या भाषाओं) में होता है। उन्हें हम क्रमशः 'मूल' या 'स्त्रोत' भाषा (जिससे अनुवाद किया जाता है) और 'लक्ष्य' अथवा 'प्रस्तुत' भाषा (जिसमें अनुवाद होता

है) कह सकते हैं। स्पष्ट है कि स्रोत या मूल भाषा में जो बात कही जा चुकी है, या उस भाषा के प्रयोक्ता जिस बात से परिचित हैं उसी को दूसरी (लक्ष्य) भाषा में फिर से कहना, अर्थात् (स्रोत भाषा में) जानी हुई बात को (लक्ष्य भाषा में) दोहराना अनुवाद है। उसे किसी सीमा तक 'रूपान्तर' कहा जा सकता है किन्तु आज 'रूपान्तर' शब्द प्रायः किसी एक विद्या (नाटक या काव्य) की सामग्री को दूसरी विधा (कहानी या फीचर) में प्रस्तुत करने के अर्थ में रूढ़ है। जैसे– 'दूरदर्शन पर, प्रेमचन्द की कहानी 'कफन' का नाट्य-रूपान्तर प्रस्तुत किया गया।' **'अनुवाद का अभिप्राय है- स्रोत भाषा में कही गयी बात को किसी भी प्रकार के परिवर्तन या घटाए-बढ़ाए बिना लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत करना।'** जब आप अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करते हैं तो अंग्रेजी **'स्रोत'** भाषा होगी और हिन्दी **'लक्ष्य'** भाषा कहलाएगी।

अनुवाद का अंग्रेजी-पर्याय ट्रांसलेशन (Translation) **है जो** कि मूलतः एक लैटिन शब्द है। 'ट्रांस' (Trans) का अर्थ है– 'पार' तथा 'लेशन' (lation) का अभिप्राय है– 'ले जाना'। इस प्रकार ट्रांसलेशन' (Translation) का तात्पर्य है– 'पार ले जाना' अर्थात् **किसी भाव, विचार या वाक्य को एक भाषा से दूसरी भाषा में ले जाना।**

उल्लेखनीय है कि जिस रचना का अनुवाद करना होता है वह स्रोत भाषा में प्रस्तुत की जा चुकी होती है। उसे किसी अन्य (लक्ष्य) भाषा में लाने का उद्देश्य अनुवादक के मन में होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति अथवा सफलता तभी संभव है जब लक्ष्य भाषा के पाठक या श्रोता के मन में अनूदित रचना को पढ़ या सुनकर वही भाव अनुभव हो जो मूल (स्रोत) भाषा के पाठक या श्रोता के मन में उत्पन्न हो सकता है। **स्रोत और लक्ष्य भाषा की यह समतुल्यता (समान अर्थ देने की योग्यता) अनुवाद-प्रक्रिया का प्राणतत्त्व है।** इस दृष्टि से, **''स्रोत भाषा से प्रस्तुत रचना और लक्ष्य भाषा में प्रस्तावित रचना के मध्य निकटतम, सहज समतुल्यता की स्थापना ही अनुवाद है।''** यह समतुल्यता भाव, अर्थ अथवा कथ्य में तो होनी ही चाहिए, भाषा एवं शैली (अभिव्यंजना) में इसका यथासंभव निर्वाह किया जा सके तो अनुवाद और भी उत्तम होगा। सफल अनुवादक वही है जो मूल (स्रोत भाषा के) लेखक की भाव-भूमि में पहुँचकर, उसके हृदयगत सम्प्रेष्य को स्रोत सामग्री जैसी समग्रता और उदात्तता के साथ लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत कर सके। दूसरे शब्दों में, - **अनुवाद एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा लक्ष्य भाषा में किसी मौखिक अथवा लिखित कथन के उसी भाव को सम्प्रेषित करने का प्रयास किया जाता है जो स्रोत भाषा में प्रस्तुत कथन द्वारा अभीष्ट हो।**

अनुवाद-प्रक्रिया के प्रमुख सोपान

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम 'अनुवाद' की प्रक्रिया के निम्नलिखित सोपान समझ सकते हैं–

1. स्रोत भाषा के भाव या विचार को लक्ष्य भाषा में यथासम्भव उसके मूल रूप में लाना
2. स्रोत भाषा की अभिव्यंजना-शैली (संरचना-विधि) के यथासम्भव समान (या अधिक-से-अधिक समान) अभिव्यक्ति-पद्धति का प्रयोग लक्ष्य भाषा में भी करना
3. स्रोत भाषा के कथ्य (संदेश, सम्प्रेष्य या प्रयोजन) को यथासम्भव अक्षुण्ण बनाए रखने का प्रयोग करते हुए भी कथन-भंगिमा और अभिव्यंजना-प्रवाह में लक्ष्य भाषा की निजी परम्परा एवं प्रकृति की अनुरूपता का ध्यान रखना। उदाहरणतः अंग्रेजी में प्रयुक्त 'मिलियन' (Million) , 'बिलियन (Billion) आदि संख्याओं का हिन्दी में अनुवाद करते समय लाख, करोड़ (जो भी आंकड़ा हो) आदि का प्रयोग उचित होगा। 'पेट्रोल' के लिए कुछ यूरोपीय देशों में 'ऑयल' और कुछ (कनाडा आदि) में 'गैस' शब्द का प्रयोग होता है। इस दृष्टि से मात्र शब्दानुवाद कई बार अभीष्ट कथ्य का सम्प्रेषण नहीं कर पाता। स्रोत और लक्ष्य भाषा की परिवेशगत निजी विशिष्टताओं के निर्वाह का ध्यान भी अनुवाद के लिए आवश्यक होगा।

अनुवाद की विशेषताएँ

प्रयोग के स्तर पर, विविध प्रकार की सामग्री के अनुवाद का अभ्यास करने से पहले, अनुवाद की भाषा-शैली के सम्बन्ध में कुछ बातों को ध्यान में रख लेना उचित होगा। सर्वप्रथम यह बात सुनिश्चित कर लेनी चाहिये कि अनुवादक को स्रोत एवं लक्ष्य भाषा का काफी अच्छा ज्ञान हो। दोनों भाषाओं की निजी प्रकृति, व्याकरणिक नियमावली और संरचना-प्रविधि से सुपरिचित अनुवादक ही मूल लेखक से लक्ष्य भाषा के पाठकों का तादात्म्य करा सकता है।

दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि अनुवाद (विशेष रूप से साहित्यिक, समाचार-सम्बन्धी या वैचारिक सामग्री का अनुवाद) 'शब्द-प्रति-शब्द' (word-by-word) नहीं होना चाहिये। अनुवाद में मौलिक रचना जैसा प्रभाव लाने के लिये आवश्यक है कि अनुवादक स्रोत भाषा की रचना की, लक्ष्य भाषा में, एक प्रकार से पुनर्रचना करे। लेकिन इसके साथ यह भी ध्यान रहे कि अनुवादक को मूल कथन से 'कुछ' छोड़ने या उसमें 'कुछ' जोड़ने का अधिकार नहीं, विशेषतया तथ्यपरक, आंकड़ों

से युक्त अथवा निर्धारित नियमों से सम्बद्ध 'औपचारिक' कोटि की सामग्री की अनुवाद में यथावत् प्रस्तुति ही अपेक्षित है। अनुवादक की मौलिकता अथवा सर्जन-प्रतिभा की कसौटी उसके द्वारा लक्ष्य भाषा में गृहीत रचना-विन्यास है। एक ही उत्स से निकली स्रोत और लक्ष्य भाषा की संरचना-शैली अधिक भिन्न नहीं होगी; जैसे हिन्दी-पंजाबी, हिन्दी-उर्दू, मराठी-गुजराती आदि की, किन्तु अंग्रेजी एवं हिन्दी के संरचना ढाँचे पर्याप्त भिन्न हैं। मूलतः अंग्रेजी में रचित किसी कृति के मूल कथ्य के संप्रेषण में यथातथ्यता का निर्वाह करते हुए भी अनुवादक को कथन-शैली अर्थात् अभिव्यंजना-पद्धति लक्ष्य भाषा के संरचना-स्तर के अनुरूप ही ग्रहण करनी होगी।

इस सन्दर्भ में, अनुवाद की भाषा-शैली में प्रतिपाद्य विषय एवं उस विषय-विशेष के पाठकों के स्तर को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों के लिये 'भारत की पंचवर्षीय योजना विषय-सामग्री के अंग्रेजी-प्रारूप का अनुवाद जिस प्रकार की हिन्दी में किया जायेगा, वही प्रारूप समाचारपत्रों द्वारा आम जनता तक पहुँचाने के लिये अपनाई गई हिन्दी (संरचना-शैली) पर्याप्त भिन्न होगी। ऐसी स्थिति में अनुवादक की वास्तविक परख होती है। एक ही विचार या भाव के प्रकट करने वाले विभिन्न पर्यायों में से प्रसंग के अनुकूल सबसे उपयुक्त पर्याय चुनना उसके विवेक का परिचायक होगा। इसी प्रकार, किसी दार्शनिक कोटि के अनुवाद में जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग अपेक्षित है उसी प्रकार की भाषा का राजनैतिक या सामाजिक सन्दर्भों में प्रयोग अनुपयुक्त होगा। एक ही कथन (रचना या प्रतिपाद्य सामग्री) के अनुवाद में कहीं स्रोत भाषा के किसी शब्द का कोई एक पर्याय और कहीं कोई अन्य पर्याय अपनाना भी असंगत और अनुवाद की सुष्ठुता में बाधक होगा। उदाहरण: 'कंसेप्शन' (Conception) के लिये कहीं संकल्पना, कहीं अवधारणा और कहीं मान्यता लिखना भ्रमोत्पादक होगा। 'प्रेजीडेण्ट' (President) के लिये कहीं अध्यक्ष, कहीं प्रधान, कहीं सभापति और कहीं राष्ट्रपति का प्रयोग अनुवादक के अज्ञान का सूचक होगा। जिस सन्दर्भ में मूल (स्रोत भाषा के) शब्द का प्रयोग हुआ है, सर्वत्र उसी सन्दर्भ के उपयुक्त पर्याय का ही प्रयोग होनी चाहिए।

मुहावरों, लोकोक्तियों एवं सूक्तियों आदि के अनुवाद में भी अत्यधिक सतर्कता बरती जानी चाहिये। अंग्रेजी की "Only wearer knows where the shoe pinches" कहावत का यह अनुवाद "केवल पहनने वाला ही जानता है कि जूता कहाँ काटता है" उतना प्रभावी नहीं होगा जितना यह कि 'जाके पैर न फटी बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई।" अथवा 'Empty vessels make much noise' का अनुवाद 'खाली बर्तन बहुत शोर करते हैं" की बजाय 'थोथा चना बाजे घना" अधिक उपयुक्त होगा। इस प्रकार अनुवाद में कथन की समतुल्यता के साथ-साथ भाषा-शैली के प्रयोग की सावधानी भी आवश्यक है।

अच्छे अनुवाद के गुण

अच्छे अनुवाद की सबसे बड़ी कसौटी यह है कि उसको पढ़ने में मूल कृति जैसा आनन्द आए। अनुवाद, अनुवाद न लगे, मूल जान पड़े। **इस प्रसंग में हमें रूसी लेखक गोगोल की यह उक्ति याद आती है कि 'अनुवादक उस बेदाग काँच की तरह है जिसके माध्यम से दर्शक उस पार के सारे दृश्य-सौन्दर्य का आनन्द ले सके और साथ ही काँच के अस्तित्व से भी अनभिज्ञ रहे।'**

ऐसा तभी हो सकता है जब अनुवाद शाब्दिक भाषान्तर न हो। चूंकि प्रत्येक भाषा की अपनी प्रकृति होती है और प्रत्येक लेखक की अपनी भाव-भंगिमा तथा शैली, इसलिए एक भाषा में व्यक्त विचार की दूसरी भाषा में उनकी अपनी प्रकृति के अनुसार, पुनराभिव्यक्ति ही की जा सकती है।

अच्छे अनुवाद की एक विशेषता यह है कि उसकी भाषा में प्रसाद गुण होता है। वाक्य छोटे और सरल होने चाहिए। पंडिताऊ शब्दों और वागाडम्बर से बचना चाहिए। हमारी भाषा जन-भाषा के जितने अधिक समीप होगी, हमारा अनुवाद उतना ही अधिक सुबोध तथा सजीव होगा। शब्दकोशीय पर्यायों के बदले प्रचलित मुहावरों तथा शब्दावली का प्रयोग अनुवाद को सरल बना देता है। साहित्यिक तथा पुस्तकीय भाषा शैली के स्थान पर सरल भाषा शैली में किए गए अनुवाद अधिक लोकप्रिय होते हैं। किन्तु अनुवाद की भाषा कृत्रिम तथा अधिक संस्कृतनिष्ठ न हो, इसका ध्यान रखने के साथ-साथ यह भी देखना आवश्यक है कि भाषा एकदम ग्राम्य न हो जाय। अनुवाद में मूल रचना का रस लाने का यथासाध्य प्रयत्न करना चाहिए।

सफल अनुवाद का विवेचन करते हुए **डॉ. हरिवंश राय 'बच्चन'** ने लिखा है: **"सफल अनुवादक के लिए यह आवश्यक है कि वह जिस भाषा से अनुवाद करे और जिस भाषा में करे, दोनों पर उसका समान अधिकार हो। साहित्यिक ख्याति के ग्रन्थों के लिए यह भी आवश्यक है कि उनके साथ अनुवादक का रागात्मक सम्बन्ध हो।"**

मुहावरों तथा लोकोक्तियों का अनुवाद शाब्दिक नहीं होना चाहिए, बल्कि अनुवाद की भाषा में उनके समानार्थी मुहावरों तथा लोकोक्तियों के रूप में ही होना चाहिए। उदाहरण के लिए – "The news came as a bolt from the blue to him"

का अनुवाद यह नहीं होगा कि 'नीले आसमान से गिरती बिजली की तरह यह समाचार उसे मिला, इसका अच्छा अनुवाद यह होगा– "यह खबर सुनकर तो जैसे उस पर गाज गिर पड़ी"। Man proposes and God disposes' का अनुवाद होगा "अपने मन कुछ और है कर्त्ता के कुछ और" अगर अनूद्य मुहावरे या लोकोक्ति का समानार्थक कोई प्रयोग अपनी भाषा में न मिले तो उसके भावार्थ को अपने वाक्य में प्रकट कर देना चाहिए।

अंग्रेजी की मुहावरेदार अभिव्यक्ति (idiomatic expression) का अनुवाद भी शाब्दिक नहीं होगा। उदाहरण के लिए– illness and old age told upon his health' का सही अनुवाद होगा– "बीमारी और बुढ़ापे का उसके स्वास्थ्य पर बुरा असर हुआ।" 'I earn a bare living' का अनुवाद कई तरह से होगा, जैसे "जैसे-तैसे गुजर-बसर हुई जा रही है।" या "किसी तरह दाल-रोटी चल रही है।" 'His joys knew no bounds' को हम हिन्दी में कहेंगे– "उसे बेहद खुशी हुई" या "उसे अपार प्रसन्नता हुई" या "वह बाग-बाग हो गया।" कहने का तात्पर्य यह है कि हर शब्द, हर लाक्षणिक प्रयोग और हर वाक्य के स्वरूप और आशय पर पूरा ध्यान दिये बिना अच्छा अनुवाद नहीं हो सकता।

अनुवाद की इकाई

अनुवाद करते समय आपके मन में यह प्रश्न हो सकता है कि आप स्रोत भाषा की मूल रचना के एक-एक शब्द को रूपान्तरित करें या एक-एक वाक्य का भाषान्तरण करते चले। पीछे स्पष्ट किया जा चुका है कि अनुवाद में 'शब्द के स्थान पर शब्द रखने' की प्रवृत्ति संगत नहीं, अर्थात शब्द को अनुवाद की इकाई नहीं मानना चाहिए। भाषा के अर्थ और भाव को व्यवस्थित रूप में वाक्य व्यंजित करते हैं, अलग-अलग शब्द नहीं। शब्द जब वाक्य का अंग बन जाते हैं तो उनमें विशेष अर्थ का संचार हो जाता है। अतः वाक्य को अनुवाद की इकाई मानने की पद्धति ही युक्तियुक्त है। इसका एक सीधा फ़ल यह होगा कि सम्पूर्ण रचना का अर्थ क्रमशः वाक्य-वाक्य करके अनुवाद में उतर आएगा, और इस प्रकार अर्थ की रक्षा होगी तथा भाषा की प्रकृति की भी।

सही बात तो यह है कि **अनुवाद की सबसे बड़ी समस्या वाक्य-रचना की ही होती है।** अगर अनुवादक ने **(जो अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद कर रहा हो)** यह जान लिया कि अंग्रेजी वाक्य के स्थान पर उसे हिन्दी का प्रतिवाक्य कैसे गढ़ना चाहिए, कैसे उसका आरम्भ करना चाहिए और कैसे अन्त तथा उसकी शब्द-योजना क्या रहनी चाहिए, तो उसके लिए अनुवाद कोई कठिन कार्य नहीं रह जाता। वाक्य-रचना कौशल वास्तव में अनुवादक की बहुत बड़ी पूँजी है जिसके बिना वह अपने रास्ते पर एक कदम भी नहीं बढ़ सकता। यह आवश्यक नहीं कि वह अपने वाक्यों को मूल भाषा के वाक्यों के ही सांचे में ढाले– इससे तो अक्सर अनुवाद दुर्बोध और अस्पष्ट हो जाता है यदि अनुवाद में वह किसी बड़े वाक्य को छोटे-छोटे वाक्यों में विभक्त कर सके तो अच्छा रहता है। पर शर्त यही है कि उसमें किसी तरह की अर्थ-विकृति न आने पाये। अनुवादक को एक बात याद रखनी चाहिए कि उसकी सबसे बड़ी निष्ठा मूल के भाव और अर्थतत्त्व के प्रति है– उसके लिए वह भाषा के स्तर पर थोड़ी-बहुत स्वतन्त्रता भी ले सकता है।

तात्पर्य यह है कि अनुवाद में आप वाक्य को इकाई मानकर चलें, पर वाक्य के अन्तर्गत प्रत्येक शब्द के अपने महत्त्व को भी समझें, परखें। कहीं ऐसा न हो कि कोई महत्त्वपूर्ण शब्द छूट जाए और अनुवाद में बात की वह शक्ति न रह जाए जो मूल में हो। इसके साथ ही वाक्यों में पूर्वापर क्रम तथा अर्थ-संगति के रूप में सम्पूर्ण रचना के एकत्व की भी उपेक्षा न होने दे। समन्वय पद्धति से ही अनुवादक मूल रचना के साथ न्याय कर सकता है।

नीचे दिये गये एक अंग्रेजी अवतरण के दो अनुवाद प्रस्तुत किये जा रहे हैं। पहले में शब्द को इकाई माना गया है और दूसरे में वाक्य को। आप स्वयं देख सकते हैं कि कौन-सी पद्धति उपयुक्त प्रतीत होती है।

A Charitable Trust is desirous of extending financial help to well managed institutions engaged in the services of mankind/poor masses/ handicapped people etc. but are facing financial difficulties to meet their day-to-day requirements. Bulk donations for meeting non-recurring expenditure may also be conidered for institutions doing highly beneficial services to the masses. Please apply by giving full details to Box 416302, Hindustan Times, New Delhi - 110 001.

अंग्रेजी के इस गद्यांश का शाब्दिक अनुवाद इस प्रकार किया जा सकता है–

एक धर्मार्थ न्यास आर्थिक सहायता देने का इच्छुक है उन संगठित संस्थाओं को जो मानवता की, जन-समूह की, विकलांग लोगों की सेवा में लगी हुई हैं, परन्तु अपनी दिन-प्रति-दिन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आर्थिक कठिनाई का अनुभव करती है। भारी धन भी गैर-आवर्ती खर्चों को पूरा करने के लिए देने पर विचार किया जा सकता है, उन संस्थाओं

को जो जनता की महान लाभकारी सेवा कर रही हैं। कृपया आवेदन करें, पूरा विवरण देते हुए बॉक्स नं. 416302, हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली–110 001।"

उपर्युक्त अनुवाद में 'शब्द' को इकाई माना गया है। किन्तु शाब्दिक अनुवाद का मोह छोड़कर, वाक्य को या पूरे कथन को इकाई मानकर किया गया निम्नलिखित अनुवाद अधिक सही माना जाएगा-

"एक धर्मार्थ न्यास, मानवता/निर्धन जनता/विकलांग जनों इत्यादि की सेवा में संलग्न ऐसे सुप्रबन्धित संस्थानों को, जिन्हें अपनी प्रतिदिन की आवश्यकताओं के लिए आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता हो, आर्थिक सहयोग प्रदान करने का इच्छुक है। ऐसी संस्थाओं, जो कि जनसाधारण को अत्यन्त लाभकारी सेवाएँ प्रदान कर रहे हैं, के गैर-आवर्तक (नान-रिकरिंग) खर्च को पूरा करने के लिए व्यापक अनुदान देने पर भी विचार किया जा सकता है। कृपया पूर्ण विवरण के साथ बॉक्स नं. 416302, हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली–110 001 को आवेदन करें।"

हमारे विचार में आपको पहले अनुवाद की अपेक्षा दूसरा अनुवाद ज्यादा पसन्द आयेगा। उसमें हिन्दी की प्रकृति अधिक उभर आयी है।

अनुवाद की विधि

आपके सामने शायद यह उलझन आये कि प्रश्न-पत्र में दिये अंग्रेजी गद्यांश के कुछ शब्द आपको कठिन जान पड़े। आप क्या करेंगे– क्या उन शब्दों का अनुवाद ही न करेंगे या उन्हें ज्यों-का-त्यों अंग्रेजी में लिख देंगे? आप ऐसा करें कि प्रश्न-पत्र में आये अनूद्य (अनुवाद किये जाने योग्य) अंग्रेजी गद्यांश को कई-कई बार पढ़े; बार-बार पढ़ने से आपको उस पूरे अनुच्छेद का विषय, वाक्यों के अर्थ (वाच्यार्थ एवं लक्ष्यार्थ भी) समझ में आ जायेंगे। जो शब्द पहले अबूझ और दुर्बोध जान पड़ते थे, उनका अर्थ भी सन्दर्भ एवं प्रसंग के अनुसार स्पष्ट होता जायेगा। अगर आप उनके लिए बिल्कुल सही पर्याय स्मरण न कर पायें, तो भी कोई हर्ज नहीं। आशय तो आप व्यक्त कर ही देंगे। उतने से भी काम चल जाएगा (न सही शाब्दिक अनुवाद, भावानुवाद ही सही)। इतना कर चुकने के बाद उत्तर-पुस्तक के एक ऐसे पृष्ठ पर जिसे आप बाद में रद्द कर सकें, अनुवाद का प्रारूप तैयार कीजिये। मूल गद्यांश का एक-एक वाक्य लेते जाइए।

आपको हमारी यह बात स्मरण है न कि अनुवाद की मुख्य इकाई वाक्य होती है, शब्द नहीं। उसका हिन्दी भाषान्तर मन-ही-मन कीजिए; सोचिए कि अगर वही हिन्दी में कहनी होती तो आप कैसे कहते; कौन-सा वाक्य हिन्दी की प्रकृति और व्याकरण के अनुरूप होता। बस सही-सही वाक्य-रचना आपके मन में स्पष्ट हो उठेगी। उसे लिख डालिए। अब दूसरे वाक्य को लीजिए और इसी तरह क्रमशः सम्पूर्ण गद्यांश का अनुवाद कर डालिये। यथावश्यक आपको किन्हीं वाक्यों का शाब्दिक अनुवाद (लिटरल ट्रांसलेशन) करना पड़ेगा, तो किन्हीं वाक्यों को भावानुवाद; कहीं अंग्रेजी के बड़े-बड़े वाक्यों को छोड़कर आपको हिन्दी के छोटे-छोटे वाक्य बनाने पड़ेंगे (क्योंकि आशंका है कि आप अंग्रेजी के लम्बे वाक्यों का उतने ही लम्बे हिन्दी वाक्यों में सही स्पष्ट एवं सुबोध अनुवाद नहीं कर पायेंगे, कहीं छोटे वाक्यों को बड़े वाक्यों का अंग बनाना पड़ेगा और कहीं उनको मूल की भाँति ही स्थान देते हुए रूपान्तरित करना पड़ेगा। एक बड़े वाक्य को एकाधिक छोटे वाक्यों में तोड़कर अनुवाद करते समय आपको वाक्यों की संगति बैठाने के लिए एक दो शब्द (संज्ञा, सर्वनाम और क्रियापद) अपनी ओर से जोड़ने पड़ सकते हैं; उन्हें जोड़ने में संकोच न कीजिए। याद रखिये, आपको मूल रचना की व्यक्तिवाचक संज्ञाओं (वस्तु, स्थान, व्यक्ति के नामों) को देवनागरी लिपि में उनके उच्चारण या हिन्दी में प्रचलित रूप के अनुसार लिखना होगा (जैसे Delhi को दिल्ली या देहली; Lucknow को लखनऊ; Bombay को बम्बई; Cairo को काहिरा; Palestine को फिलिस्तीन; Plato को अफलातून, Socratese को सुकरात; Alexander the great को सिकन्दर महान् लिखना होगा), उनमें फेर-बदल करने की छूट आपको नहीं है।)

अंग्रेजी में शब्दों के पूर्व लगने वाले जो 'आर्टिकिल्स' (the, a, an) है, उनमें से 'the' का तो अनुवाद आप कर ही नहीं सकते; a और an के लिए प्रसंगानुसार 'एक' शब्द का प्रयोग आप कर भी सकते हैं और नहीं भी।

मूल गद्यांश में जो काल (भूत, वर्तमान, भविष्य) हो, उसी में आपकी हिन्दी वाक्य-रचना होगी; यह नहीं कि वर्तमान काल की क्रिया का अनुवाद आप हिन्दी में भूतकाल में कर दे, या इसी तरह अन्य गड़बड़ी करें। अगर मूल गद्यांश में कोई कथन अवतरण चिन्ह ("–") के भीतर है तो आप उसका अनुवाद भी इसी चिन्ह के अन्तर्गत रखें लेकिन कहीं-कहीं प्रत्यक्ष कथन (Direct narration) का अनुवाद अप्रत्यक्ष कथन (Indirect narration) में करना पड़ सकता है। आपकी सूझ-बूझ के अनुसार आपको निर्णय करना पड़ेगा।

जब आप अनूद्य अंग्रेजी गद्यांश (परीक्षा में प्रायः गद्यांश का ही अनुवाद कराया जाता है) का हिन्दी अनुवाद कर चुके, तब एक बार उसे पढ़िए। संशोधन की आवश्यकता समझें तो संशोधन कीजिए। मूल से मिलाकर उसे पढ़िए। जब आपको

सन्तोष हो जाए कि अनुवाद यथाशक्य त्रुटिहीन हो गया है और पढ़ने में वह अंग्रेजी वाक्य-रचना की कार्बन-कापी नहीं लगता, हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप, एक प्रवाहपूर्ण स्वतन्त्र रचना-सा जान पड़ता है, तब आप उसको साफ, सुन्दर लिखावट में यथास्थान लिख डालें। **हाशिये पर प्रश्न की संख्या अंकित करना न भूले। जिस पृष्ठ पर आप ने अनुवाद का कच्चा प्रारूप तैयार किया था, उसे गुणन रेखा खींचकर रद्द कर दीजिए।**

याद रखें कि अनुवाद यदि अच्छा और निर्दोष हो, तो उस पर गणित की तरह ठोस अंक मिलते हैं।

आशा हैं, आप इस पाठ को कई बार पढ़कर इसमें दिये सुझावों को हृदयंगम करेंगे और अनुवाद का अभ्यास करना आरम्भ कर देंगे। इस कार्य में निरन्तर अभ्यास ही आपको सफल बनाएगा।

अनुवाद करते समय ध्यान में रखने योग्य बातें

1. संदर्भ के अनुसार पर्याय चुनें – हम दैनिक कार्य-व्यवहार में अनेक अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग करते हैं। जैसे– स्टैम्प (Stamp), टिकट (Ticket), डिलीवरी (Delivery), लेट (Late), प्रेजेंट (Present), पोस्ट (Post), सीट (Seat), बर्थ (Birth), ग्राण्ट (Grant), सिक (Sick) इत्यादि। इनके अतिरिक्त अन्य भी असंख्य ऐसे अंग्रेजी शब्द हैं जिनका अलग-अलग संदर्भों में, अलग-अलग अर्थ में प्रयोग होता है। आप अनुवाद करते समय वह अच्छी तरह देख लें कि किस अंग्रेजी शब्द का, किस संदर्भ में, क्या हिन्दी-पर्याय प्रयोग में लाना उपयुक्त है। उदाहरणतया–

स्टैम्प (Stamp) – इसका बहुप्रचलित अर्थ 'मुहर' है। जैसे –

(क) This **copy** of the document should be attested by a gazetted officer with his **stamp**.

इस दस्तावेज़ की **प्रतिलिपि** किसी राजपत्रित अधिकारी द्वारा, उसकी **मुहर** के साथ सत्यापित होनी चाहिए।

परन्तु (ख) Please bring some **revenue stamps from the Post Office**. इस वाक्य में 'स्टैम्प' (Stamp) का पर्याय 'टिकट होगा, 'मुहर' नहीं– 'कृपया नहीं – 'कृपया **डाकघर** से कुछ **रसीदी टिकट** ले आइए।'

टिकट (Ticket) – हम बस या रेल-यात्रा में 'टिकट' लेते हैं, कार्ड-लिफाफों पर 'टिकट' लगाते हैं, चुनाव में किसी को किसी दल से 'टिकट' मिलती है, किसी प्रदर्शनी या सिनेमा-हाल में जाने के लिए भी 'टिकट' लेनी पड़ती है। एक ही अंग्रेजी शब्द 'टिकट' (Ticket) अलग-अलग संदर्भों में एक ही रूप से प्रयुक्त होता है किन्तु हिन्दी में अनुवाद करते समय हम संदर्भ के अनुसार अलग-अलग पर्याय प्रयुक्त करेंगे– बस या रेल में 'यात्रा-पत्र', कार्ड-लिफाफे के लिए 'टिकट', चुनाव के संदर्भ में भी 'टिकट' किन्तु प्रदर्शनी या सिनेमा-हाल के लिए 'प्रवेश-पत्र' इत्यादि।

डिलीवरी (Delivery) – (क) You will get the **delivery** of these goods at your home.

– आपका यह माल आपके घर **पहुँच जाएगा**।

(ख) At the time of delivery, every mother wishes the child's welfare.

– **प्रसूति** के समय, हर माँ बच्चे के कल्याण की कामना करती है।

लेट (Late) – (क) **Late Mr. Gandhi** worked hard for national integration and world peace.

– **स्वर्गीय (दिवंगत)** श्री गाँधी ने राष्ट्रीय एकता और विश्व-शांति के लिए कठोर परिश्रम किया।

(ख) You are late by two hours.

– आप को दो घंटे की **देर** हो गई है।

प्रेजेंट (Present) – (क) **We should give some new present to the child on his birthday**.

– हमें बच्चे के जन्मदिन पर उसे कोई नया **उपहार** देना चाहिए।

(ख) **You should be present at the time of election.**

– आपको चुनाव के समय **उपस्थित** रहना चाहिए।

वर्कर (Worker) (क) **The workers of this mill are on strike.**

– इस मिल के **कर्मचारी** हड़ताल पर हैं।

(ख) The Party workers are not satisfied with performance of their leader.

– दल के **कार्यकर्त्ता** अपने नेता के कार्यों से संतुष्ट नहीं हैं।

सीट (Seat) – (क) **Take your seat.**

– **आसन** ग्रहण कीजिए।

(ख) **The Congress and B.J.P. got one seat each.**

– काँग्रेस और भाजपा ने एक-एक **स्थान** प्राप्त किया।

बर्थ (Birth) – (क) **She gave a birth to a boy.**

– उसने पुत्र को **जन्म** दिया।

(ख) I have got a birth in Kalka Mail.

– मुझे कालका मेल में **शायिका** मिल गई है।

ग्राँट (Grant) – (क) **Please grant me one-day leave.**

– कृपया मुझे एक दिन का अवकाश प्रदान करें।

(ख) **The Government has granted two crore rupees for the victims of Gas-Accident.**

– सरकार ने गैस-दुर्घटना में पीड़ितों के लिए दो करोड़ रुपये की **मंजूरी** दी है।

(ग) **You can get also a grant for your research project.**

– आप अपनी इस अनुसंधान–योजना के लिए **अनुदान** भी प्राप्त कर सकते हैं।

सिक (Sick) – (क) He is **sick.**

– वह बीमार है।

(ख) Government should take over the sick cloth-mills.

– सरकार को **ठीक से न चलने वाली** कपड़ा मिलों को अपने हाथ में ले लेना चाहिए।

इस प्रकार, अनुवाद करते समय, पूरे कथन, वाक्य या अनुच्छेद का संदर्भ समझकर, उसके अनुसार ही अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी-पर्याय चुनना उपयुक्त है।

(2) **किन अंशों, शब्दों, वाक्यों आदि का अनुवाद नहीं करना चाहिए**– याद रखें, कई बार अनुवाद के लिए दिये गये अनुच्छेदों के हर अंश, हर शब्द का अथवा हर वाक्य का अनुवाद करना जरूरी नहीं होता। उदाहरणतया 'व्यक्तिवाची संज्ञाओं' का अनुवाद नहीं करना चाहिए। 'नागालैंड' (Nagaland) को 'नागालैंड' ही लिखेंगे, नागभूमि नहीं। पंजाब नेशनल बैंक को 'पंजाब राष्ट्रीय बैंक' कहना या लिखना गलत है। 'पंजाब एंड सिन्ध बैंक' हिन्दी में 'पंजाब और सिंध' नहीं कहलाएगा। 'बैंक ऑफ बड़ौदा' को 'बड़ौदा का बैंक' लिखना भी ठीक न होगा।

इसी प्रकार रेलवे, डाक-तार विभाग तथा बैंक-सम्बन्धी अन्य अनेक शब्द भी अंग्रेजी से ज्यों-के-त्यों हिन्दी में प्रयुक्त होते हैं। जैसे रेल, फ्लेटफार्म, सिगनल, लाइन क्लियर, गार्ड, इंजिन, टिकट आदि। पोस्टकार्ड, मनीआर्डर फार्म, पोस्टल आर्डर के समान ही बैंक, चैक, लॉकर आदि कुछ शब्दों का 'अनुवाद' करने की आवश्यकता नहीं।

कुछ वैज्ञानिक प्रयोग भी अंग्रेजी से हिन्दी में अनूदित नहीं होंगे। जैसे- 'स्पूतनिक', 'रिकवरी', 'इनसैट-1बी', 'डॉक्टर', 'शटल' इत्यादि।

कई विशेष 'कथनों' को ज्यों-का-त्यों 'प्रत्यक्ष शैली' में उद्धरण चिन्हों "....." के अन्तर्गत दिया जाता है। उनका भी अनुवाद करना आवश्यक नहीं क्योंकि मूल वक्ता के वास्तविक कथन को ज्यों-का-त्यों देने से जो प्रभाव पड़ता है, वह 'अनुवाद' से नहीं पड़ता। जैसे–

(क) Dayana cried, "Please!"

– डायना चिल्लाई – "प्लीज़!"

(ख) Crowd raised the slogan – "Down! Down!! Down!!!"

– भीड़ ने नारा लगाया – "डाउन! डाउन!! डाउन!!!"

ध्यान रखें, अनुवाद करते समय जब भी आप किसी अंग्रेजी शब्द, अंश का प्रयोग को, भाषा बदले बिना ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत करें तब 'रोमन' (अंग्रेजी की लिपि) के स्थान पर 'देवनागरी' (हिन्दी की लिपि) का प्रयोग करें। जैसे–

"Oh my God! what a wonder?" इसे यों लिखेंगे– "ओह गाड! कैसा आश्चर्य!"

"Oh my God! कैसा आश्चर्य!" नहीं।

तात्पर्य यह है कि अनुवाद करते समय, बड़ी सावधानी से, संदर्भ समझकर, मूल कथन का अपनी भाषा में सम्प्रेषण करना चाहिए।

अनुवाद-अभ्यास

यहाँ आपके अभ्यास के लिए कुछ ऐसे उदाहरण दिए जा रहे हैं जो विभिन्न विषयों और क्षेत्रों से सम्बन्धित हैं। आप दिए गए अंग्रेजी अंकों का पहले स्वयं अनुवाद करें। एक-दो बार मूल सामग्री को ध्यान से पढ़ें, वाक्यक्रम से अनुवाद करें। पूरा अनुवाद करने के बाद पढ़ने पर शायद आपको लगे कि वाक्य-विन्यास कुछ अटपटा है। (अंग्रेजी और हिन्दी की वाक्य-संरचना भिन्न होने के कारण ऐसा लगना स्वाभाविक है।) तब आप अपने द्वारा अनूदित अंश की भाषा ठीक करें। भाव-प्रवाह, विषयगत तारतम्य और वाक्य-गठन की दृष्टि से उसे संयोजित करें। आप स्वयं अनुभव करेंगे कि दो-तीन बार के अभ्यास से आपका अनुवाद पर्याप्त संगत बन पाया है। कठिन प्रतीत होने वाली शब्दावली या अभिव्यक्तियों के लिए अंग्रेजी-हिन्दी-कोश की सहायता लें। **(ध्यान रहे कि परीक्षा में आपको कोश देखने की सुविधा प्राप्त नहीं होगी, अतः निरन्तर अभ्यास द्वारा अपने शब्दार्थ-ज्ञान को समृद्ध करते रहें।)**

आपकी सुविधा के लिए, अंग्रेजी अंशों के पश्चात् क्रमशः उनका हिन्दी-अनुवाद भी दे दिया गया है, किन्तु उसे आप स्वयं अनुवाद कर लेने के बाद ही, अपने सन्तोष के लिए, मिलाने के उद्देश्य से देखें, तो उचित होगा। आवश्यक नहीं, कि पाठ में दिया गया अनुवाद ही पूर्णतः उपयुक्त माना जाए। आपके द्वारा किया गया अनुवाद उससे भिन्न होते हुए भी संगत हो सकता है। वास्तविक उद्देश्य तो मूल कथ्य का लक्ष्य भाषा (हिन्दी) में यथानुरूप सहज सम्प्रेषण है।

अभ्यास : 1

The educational system we posses today is not a healthy one. We has inherited the colonial legacy which was elitist in character. After indepednce, we had made some changes, more reformatory than revolutionary. We had missed an opportunity to give a fresh life to our educational system after the adoption of our Constitution in 1950. Our education has failed to integrate itself with the evolving policy economy and society. Education which was to cure the disease became the disease itself. It may be an exaggeration but various issues wrecked the fabirc of our educational system.

अभ्यास : 2

What is Secular State which India claims to be? It postulates that political institutions must be based on the economic and social interests of the entire community, without reference to religion, race or sect: that all must enjoy equal rights but no privileges, prescriptive rights or special claims should not be allowed for any group on the basis of religion, Secondly, it eliminates from the body political all ideas of division between individuals and groups on basis of their faith or racial origin.

अभ्यास : 3

The Programme Scheduling of Doordarshan not only seems self defeating, it also completely ignores the existence of its sister organisation, All India Radio. This refers to news and current affairs more than anything else, where there is a head on collision between the two media. Also Doordarshan's timings have upset everybody except those favoured few who get away with the worst serials at prime time at 9.00 p.m. in return, of course, of paying handsome sums of Doordarshan.

अभ्यास : 4

Prohibition policy is being implemented in the State by exercising effective control over the use of intoxicating substances in the State. Under this policy the non-medical use of such intoxicating substances as Ganja, Charas, and Opium is prohibited in the whole state.

अभ्यास : 5

I, as a citizen of India, affirm my faith in the universal principal of civilised society, namely that differences should be settled by peaceful means. I also hereby pledge myself, having regard to the need of emotional integration among the people, never to resort the violence in any dispute relating to religious, linguistic, regional or other public issues.

अनुवाद : 1

हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली सर्वथा अदोष नहीं है। यह हमें एक उपनिवेशवादी विरासत के रूप में प्राप्त हुई है जिसका अपना एक विशिष्ट स्वरूप था। स्वाधीनता के पश्चात् यद्यपि हमने इसमें अनेक परिवर्तन किये तथापि वे परितर्वन क्रांन्तिकारी न होकर मात्र सुधारात्मक हैं। सन् 1950 में अपना नया संविधान स्वीकार करते समय हम अपनी शिक्षा पद्धति को एक नया रूप देने से चूक गये। हमारी शिक्षा अपने को निरन्तर विकासमान राजनीतितंत्र, वित्त-व्यवस्था और समाज के साथ एकाकर नहीं कर पायी। जिस शिक्षा से विभिन्न बुराइयों के निराकरण की अपेक्षा थी वह स्वयं एक बुराई सिद्ध हुई। यह कथन भले ही अतिशयोक्तिपूर्ण हो किन्तु हमारी शिक्षा-पद्धति अनेक समस्याओं से ग्रस्त है।

अनुवाद : 2

धर्मनिरपेक्ष राज्य है क्या, जिसका भारत दावेदार है। उसके मूल में यह भावना निहित है कि राजनैतिक संस्थाओं का गठन धर्म, जाति या वर्ग-सन्दर्भ से मुक्त समूची जनता के आर्थिक और सामाजिक हितों के आधार पर हो; सभी समान अधिकारों का उपभोग करें किन्तु किसी भी समुदाय को धर्म के नाम पर कोई विशेषाधिकार, पारम्परिक अधिकार या विशेष सुविधा न दी जाए। दूसरे, इसके अन्तर्गत, राज्य के भीतर धर्म अथवा जाति-वंश के आधार पर व्यक्तियों और वर्गों की विभाजन-सम्बन्धी सभी धारणाएँ त्याज्य हैं।

अनुवाद : 3

दूरदर्शन की कार्यक्रम-प्रणाली न केवल आत्मविरोधी है, अपितु वह अपनी सह-संस्था आकाशवाणी के अस्तित्व की भी उपेक्षा कर रही है। इसका प्रमाण, अन्य बातों की अपेक्षा, सबसे अधिक समाचार तथा सामाजिक विषयों पर चर्चाएँ हैं– जिसमें इन दोनों संचार-माध्यमों की आमने-सामने की टक्कर है। दूरदर्शन के प्रसारण-समयों से भी सभी परेशान हैं– सिवाय उन कुछ चहेतों के जो रात्रि नौ बजे के सर्वोत्तम समय पर अपने हीनतम धारावाही लेकर आते हैं। अलबत्ता, इसके लिए वे दूरदर्शन को अच्छा-खासा धन भी तो देते हैं।

अभ्यास : 4

मादक द्रव्यों के सेवन को प्रभावशाली ढंग से रोकथाम करने के लिए राज्य में मद्यनिषेध-नीति को कार्यान्वित किया जा रहा है। इस नीति के अन्तर्गत गांजा, अफीम तथा चरस जैसे मादक द्रव्यों को सिवाय दवाइयाँ बनाने के, अन्य किसी रूप में भी उपयोग में लाने पर राज्य-भर में पाबंदी लागू हैं।

अनुवाद : 5

मैं, भारत के नागरिक के नाते, सभ्य समाज के इस सार्वभौम सिद्धान्त के प्रति निष्ठा व्यक्त करता हूँ कि सभी मतभेदों को शाँतिपूर्ण उपायों से सुलझाया जाना चाहिए। मैं, लोगों में भावात्मक एकता की आवश्यकता को अनुभव करते हुए, यह भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं किसी भी धार्मिक, भाषायी, क्षेत्रीय अथवा अन्य किसी भी सार्वजनिक विवाद को सुलझाने के लिए कभी हिंसा का सहारा नहीं लूँगा।

4. यात्रा-वर्णन, रोचक घटना का वर्णन और संस्मरणात्मक-लेखन

डॉ. दिनेशकुमार गुप्ता

प्रिय विद्यार्थी! क्या आप जानते हैं कि इस विषय को आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित करने का कारण क्या है? सच बात तो यह है कि आपके भीतर छिपी हुई सृजनात्मक क्षमता (Creative Potential) को भाषिक संरचना द्वारा उभार कर लाना है। विभिन्न अवसरों, उत्सवों, यात्राओं और स्थिति-परिस्थितियों में आप सबको तरह-तरह के अनुभव होते रहते हैं। इन अनुभवों को अपने भीतर ही छिपाए रखने से अच्छा है उन्हें लिखकर अभिव्यक्त करना, ताकि आपके भावों और विचारों से दूसरे लोग भी लाग उठा सकें। इस प्रकार का रचनात्मक-लेखन-क्षमता से आपके सृजनात्मक व्यक्तित्व का निमार्ण होगा। जीवन में विभिन्न अवसरों पर और वाणिज्य-व्यवसाय आदि में उसका लाभ मिल सकेगा।

इस पाठ में हम एक ऐसे विषय को समझने की कोशिश करेंगे जिसकी आपके घर-बाहर, दफ्तर-फैक्ट्री, व्यावसायिक-व्यापारिक, सूचना-संचार आदि जीवन के हर क्षेत्र में हर समय जरूरत पड़ती है। जब भी हम किसी औपचारिक या अनौपचारिक विषय या संदर्भ में लिखित या मौखिक अभिव्यक्ति करते हैं तो हमें इसके लिए प्रभावशाली, विषयानुकूल, संक्षिप्त और स्वतःपूर्ण 'अनुच्छेदों' का सहारा लेना पड़ता है। अनुच्छेद से क्या अभिप्राय है, इसे लिखने का कौन-सा तरीका होता है?– आदि तथ्यों पर हम यहाँ विस्तार से चर्चा करेंगे।

आप यह जानते हैं कि जब कोई निबन्ध, कहानी या लेख, रिपोर्ट (प्रतिवेदन) या किसी अन्य प्रकार का वर्णन किया जाता है तब उसमें एक से ज्यादा अनुच्छेद होते हैं। यहाँ तक कि उस निबंध, कहानी या लेख के एक से ज्यादा उपशीर्षक के अंतर्गत अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए भी एक से ज्यादा अनुच्छेद लिखने पड़ते है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि किसी भी 'भाव' या 'विचार' की अभिव्यक्ति के लिए अनुच्छेद-दर-अनुच्छेद लेखन की आवश्यकता होती है। तभी तो अनेक अनुच्छेदों का क्रमिक विकास उस 'भाव' या 'विचार' की परिपूर्ण अभिव्यक्ति कर पाता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि यह 'अनुच्छेद' आखिर होता क्या है? उसे लिखते समय किस-किस बात का ध्यान रखना पड़ता है? 'अनुच्छेद' का अपने आपमें उद्देश्य क्या होता है? इस संदर्भ में शायद आपकी समझ में आने लगा है कि कुछ वाक्यों के समूह द्वारा, किसी विषय या विचार को विकसित किया जाता है। वे एकाधिक वाक्य अनुच्छेद-लेखक की वैचारिक क्षमता या विषय-गत उपयोगिता के अनुसार कम या अधिक हो सकते हैं। विशेषतः, उनमें आँकड़ों और सूचनाओं, नामों अथवा तथ्यों की भरमार भी हो सकती है। मतलब यह कि कुछ वाक्यों को एक साथ इकट्ठा लिख देने से अनुच्छेद बनाया जा सकता है? क्या यह उचित है? नहीं। आप जानते है कि कुछ वाक्यों का समूह या जमघट– चाहे वे वाक्य कम ही क्यों। न हो – अनुच्छेद बिल्कुल नहीं कहलाता। ऐसे समूह पागलपन की बड़बड़ाहट, अनावश्यक, हास्यापद, अज्ञानपरक और व्यर्थ का प्रयास ही होते हैं। वास्तविक अनुच्छेद के लिए तो चाहिए 'तारतम्यता', 'पूर्वापरता' और 'तर्कसंगतता'। संक्षिप्त होना भी इसकी एक अन्य आवश्यकता है।

विषय की आवश्यकतानुसार ही अनुच्छेद का आकार-प्रकार निश्चित किया जाता है। हाँ, अनुच्छेद में एक ही भाव या विचार को प्रस्तुत किया जाता है। एक से अधिक भावों या विचारों के लिए एकाधिक अनुच्छेद लिखे जाते हैं। लेकिन, ध्यान रखने की बात यह है कि अनुच्छेद न तो किसी विषय का 'पल्लवन' (Expansion) होता है जिसमें केंद्रीय बिंदु को समझने के लिए एक से अधिक अनुच्छेद हो सकते हैं और न ही उसे 'निबंध' (Essay) या स्वतंत्र 'लेख' (Article) जैसा लगना चाहिए। इसलिए भरसक कोशिश करके संक्षेप में तैयार किया गया लिखित रूप अनुच्छेद के दायरे में आ सकता है।

रचनात्मक-लेखन की प्रमुख विशेषताएँ

1. **एकसूत्रता** : किसी संस्मरण या रोचक घटना के वर्णन के लिए यह अति आवश्यक इकाई है। इसका कारण यह है कि लेखक किसी विषय, बिंदु, विचार या वस्तु तक ही अपना ध्यान केंद्रित रखता है। उसमें इधर-उधर भटकने की गुंजाइश नहीं रहती। जैसे, यदि 'चुनावी सरगर्मी', 'शेयर में उतार-चढ़ाव' या 'प्रदूषण' आदि विषयों पर **अनुच्छेद लिखते समय हमें इनके किसी एक महत्त्वपूर्ण केंद्र बिंदु को लेकर संक्षेप में लिखना चाहिए।** हाँ, इन सभी विषयों के विस्तार के विभिन्न रूप भी हो सकते हैं, उनसे अनुच्छेद-लेखन का कोई सरोकार नहीं होना चाहिए।
2. **क्रमबद्धता या तारतम्यता** : अनुच्छेद यद्यपि वाक्यों का समूह होता है परन्तु उन वाक्यों में केंद्रीय विषय के अनुसार क्रम होना चाहिए। प्रत्येक वाक्य विषय को स्पष्ट करते या उसकी व्याख्या करते या उसमें आँकड़े देते हुए क्रमशः

एक-दूसरे से विषयानुसार जुड़े होने चाहिएँ। उनमें विषय की स्पष्टता के लिए तारतम्यता की आवश्यकता पड़ती है। ऐसा न हो कि पहले स्थान पर लिखे गए वाक्य की उपयोगिता तीसरे वाक्य के बाद थी और अंतिम वाक्य में आने वाला 'पद बंध' पहले वाक्य में आता तो ज्यादा सही लगता। **अच्छा वर्णन या संस्मरण उसे ही कहा जाता है जिसमें कोई भी वाक्य अनावश्यक या भरती का वाक्य नहीं होता।**

3. **संक्षिप्तता** : आप जानते ही है कि अनुच्छेद अपने आप में एक स्वतंत्र किंतु लघुतम इकाई है। अतः अपेक्षित केंद्रीय विचार को स्पष्ट करने के लिए अनावश्यक उदाहरण, उद्धरण, आँकड़े, विवरण, प्रसंग देने की आवश्यकता नहीं होती। वास्तविकता यह है कि अनुच्छेद के संक्षिप्त आकार को ध्यान में रखते हुए इन उदाहरण-उद्धरणों से प्रायः बचना चाहिए, नहीं तो मूल विचार से भटकने का अंदेशा रहता है। कभी-कभी किसी 'विचार' या 'विषय' पर एक अनुच्छेद किसी उच्च अधिकारी के पास भेजना पड़ता है। यदि यह आकार में बड़ा होगा या उसमें तर्कसंगत (Well Articulated) तथ्यों का क्रमशः संक्षिप्त उपयोग नहीं होगा तो वह उस अधिकारी के किसी काम नहीं आएगा और इससे अनुच्छेद-लेखन की अकार्यकुशलता ही प्रकट होगी। आज के कारपोरेट जगत में अच्छे प्रबंधन (Good Management) के लिए संक्षिप्त अनुच्छेद-लेखन के अभ्यास की बहुत जरूरत है।

4. **स्वतःपूर्णता** : अब तक यह बात तो समझ आती है कि अनुच्छेद-लेखन में 'एकरूपता', 'क्रमबद्धता' और 'संक्षिप्तता' का ध्यान रखना चाहिए पर साथ-ही-साथ यह भी अनिवार्य है कि एक अनुच्छेद अपने आप में परिपूर्ण अथवा स्वतःपूर्ण भी होना चाहिए। आप जानते होंगे किसी पैराग्राफ को पढ़कर जब उस विषयवस्तु की पूरी जानकारी मिलती है जिसे ध्यान में रखकर वह लिखा गया है, उसे समझने के लिए कुछ अधूरापन या अस्पष्टता का अनुभव नहीं होता तब इसे 'स्वतःपूर्णता' कहा जाता है। यदि आप कोई अनुच्छेद लिखें। उसमें किसी बात को किसी विशेष दृष्टि से स्पष्ट किया गया हो, परन्तु वह पढ़ने वाले की समझ में नहीं आए, उसमें से कुछ छूटा हुआ-सा लगे या उसके स्पष्टीकरण के लिए उसके लेखक की आवश्यकता पड़े तो ऐसे अनुच्छेद को स्वतःपूर्ण कैसे कहा जाएगा? यहाँ पर यह तो अपेक्षा नहीं की जाती कि 'निबंध' या 'लेख' की तरह कोई भी अनुच्छेद किसी 'विषय या विचार' की सम्पूर्ण जानकारी या मूल्यांकन उपलब्ध करवाए पर यह आवश्यकता तो रहती है कि किसी एक दृष्टि से किया गया वर्णन उस अनुच्छेद में अपने आपमें पूर्ण दिखालाई पड़े।

5. **मौलिकता** : मौलिकता का अर्थ होता है – 'नयापन'। जिस 'विषय' या 'विचार-बिंदु' पर आप लिखना चाहते हैं उसपर आपसे पहले या आपके साथ-साथ अन्य लोग भी लिख सकते हैं। इसलिए यह अच्छा रहता है कि आप उसे किसी नए ढंग से और नए दृष्टिकोण से लिखें तो उसका प्रभाव अधिक पड़ेगा। जैसे–'शाम के समय पेड़ की छाया में बैठे किसी यात्री की मनोदशा पर' अनेक दृष्टि और अनेक ढंग से लिखा जा सकता है। इसलिए आवश्यक है कि अपने अनुभवों और मन पर पड़ी छाप या यादगार क्षणों के सहारे कल्पनाशीलता के साथ ऐसा वर्णन कीजिए जिससे पाठक आपकी सृजनात्मकता का लोहा मान सके। कभी-कभी किसी व्यक्ति के पैराग्राफ को पढ़कर रोजमर्रा के ढर्रे का ही आभास मिलता है, लेखक के व्यक्तित्व के कल्पनाशील नएपन का नहीं। ऐसे अवसरों पर आपके अध्यापक या उच्च अधिकारी या अन्य पाठक अपना माथा ठोंकते ही नज़र आते हैं। सूचना-समाचार और मीडिया के क्षेत्र में तो विभिन्न अवसरों पर रचनात्मक-लेखन में मौलिकता की आवश्यकता हर समय बनी रहती है।

6. **सहज भाषा-शैली** : अनुच्छेद यद्यपि एक लघु इकाई है फिर भी उसमें वस्तु या विचार के प्रस्तुतीकरण का पर्याप्त महत्त्व होता है। विषयवस्तु या आँकड़े या मूल्यांकन की दृष्टि से तो हर चीज ठीक हो पर उसे कुछ इस शैली में और ऐसी भाषा में लिखा गया हो जो प्रमुख अनुभूति को उद्घाटित न कर सका, ऐसे अनुच्छेद का कभी अपेक्षित प्रभाव नहीं पड़ता। वह विचारों, आँकड़ों और मूल्यांकन बिंदुओं का बोझिल गद्य-खण्ड ही दिखलायी देगा। अनुच्छेद का आकार-प्रकार ही अपने आप में छोटा होता है जिसमें घुमाफिराकर या आगे-पीछे किसी अन्य प्रकार से विषय को स्पष्ट करने की गुंजाइश नहीं रहती। उसकी भाषा अस्पष्ट और असहज हो, शब्दों का चुनाव, तथ्यों का चुनाव या उनका प्रस्तुतीकरण तर्कसंगत न हो तो ऐसा गद्य-खण्ड दूसरे को उबाऊ लगने लगता है। आप स्वयं ही सोचिए कि अच्छी और सहज भाषा-शैली का अभाव तथा असंगत तथ्यों का असंगत प्रस्तुतीकरण पढ़कर जब खुद को ही झुंझलाहट का अनुभव होगा तो दूसरे पाठक के लिए वह सहज कैसे हो सकता है? **इसलिए छोटे-छोटे वाक्य, सरल किंतु सर्वथा उचित शब्द-चयन तथा अति आवश्यक तथ्य का क्रमशः नियोजन ही किसी पैराग्राफ को प्रभावशाली बनाता है।**

अच्छे सृजनात्मक लेखन में बार-बार 'जैसे', 'अर्थात्' या 'कोष्ठकों' (ब्रेकिट्स) आदि का उपयोग नहीं होना चाहिए। इन्हें देखकर यह पता चलता है कि लेखक विषयवस्तु के बारे में खुद भी स्पष्ट नहीं है या उसकी भाषा और प्रस्तुतीकरण शैली की पकड़ कमजोर है।

7. **लेखन-शैली** : किसी भी विषय पर लिखते समय यह प्रश्न उठता है कि इसे किस शैली में लिखा जाए। रचनाकार को विषय की प्रकृति, उसकी आवश्यकता और उसे जिसके लिए लिखना है या उसका जो उद्देश्य है–उसी के आधार पर लेखन-शैली का निर्धारण करना पड़ता है। वाणिज्य, व्यवसाय या मैनेजमेंट के क्षेत्र में किसी विषय पर लिखते समय तथ्यपरक और विवरणात्मक शैली अपनानी पड़ती है; कार्यालयी अथवा सरकारी कामकाज के संदर्भ में निर्देशपरक या आदेशात्मक शैली भी अपनानी पड़ती है। मीडिया के क्षेत्र में मूल्यांकन परक या सृजनात्मक शैली की जरूरत पड़ती है। साहित्य, कला, संस्कृति आदि के क्षेत्र में विश्लेषणात्मक शैली अपनानी पड़ सकती है। विज्ञान, विधि, तकनीकी और प्रौद्योगिकी के संदर्भ में तथ्यपरक विवेचन-शैली का उपयोग किया जा सकता है। **लेखन-शैली के अनेक प्रकार होते हैं जिनकी सूची बनाना या वर्गीकरण करना न तो सम्भव है और न उचित। फिर भी, वर्णनात्मक, विवरणात्मक, सूचनात्मक, व्यंग्यात्मक, विश्लेषणात्मक, कथात्मक, आत्मकथात्मक, संस्मरणात्मक, निर्देशात्मक, मूल्यांकनपरक, आदि किसी भी शैली को अपनाया जा सकता है। जरूरत इस बात की है कि किसी भी शैली में विषय-वस्तु बोधगम्य होनी चाहिए बोझिल या दुरूह नहीं।**

यह सब लगातार अभ्यास के जरिए ही आपको योग्यता प्रदान करेगा। एकदम या अचानक लिखने बैठ जाने से काम नहीं चलेगा। इसका कारण यह भी है कि **किसी भी प्रकार के रोचक और कल्पनाशील सृजन में** किसी विषय को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करना वैसे ही बहुत कठिन होता है, जबकि विस्तार से प्रस्तुतीकरण में स्पष्टता की अपेक्षाकृत अधिक गुंजाइश रहती है।

रचनात्मक-लेखन के विषय

अनुच्छेद लिखने के लिए विषयों, विचारों या केंद्रीय बिंदुओं आदि की कोई सीमा नहीं है। रोजमर्रा की व्यावसायिक, तकनीकी या प्रौद्योगिकी अथवा मीडिया आदि से संबंधित जीवन-शैली में अनेक विषय मिलते हैं। समसामयिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, अथवा प्रशासनिक आदि दृष्टि से भी आपको अनेक विषयों में समय-समय पर अनुच्छेद लिखने की आवश्यकता पड़ सकती है। हम रोजमर्रा की ज़िंदगी में अनेक बार नए-नए अनुभवों, और घटनाओं का सामना करते हैं। इन सबको भाषा के माध्यम से लिखकर व्यक्त करने का अभ्यास जरूरी है।

इसलिए अब हम कुछ विषयों को लेकर अभ्यास के रूप में अनुच्छेद-लेखन के उदाहरण दे रहे हैं। इन्हें एकाधिक बार ध्यान से पढ़िए, समझने की कोशिश कीजिए और फिर कुछ अन्य विचार-बिंदुओं, विषयों पर रचनात्मक-लेखन का अभ्यास कीजिए।

कुछ उदाहरण

कथनी-करनी

बातें बनाना आसान है। हजारों लोगों की भीड़ में, देश और समाज की भलाई के नाम पर, जीवन और जगत के कल्याण के नाम पर घंटों भाषण दिये जा सकते हैं। नारों से आकाश गुँजाया जा सकता है। परन्तु किसी एक भी व्यक्ति की भूख मिटाने के लिए रोजी-रोटी का इंतजाम कराना, तपते और ठिठुरते बेसहारों को दो चिथड़े कपड़े लाकर देना या देश के निर्माण की नींव में एक ईंट भी लगा देना बहुत कठिन है। एक घंटे तक 'ईमानदारी' और 'न्यायप्रियता' पर भाषण देने वाले विद्वान महापुरुष से वह रिक्शेवाला कहीं अच्छा है जो किसी सवारी का पर्स रिक्शे में रह जाने पर आवाज देकर उसे लौटा देता है। इसी प्रकार वह साधारण गृहिणी कहीं अधिक महान है जो अपनी लाडली संतानों के साथ ही, घर का कुड़ा ले जानी वाली जमादारिन या पोचा-बर्तन करने वाली माई के काले-कलूटे शिशु को भी प्यार से दूध-फल देकर पुचकारती है। कहने वाले बहुत हैं, करने वाले बहुत कम। हमारे देश में जितने भाषण देने वाले वक्ता, नेता, सुधारक, प्रचारक हैं, उनसे आधे भी यदि कर्मठ, श्रमिक, उद्यमी और कार्मिक हो जाएँ तो देश की काया ही पलट सकती है।

चुनाव

बार-बार चुनाव का चक्कर! हम तो इन चुनावों से तंग आ गए! तंग तो आप भी होंगे, पर बता नहीं रहे। शायद आप यह कहना चाहते हैं कि आपको राजनीति से कोई सरोकार नहीं। चाहे चुनाव कभी हों और चाहे कोई जीते, कोई हारे! अरे नहीं भाई! मैं संसद या विधानसभा के चुनाव की बातें नहीं कर रहा। उसमें हम विद्यार्थी क्यों उलझेंगे! मैं तो अपने

जीवन को सांप की कुण्डली की तरह जकड़ने वाले 'चुनाव' से परेशान हूँ। माँ बाप या घर का चुनाव तो हमारे वश में नहीं था, पर 'स्कूल' और 'कॉलेज' के चुनाव ने खूब चक्कर में डाला। वहाँ 'विषयों' के चुनाव से जान छूटी तो 'अध्यापक' का सही चुनाव कर लेने पर ही सफलता की बात साथियों ने बताई। वह भी कर लिया, तब सहपाठियों में से उसका चुनाव करने की समस्या आई जो सचमुच 'अच्छे साथी' और 'मित्र' सिद्ध हो सकें। उसी चुनाव-प्रक्रिया में 'जीवन साथी' के चुनाव का समय आ गया। बस फिर क्या था—जूते-सैंडिल के डिज़ायन और रूमाल-जुराबों के रंग से लेकर बालों के स्टाइल और फिल्म-रेस्तरां की रुचियों के चुनाव ने नाक में दम कर दिया। इस चुनाव का परिणाम निकलने से पहले जरूरी था जीवन-चर्या और व्यवसाय का चुनाव! पर यह चुनाव हम कैसे कर सकते हैं जब तक कोई विशेषज्ञ, प्रबन्धक, निदेशक, उद्योगपति या सरकारी बोर्ड किसी भी क्षेत्र में, किसी स्थान के लिए हमारा चुनाव न कर ले! बताइये, है कहीं छुटकारा इस चुनाव के चक्कर से?

ताज और चाँद

आकाश पर तना चाँदी का विशाल चंदोवा और बीचों-बीच झाँकता चाँद का फानूस। उस रुपहले फानूस से फूटती उजली किरणें मानो ताजमहल के शुभ्र-उज्ज्वल, कोमल, दिव्य रूप को छूकर पुलकित हो रही हैं। ताज की मर्मरी सुंदरता चाँदनी में दुगुनी निखर उठी है या चाँदनी ताज की शुभ्रता का संयोग पाकर पहले से अधिक उजली हो गई है—यह निश्चय कर पाना कठिन है। मुझे तो लगता है, ताज की चारों ऊँची मीनारों के खंभों पर बने चाँदनी के शुभ्र मंडप के नीचे ताज के ऊपर उठे हुए गोल गुम्बद का नुकीला शिखर अपनी ओर प्यार से निहारते चाँद के साथ गुपचुप इशारों में ही कुछ बातें कर रहा है। उन दोनों प्रेमियों की बातें चाहे हम न सुन पाएँ पर उनके लावण्यमय चेहरे पर फैली उज्ज्वल मुस्कान के दर्पण में, उनके भीतरी भाव स्पष्ट झलक रहे हैं!

अप्रैल-फूल

अप्रैल का मूल शब्द लेटिन भाषा का 'एपिराट्रर' है, जिसका अर्थ होता है, 'आरम्भ करना या उद्घाटन करना'। चूँकि इसी महीने में यूरोप में बसंत ऋतु का आगमन होता है, इसलिए ही इसे 'एपिराट्रर' का नाम दिया गया जो कालांतर में 'एप्रिलिस' और बाद में अप्रैल कहा जाने लगा। इस दिन लोगों को नए-नए और रोमांचकारी तरीकों से बेबकूफ बनाए जाने की परम्परा काफी पुरानी है। सबसे पहले अप्रैल-फूल बनाए जाने की घटना 18वीं शताब्दी में ब्रिटेन में घटित हुई थी। यूरोपीय देशों में इसे काफी जोर-शोर से मनाया जाने लगा। यूरोप में नया साल 31 मार्च तक मनाया जाता है। कहते हैं, तब से ही अप्रैल-फूल यानि मूर्ख दिवस मनाने की प्रथा का जन्म हुआ। इसके आयोजन की प्रथाएँ अलग-अलग देशों में अत्यंत रोमांचकारी और आश्यर्चजनक हैं। किंतु हमें ऐसा तरीका नहीं अपनाना चाहिए जिससे किसी दूसरे को मानसिक या शारीरिक कष्ट हो।

सपने में गांधी

ओफ्फो... राहुल गांधी नहीं, महात्मा गांधी।

काफी नाराज लग रहे थे। मैंने कहा कि बापू जी कौन-सी चिंता सता रही है आपको? चाहो तो मैं कुछ सहायता...

मेरा वाक्य बीच में तोड़कर बड़ी व्यथा से बापू बोले : 'बेटा सत्य, अहिंसा, शिक्षा, दारुमुक्ति जैसे विचारों को मैंने जिंदगी भर समाज में फैलाया, और आज देखो कि कोई मद्य सम्राट मेरी चीजों के लिए वहां बोली लगा रहा है। 'बापू आगे बोले : 'दुःख होता है कि जिसने लाखों लोगों को नशे में डुबोया, औरतों के उत्तेजक कैलेंडर बनवाए, दारू को बढ़ावा दिया, ऐसे व्यक्ति ने मेरी चीजें आज खरीद लीं।

फिर थोड़ी नरमी से कहा : 'क्या कोई और गांधीवादी नहीं था इस राष्ट्र में?... या यही गांधीगिरी है। कहां गए वो सब राष्ट्र को चलाने वाले नेता? या जुटे हैं अपना राजकीय स्वार्थ पूरा करने में? मैं जिंदा होता तो आमरण उपवास करता। लेकिन इस तरह अपनी वस्तुओं को नीलाम नहीं होने देता। कोई तो रास्ता होता जिससे मैं इसे रोक पाता... कोई तो... कोई तो...

सपने में बापू को इतना असहाय पाकर मैंने आंखें खोल दी। बिस्तर पर पड़ा खुद से बस यही कह सका : बापू जी, क्या करोगे, अब जमाना बदल गया है!

कबीर और दो पाटों का सच

पता नहीं, कबीर के समय, भारत में किस अनाज को चक्की में पीसा जाता होगा—गेहूँ, ज्वार, चना या जौ। कोई भी अनाज रहा हो, उसे चक्की में पिसते देखकर रोने की क्या ज़रुरत थी? उससे तो कबीर और उसके परिवार का पेट

ही भरता होगा। लगता है, कबीर भी वास्तव में हमारी तरह परिवार और समाज के दोगलेपन या दोहरे सिद्धान्त की चक्की में पिसकर चीख उठे होंगे। पत्नी कुछ कहती होगी, पुत्र कुछ और! गाँव का साहूकार सूद के बिना अनाज-दाल-चावल नहीं देता होगा और बच्चे भूख से बिलबिलाकर नाक में दम कर रहे होंगे। या हो सकता है, कबीर के शहर बनारस के सूबेदार का जो हुक्म हो, उसके ऊपर सम्राट का हुक्म कुछ और ही हो। कबीर किसे माने और किसे न माने? जैसे पंजाब, बिहार या उत्तर प्रदेश की राज्य सरकार कुछ कहती है और केन्द्र सरकार कुछ और! कबीर जैसा भोला-भाला, मेहनत करके परिवार पालने वाला शांत स्वभाव का भारतीय नागरिक क्या करे? वह उत्तर प्रदेश छोड़कर भारत में कहाँ रहे और भारत छोड़कर विदेश में कैसे चला जाए। सो, इतना तो स्पष्ट है कि आज चाहे हथचक्की या पनचक्की की जगह बड़ी-बड़ी मिलों ने ले ली हो, पर दो पाटों में पिसने की विवशता जैसे तब थी, वैसे आज भी है। हमारा जीवन दिन-रात, सुख और दुःख, पुण्य और पाप, राजनीति और धर्म, युद्ध और शांति तथा आशा और निराशा की चक्की के दो पाटों में पिसता रहा है, और पिसता रहेगा।

प्लेटफार्म

प्लेटफार्म! जी हाँ! यह वह सच्चाई है जिसके द्वारा हम न जाने क्या-क्या देख और समझ लेते हैं। प्लेटफार्म पर कुछ-कुछ दूरी पर बिछे हुए सारे बेंच पहले से ही 'आरक्षित' थे। गर्मी का मौसम! पंखे दूर-दूर और बहुत ऊँचे, जो केवल वहाँ होने की रस्म पूरी कर रहे थे। अटेची, बैग, किताबों का बंडल और पानी की बोतल—चार नग और हाथ दो। इनमें से किसी नग पर बैठना अपनी मूर्खता को उजागर करना था। दोनों टांगो के बीच के डेढ़ फुट के स्थान में मैंने चारों नग सुरक्षित रख दिये और खड़ा-खड़ा प्लेटफार्म का सर्वेक्षण करने लगा। इधर-उधर भागते मुसाफिर, गिरते-पड़ते सामान, रुपऐ या पचास पैसे के लिए नोंक-झोंक करते कुली, चीखते-चिल्लाते और माताओं के अंगवस्त्र नोंचते बच्चे, जाने-आने वाली गाड़ियों की घड़घड़ाहट और इन सबके बीच साधक योगियों की तरह अपनी-अपनी गाड़ी रूपी प्रियतमा की प्रतीक्षा में आँखें गड़ाये, बैठे-खड़े यात्री! कहते हैं—'कथनी से करनी भली' पर यहाँ करने को था ही क्या? सिवाय बोलने, चीखने और चिल्लाने के! जगह-जगह खम्बों पर बँधे लाउडस्पीकर क्या बोल रहे थे— कौन और कैसे सुने? क्योंकि दोनों कान तो 'चाय गरम'! 'पूरी-छोले'! समोसे कचौड़ी! के शोर में ही डूबे थे। लेकिन मैं बहुत परेशान नहीं था—पता है क्यों? इसलिये कि बिना कहीं यात्रा किये, पैसा खर्च और समय बरबाद किये, एक ही स्थान पर खड़े-खड़े मैं अपने सामने एक 'लघु भारत' को प्रत्यक्ष देख रहा था और साथ ही देख रहा था अपनी कलाई पर बंधी हुई घड़ी को।

फूल और काँटे

फूल! किशोरी बालाओं से लेकर देवी-देवताओं का शृंगार और बड़े-बड़े नेताओं, कलाकारों, मंत्रियों तथा अधिकारियों के गले के हार! और काँटे! छिः नाम सुनते ही चुभन-सी होने लगी। हाथों में जा धँसें तो काम-काज ठप्प तथा पैरों में नोंक गड़ा दें तो चलना-फिरना बंद! नाम सुनते ही चुभन-सी होने लगी। फिर विधाता ने यह क्या विधि बनाई कि फूल अपने विरोधी काँटों के बीच में ही रहकर खिलता-मुस्कुराता है, सुगंध और रूप फैलाता है। वास्तव में यही जीवन की सच्चाई है। आप काँटों में रहेंगे, दुःख-संघर्ष-विपत्ति का सामना करेंगे तो स्वस्थ, सुंदर और सफल बनेंगे। ज्यों ही आप संघर्ष और कर्म का मार्ग छोड़कर ऐश-आराम में मस्त होंगे, त्योंही आप आलसी, अकर्मण्य और निष्प्राण हो जाएंगे। फूल को सेज नहीं, काँटों का संग चाहिए, आपको प्रमोद-विश्राम नहीं, संघर्ष और कर्म चाहिए।

मित्र

मैंने जीवन में कई मित्र बनाने, पर सभी समय पर साथ छोड़ गये। जब तक मैं सैर-सपाटे, खेल-तमाशे और मौज-मेलों में साथ देता रहा, वे मेरे दाँयें-बाँयें घूमते रहे, मेरे लिए प्राण न्योछावर करने की सौगन्ध खाते रहे, पर जब मैं अपने जीवन की समस्याओं में घिरने लगा, सभी मुझसे दूर होते गये। दुःख-पर-दुःख आते रहे और मित्र मुँह फेरकर जाते रहे। मैं नये मित्रों की खोज करने लगा। उलझी हुई परिस्थितियों में मैं अकेला नहीं लड़ सकता था। मेरी खोज व्यर्थ नहीं गई। मैंने जीवन का सच्चा साथी पा लिया। मेरे दुःख-सुख का वह दोस्त थी 'पुस्तकें'। जो अजर-अमर देवताओं की तरह हर स्थिति में मेरा पथ-प्रदर्शन करती हैं, मेरी हर आवश्यकता में मेरा साथ देती हैं।

अग्निकांड

पाँच मंजिली इमारत को सूखी लकड़ियों के ढेर-सा जलता हुआ देखकर लग रहा था कि सीमेंट के खम्बों का एक ढाँचा असहाय-सा मानो अपनी बेबसी प्रकट कर रहा था। भवन में काम करने वाले कर्मचारियों की चीख-पुकार एक अस्पष्ट शोर की तरह हमारे कानों तक पहुँच रही थी। हमारी कॉलोनी के सभी घरों की छतों पर से लोग इस भयावह दृश्य को देख-देखकर तरह-तरह की बातें भी कर रहे थे। कोई बीड़ी-सिगरेट पीने वालों की कोस रहा था, कोई बिजली की तारें

गलत लगाने वालों को गाली दे रहा था। कई बुजुर्ग बड़े-बड़े भवन बनाने वालों को ही खरी-खोटी सुना रहे थे... किन्तु किसी को यह नहीं सूझा कि वहाँ जाकर आग बुझाने में सहायता करे या आग में झुलसे हुए लोगों के इलाज-उपचार में सहयोग करें। सभी यह कह रहे थे—सरकार कुछ करती ही नहीं। बड़े भवन बना देती है। न उसमें पानी का प्रबन्ध है, न बचकर निकलने का। हर बात में सरकार को दोष देना तो जैसे हमारा मूलभूत और मौलिक अधिकार ही बन गया है।

अविस्मरणीय घटना

शाम का समय था। मैं अपने दोस्त मोहन के साथ फ़िल्म देखकर लौट रहा था। जल्दी घर पहुँचने की कोशिश में हम दोनों बस स्टॉप की ओर लगभग भाग रहे थे। अचानक एक छोटा-सा बच्चा किसी मोटर-गाड़ी की चपेट में आकर सड़क के बीचों-बीच लहु-लुहान बेसुध पड़ा था। रह-रहकर उसके शरीर में कुछ-कुछ हरकत हो जाती थी। भीड़ जमा हो गई थी। कोई मोटर वाले को कोस रहा था, कोई बच्चे के माँ-बाप को, जिन्होंने उसे अकेले सड़क पर जाने दिया था। कोई पुलिस को बुलाने की जुगत कर रहा था। एक तगड़े के लड़के ने मोटर के ड्राईवर को कसकर पकड़ रख था। बच्चा तड़फ रहा था। उसकी हिचकियों की स्पीड के साथ-साथ लोगों की प्रतिक्रियाएँ भी तेज़ हो जाती थी। हम भी लाचार-से सभी तरह की प्रतिक्रियाओं में बारी-बारी से शामिल हो जाते थे। घर लौटना भूल चुके थे। मोहन, फिर भी, बीच-बीच में, मुझे सींचता हुआ घर चलने को कह देता था। हमने अचानक देखा कि सड़क के बीचों-बीच भीड़ जमा होने से रास्ता बंद हो जाने का कारण जानने के लिए एक नौजवान लड़की तिपहिया स्कूटर से उतरकर भीड़ की ओर लपकने लगी। उसकी पोशाक, शक्ल-सूरत और हाथ में दबी संदर-सी फाइल देखकर लगता था कि कोई पढ़ी-लिखी तथा धनी परिवार की लड़की हैं। भीड़ को चीरकर अंदर घुसते ही वह जैसे सब कुछ समझ गई। हम भी उसके पीछे-पीछे अंदर घुस चुके थे। उसने अपनी फाइल मुझ जैसे अनजान व्यक्ति को थमाई और बच्चे को अपने दोनों हाथों पर उठाती हुई वापिस तिपहिया स्कूटर की ओर लपकी। हमारे हाथ में उसकी फाइल थी इसलिए उसके साथ लपकने को हम दोनों मजबूर थे। वह बड़बड़ा रही थी—"लोग न जाने कैसी-कैसी बातें करते हैं, यह नहीं कि पहले घायल को किसी डॉक्टर या अस्पताल में पहुँचाकर उसका इलाज शुरू करा सकें, गालियाँ, पुलिस, माँ-बाप... हूँ।" वह सीधी नजदीक वाले नर्सिंग होम में पहुँचकर तुरंत इलाज शुरू करने को कह रही थी। हम भी उसी तिपहिया स्कूटर में बैठ लिए थे। सो, कुछ बाद देखा कि उस लड़की की—जिसके कपड़े खून से सन चुके थे— कोशिश और तत्परता के कारण बच्चे की जान बच गई थी। मुझे अपने ऊपर और भीड़ पर बहुत ग्लानि हुई। मेरा सिर लड़की के सामने झुक गया था।

अभ्यास

उन उदाहरणों को आपने ध्यान से पढ़ लिया होगा और रचनात्मक-लेखन की एक व्यवस्थित समझ भी आपमें आ गई होगी। अब आप निम्नलिखित विषयों या विचार-बिंदुओं पर अनुच्छेद लिखने का अभ्यास करेंगे तो बहुत लाभ होगा।

(i) खेलों का महत्त्व, *(ii)* प्रदूषण, *(iii)* पर्यावरण संरक्षण, *(iv)* परिश्रम का जादू, *(v)* बाज़ारवाद, *(vi)* साम्प्रदायिक सद्भाव, *(vii)* लोकतंत्र, *(viii)* पुस्तक, *(ix)* विज्ञापन, *(x)* मीडिया का मतलब, *(xi)* अर्थव्यवस्था, *(xii)* बापू, *(xiii)* सौंदर्य प्रतियोगिता, *(xiv)* सोप औपेरा (धारावाहिक), *(xv)* छोटा परदा, *(xvi)* रियलिटी शो, *(xvii)* इंटरनेट, *(xviii)* बॉक्स ऑफिस *(xix)* कॉलेज में मेरा पहला दिन, *(xx)* पर्वतीय स्थल की यात्रा, *(xxi)* बारात में शामिल होना, *(xxii)* चुनाव-प्रचार का सच।

5. समाचारपत्र के सम्पादक के नाम पत्र

डॉ. दिनेशकुमार गुप्ता

प्रिय विद्यार्थी,

समाचारपत्र जैसे प्रिंट मीडिया के माध्यम का उपयोग जहाँ एक ओर समाचारपत्र के प्रसासन से जुड़े लोग जनता तक तरह-तरह की सूचना, विवेचना, विश्लेषण और विज्ञापन आदि को पहुँचाने के लिए करते हैं; वहाँ दूसरी ओर जनता का दायित्व भी बनता है कि वह विभिन्न विषयों पर या अलग-अलग अवसरों पर अपने विचारों से समाचारपत्र के सम्पादक और प्रबंधक को अवगत कराए। जनता का यह भी दायित्व है, और उससे यह अपेक्षा भी की जाती है कि देश-विदेश में होने वाली सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, औद्योगिक और व्यवसाय-वाणिज्यिक, खेलकूद सूचना-संचार, शिक्षा और मनोरंजन आदि विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ी हुई स्थिति-परिस्थितियों से संबंधित अपने उद्‌गारों, भावों और विचारों की जानकारी न केवल सम्पादक को बल्कि उस समाचारपत्र के माध्यम से आम जनता को भी दे।

कभी-कभी जनता की समस्याओं के विषय में सम्पादक को पत्र लिखकर अपेक्षित विभाग का ध्यान खींचा जाता है। प्रशासन और जनता के बीच की खाई को पाटने का काम भी सम्पादक को लिखे गए पत्रों के माध्यम से पूरा किया जाता है। कभी-कभी कोई सरकारी या गैरसरकारी संस्था जनता की आवश्यकता या अपेक्षा पूरी नहीं कर पाती तब भी समाचारपत्रों के सम्पादक को पत्र लिखकर संबंधित विभाग, संस्था या अनुभाग तक अपनी बात पहुँचाई जाती है।

इसका मतलब यह हुआ कि समाचारपत्र एक ओर अपनी तरफ से विभिन्न विषयों के साथ नागरिक से जुड़ता है; साथ-ही-साथ आम नागरिक भी समाचारपत्र के माध्यम से उस पत्र-पत्रिका या सरकार अथवा विभाग या फिर अपने सहयोगी नागरिकों तक अपने विचार पहुँचाने की कोशिश करता है। **दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि समाचारपत्र इकहरा माध्यम न होकर बहुआयामी संवाद स्थापित करने का महत्त्वपूर्ण माध्यम है। इसके लिए नागरिकों को तरह-तरह के लेख, टिप्पणी, प्रतिवेदन, कार्टून और पत्र लिखकर सम्पादक को भेजने पड़ते हैं। उन सबमें सबसे महत्त्वपूर्ण, लाभकारी, व्यावहारिक और प्रभावशाली तरीका है – सम्पादक के लिए पत्र लिखना। इस पाठ में हम आपको सम्पादक के नाम पत्र-लेखन की प्रमुख विशेषताओं को उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे।**

पत्र-लेखन की प्रमुख विशेषताएँ

(1) शुद्धता– पत्र में शुद्धता से तात्पर्य है– अंक-आँकड़ों, संदर्भ, दिनांक-क्रमांक सूचना, उदाहरण, उद्‌धरण आदि का ठीक-ठीक होना।

(2) स्पष्टता– पत्र का दूसरा गुण है– स्पस्टता। सबसे पहले तो विचाराधीन प्रकरण का विषय पत्र-लेखक के मस्तिष्क में स्पष्ट होना चाहिए। दूसरे, उसके कथ्य की रूपरेखा अपने में इतनी पूर्ण एवं स्पष्ट होनी चाहिए कि उसमें किसी प्रकार की भ्रांति की गुंजाइश न रह जाए।

(3) संक्षिप्तता– संक्षिप्तता से तात्पर्य है – विषय से न भटकना। संक्षिप्त किन्तु स्वतःपूर्ण पत्र को पढ़कर उसपर वांछित दफ्तरी कार्यवाही शीघ्र की जा सकती है जबकि प्रायः विस्तृत पत्र समयसापेक्ष होने के कारण टलता रहता है। कोई भी सम्पादक आपके लम्बे पत्रों को पढ़ने और छापने में संकोच कर सकता है।

(4) परिनिष्ठित भाषा– पत्र में भाषा के परिनिष्ठित होने से तात्पर्य है भाषा का संयत, शुद्ध, सरल एवं विनीत (शिष्ट या शालीन) प्रयोग। पुनरुक्तिरहित तथा पूर्वाग्रहमुक्त होना भाषा के परिनिष्ठित रूप में ही आता है।

(5) क्रमबद्धता– इससे तात्पर्य यह है कि सभी चर्चित संदभों एवं पत्रों को एक निश्चित क्रम से प्रस्तुत किया जाए। हो सकता है कि अपने पत्र में आप एक से अधिक विषयों और संदर्भों का संकेत करना चाहते हैं। ऐसे में सबसे महत्त्वपूर्ण संदर्भ या विषय को पहले दें और उसके बाद कम महत्त्वपूर्ण विषय को देकर क्रमबद्धता का निर्वाह करें।

(6) अनुच्छेदों में विभाजन– पत्र को प्रायः तीन भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम अनुच्छेद में प्रकरण से सम्बद्ध पहले से चला आ रहा पत्र-व्यवहार संक्षेप में प्रस्तुत कर दिया जाता है। दूसरे अनुच्छेद में मामले का मुख्य कथ्य निहित होता है और तीसरे अनुच्छेद में निष्कर्ष, सुझाव व करणीय बातें लिख दी जाती हैं।

(7) संलग्न पत्रादि का स्पष्ट उल्लेख– पत्र की स्वच्छ प्रतिलिपि के साथ नत्थी किये जाने वाले पत्रादि का क्रमांक-दिनांक आदि स्पष्ट रूप से उल्लिखित होना चाहिए ताकि कार्यवाही के लिए उनका तत्काल संदर्भ सामने रहे।

(8) पृष्ठांकन (एण्डोर्समेंट)– पृष्ठांकित होकर जिस-जिस के पास प्रतिलिपियां भेजी जानी हों उनका तथा प्रतिलिपियों की बांछित संख्या का स्पष्ट उल्लेख पत्र में अनिवार्य रूप से कर देना चाहिए।

पत्राचार के समान्य अंग

जिन अंगों को ध्यान में रखकर औपचारिक/व्यावसायिक पत्र तैयार किया जाता है उन्हें इस प्रकार गिनाया जा सकता है।

1. पत्र-प्रेषक का नाम और/अथवा पद एवं पता
2. पत्र प्राप्तकर्ता का नाम और/अथवा पद एवं पता
3. प्रेषक के कार्यालय का स्थान तथा दिनांक
4. विषय
5. संबोधन
6. मूल कथ्य
7. स्वनिर्देश
8. हस्तक्षारकर्ता का नाम व पद का उल्लेख
9. संलग्न पत्र-सूची
10. पृष्ठांकन

पत्र-व्यवहार के उपर्युक्त सामान्य अंगों के स्थानों एवं व्यावहारिक रूप को नीचे दी जा रही रूपरेखा से और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है–

1. प्रेषक का नाम और पता
2. सेवा में,
   ..... सम्पादक का नाम
   ..... समाचारपत्र का नाम
   ..... पता, पिन कोड
3. दिनांक : .....
4. विषय : .....
5. महोदय, (संबोधनसूचक शब्द)
6. पत्र की शुरुआत का कोई संदर्भ, (यदि हो तो)

प्रमुख विषयवस्तु

7. भवदीय (समापनसूचक शब्द)
8. हस्ताक्षर
   (पूरा नाम)
9. संलग्न पत्रों–कागज़ातों की सूची (यदि हो)
10. सूचनार्थ प्रतिलिपि
    1. .....
    2. .....

सम्पादक को लिखे जाने वाले पत्रों के उदाहरण

1. सम्पादक

नवभारत टाइम्स

बहादुरशाह जफर मार्ग

नई दिल्ली - 110002

दिनांक :.....

विषयः- चुनावों की व्यावहारिकता के विषय में।

प्रिय सम्पादक,

आपके समपाचारपत्र के माध्यम से मैं चुनावों की व्यावहारिक जरूरत और उपयोगिता के संदर्भ में अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत कर रहा हूँ। कृपया अपने लोकप्रिय दैनिक पत्र में इसे छापकर नगरिकों को मेरे विचार से अवगत कराने का कष्ट करें।

हर साल चुनाव

क्यों न चुनाव हर साल कराए जाएं। इससे सारा काला धन भी बाहर निकल जाएगा और चुने जाने के बाद भी नेताओं पर अच्छा काम करने का दबाव बना रहेगा। अगर वे अच्छा काम नहीं करेंगे तो अगले साल जनता उन्हें नहीं चुनेगी। सिर पर लटकी सालाना चुनाव की यह तलवार बहुत कुछ बदलाव ला सकती है। यह बदलाव जनता के हित में ही होगा।

भवदीय,

क ख ग

दिल्ली

2. सम्पादक

नवभारत टाइम्स

बहादुरशाह जफर मार्ग

नई दिल्ली - 110002

दिनांक :.....

विषयः- जनकल्याण बनाम स्वयंसेवी संस्थाएँ

प्रिय सम्पादक,

आपके लोकप्रिय हिंदी दैनिक के माध्यम से मैं उपयुक्त विषय पर सरकार और जनता को जागरूक करने का प्रयास करना चाहता हूँ। आशा है कि इस पत्र को आप अवश्य छापेंगे।

जन कल्याण के नाम पर अनेक स्वयंसेवी संस्थाएं सरकार से धन लेकर अपने कल्याण में जुटी हुई हैं। बाल कल्याण, युवा कल्याण, महिला कल्याण आदि नाम से चल रही अनेक संस्थाओं के कर्त्ता-धर्त्ताओं ने धांधली करने के एक से एक तरीके ईजाद कर रखे हैं। सरकार को इन संस्थाओं को धन मुहैया कराने के बाद इनसे उसके सदुपयोग के बारे में भी जानकारी लेनी चाहिए। सरकार की लापरवाही के कारण ही ऐसी संस्थाएं निपट कारोबारी ढंग से काम कर रही है।

भवदीय,

क ख ग

दिल्ली

3. सम्पादक,

दैनिक जागरण,

.....

नई दिल्ली।

दिनांक :.....

विषयः- प्रदूषित पानी-सप्लाई की शिकायत।

प्रिय महोदय,

आप जानते ही हैं कि जल को जीवन का पर्याय बताया गया है। परन्तु दिल्ली जैसे शहर में पानी की सप्लाई या तो पूरी नहीं होती या फिर गंदगी और बदबू से भरा पानी नलों में बहता है। हम सब्जीमण्डी क्षेत्र के निवासी दिल्ली जल बोर्ड के अधिकारियों से इसकी शिकायत कई बार कर चुके हैं। अपने क्षेत्र के विधायक महोदय को भी इस स्थिति की शिकायत की थी। कुछ दिनों के लिए पानी साफ हो जाता है। परन्तु फिर वही हालत। गली-मुहल्ले के कई लोग इस कारण बीमार भी पड़ चुके हैं।

पुराने जमाने में लोग कहा करते थे कि और कुछ न भी मिले, हवा खाते हैं पानी पीते हैं और मौज से रहते हैं। परन्तु लगता है अब तो इस प्रकार की कहावत भी बेमानी होती जा रही है। इसका कारण बहुत स्पष्ट है, पानी भी प्रदूषित मिलेगा तो कोई मौज से कैसे रह सकता है?

मैं बहुत मजबूरी में यह पत्र आपको लिख रहा हूँ। आशा है कि इस क्षेत्र के जन-समुदाय का ध्यान रखते हुए आप इस पत्र को अपने लोकप्रिय दैनिक में जरूर छापेंगे ताकि सम्बन्धित आधिकरियों तक आपके माध्यम से यह शिकायत पहुँच सके और उनके कान पर जूँ रेंगने लगे।

आभार सहित।

भवदीय,

हस्त०/–

क ख ग

सब्जी मण्डी क्षेत्र

दिल्ली

सूचनार्थ प्रति

1. सहायक अभियंता, दिल्ली जल बोर्ड, सब्जी मंडी क्षेत्र।
2. विधायक, सब्जी मंडी क्षेत्र, दिल्ली सरकार।

4. सम्पादक,

क ख ग समाचारपत्र

.....

नई दिल्ली।

दिनांक :.....

विषयः- संस्कृत भाषा के साथ दुखद व्यवहार।

प्रिय महोदय,

आपके लोकप्रिय हिंदी दैनिकपत्र में हमेशा जागरुकतापूर्ण और उपयोगी विचारों को प्रचारित करने वाले पत्र छापे जाते रहे हैं। इसी संदर्भ में मैं आपके माध्यम से संस्कृत भाषा की उपेक्षा के प्रति अपने विचार प्रसारित करवानः चाहता हूँ।

एक हमारा ही देश है जो अपनी संपन्न भाषिक संपदा को भूलकर अंग्रेजीकरण में जुटा है। जबकि दुनिया की दूसरी समृद्ध भाषाएं अब भी देश और उनके निवासियों के दैनिक व्यवहार में बची हुई हैं। चीन में प्रगति और आधुनिकता के

बावजूद चीनी बची हुई है, इसी तरह जर्मनी में जर्मन या फ्रांस में फ्रेंच। हमारी सबसे प्राचीन भाषा संस्कृत रही है। हम इसे जीते जी मारने पर तुले हैं। उधर, जर्मनी में संस्कृत पर लगातार अध्ययन और शोध हो रहा है। संस्कृत में इतने श्रेष्ठ ग्रंथ और काव्य लिखे जाने के बाद भी इस भाषा के प्रति व्यावसायिक कारणों से बनी हमारी बेरुखी दुखद है। इसी बेरुखी के कारण कई भाषाएं अकाल मौत का शिकार हो रही हैं। क्या अपनी समृद्ध भाषाओं को बचाना हमारा कर्त्तव्य नहीं।

आशा है आप मेरे उपर्युक्त दृष्टिकोण को अपने समाचारपत्र में अवश्य स्थान देंगे।

भवदीय,

ए.बी.सी.

नई दिल्ली

5. सम्पादक,

अ. ब. स. दैनिकपत्र

.....

नई दिल्ली।

दिनांक :.....

विषयः- ऑस्कर बनाम औपनिवेशिक मानसिकता।

प्रिय महोदय,

आप जानते ही हैं कि हर वर्ष ऑस्कर अवार्ड की धूम मचती है। पिछले वर्षों में हिंदी और हिन्दीतर भारतीय भाषाओं की फ़िल्म भी इस दौड़ में शामिल होती रही हैं। इस वर्ष भारत की एक विशेष पृष्ठभूमि पर बनी सकारात्मक दृष्टिकोण वाली फ़िल्म 'स्लमडॉग' को सफलता मिली है। पूरा भारत भी विश्व के साथ इस जीत का जश्न मना रहा हैं। परन्तु मैं आपके माध्यम से इसके बारे में एक भिन्न दृष्टिकोण से विश्व की जनता को अवगत कराना चाहता हूँ।

'स्लमडॉग' को ऑस्कर इसलिए मिला क्योंकि वह एक ब्रिटिश फिल्म थी। इससे कहीं उम्दा फिल्में भारतीय निर्देशकों ने बनाई पर उसे ऑस्कर के लायक नहीं माना गया। ऑस्कर नाम से फूले नहीं समाने वाले लोगों को यह नहीं भूलना चाहिए कि धारावी के एक गरीब बच्चे को स्लमडॉग कहना औपनिवेशिक मानसिकता की उपज है। भारतीयों के लिए यह एक शर्म का विषय है। हम अवॉर्ड पाने की खुशी में इस पक्ष को क्यों भूल रहे हैं।

आशा है, मेरे उपर्युक्त विचारों को अपने समाचारपत्र में अवश्य स्थान देंगे।

भवदीय,

क ख ग

दिल्ली

6. सम्पादक,

क. ख. ग. दैनिक समाचारपत्र

.....

नई दिल्ली।

दिनांक :.....

विषयः- गांधी की विरासत की नीलामी

प्रिय महोदय,

इन दिनों महात्मा गांधी के इस्तेमाल की वस्तुओं का मामला बहुत गरमाया हुआ है। भारत के लोग इस तरह के प्रयास

से परेशान भी है और नाराज भी। मैं आपके लोकप्रिय समाचारपत्र के माध्यम से इस संदर्भ में अपने विचारों को कुछ भिन्न तरह से प्रस्तुत करना चाहता हूँ। आशा है, इन्हें अपने समाचारपत्र में छापकर इस विषय पर लोगों को विचार करने का मौका जरूर देंगे।

कल सपने में गांधी आए... ओफ्फो... राहुल गांधी नहीं, महात्मा गांधी।

काफी नाराज लग रहे थे। मैंने कहा कि बापू जी कौन-सी चिंता सता रही है आपको? चाहो तो मैं कुछ सहायता...

मेरा वाक्य बीच में तोड़कर बड़ी व्यथा से बापू बोले : 'बेटा सत्य, अहिंसा, शिक्षा, दारूमुक्ति जैसे विचारों को मैंने जिंदगी भर समाज में फैलाया, और आज देखो कि कोई मद्यसम्राट मेरी चीजों के लिए वहां बोली लगा रहा है।' बापू आगे बोले: 'दुःख होता है कि जिसने लाखों लोगों को नशे में डुबोया, औरतों के उत्तेजक कैलेंडर बनवाए, दारू को बढ़ावा दिया, ऐसे व्यक्ति ने मेरी चीजें आज खरीद लीं।'

फिर थोड़ी नरमी से कहा : 'क्या कोई और गांधीवादी नहीं था इस राष्ट्र में?... या यही गांधीगिरी है। कहां गए वो सब राष्ट्र को चलाने वाले नेता? या जुटे हैं अपना राजकीय स्वार्थ पूरा करने में? मैं जिंदा होता तो आमरण उपवास करता। लेकिन इस तरह अपनी वस्तुओं को नीलाम नहीं होने देता। कोई तो रास्ता होता जिससे मैं इसे रोक पाता... कोई तो... कोई तो...

सपने में बापू को इतना असहाय पाकर मैंने आंखें खोल दी। बिस्तर पर पड़ा खुद से बस यही कह सका : बापू जी, क्या करोगे, अब जमाना बदल गया है।

भवदीय,

अ. ब. स.

नई दिल्ली

7. सम्पादक,

..... दैनिक समाचारपत्र

.....

नई दिल्ली।

दिनांक :.....

विषयः- अमेरिकी दृष्टि और नेतागण

प्रिय महोदय,

आप जानते ही है कि इन दिनों अमरीका ने राष्ट्रपति के रूप में बराक ओबामा को चुनकर विश्व में वैचारिक-मंथन का अवसर दिया है। हमारे देश में भी इसपर तरह-तरह से खासी चर्चा हो रही है। इस संदर्भ में मैं अपने नेताओं और अमरीका के दृष्टकोण के बीच की असलियत को अपने ढंग से प्रस्तुत कर रहा हूँ। आशा है आप इन्हें अपने पत्र में छापने का कष्ट करेंगे।

भारत के राजनीतिक दलों में सत्ता से बाहर होते ही अमेरिकी विरोध जग जाता है, जबकि सत्ता में रहते हुए वे अमरीका के नक्शेकदम पर ही चलते हैं। पहले हमारे नेतागण बुश के गुण गा रहे थे, अब सारा देश अपने राजनेताओं से नहीं, ओबामा से आस लगाए बैठा है। मानो ओबामा हमारे तारणहार हों। यह जानते हुए भी कि इस राह नहीं, उस राह अमरीका अपने लाभ पर हमें तरजीह नहीं देगा, हम उसकी भक्ति क्यों करते हैं?

भवदीय,

क. ख. ग.

..... शहर

(ख) साहित्यिक पाठ

(1) खण्ड काव्य : रश्मिरथी : रामधारी सिंह 'दिनकर'

—डॉ० रमेशकुमारी खनेजा
पूर्व रीडर, हिंदी-विभाग
मुक्त शिक्षा विद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

1. दिनकर : व्यक्तित्व और कृतित्व

श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' आधुनिक युग के प्रख्यात कवियों में से हैं। इनका जन्म बिहार के मुंगरे जिले के सिमरिया घाट नामक ग्राम में 30 सितम्बर, सन् 1908 में हुआ। दिनकर ने प्राथमिक शिक्षा गाँव में ही प्राप्त की। सन् 1928 में वे मोकोमाघाट के हाई स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। मैट्रिक में सर्वश्रेष्ठ हिन्दी विद्यार्थी होने के नाते उन्हें भूदेव पदक प्राप्त हुआ। 1928 में ही बी.ए. करने के लिए ये पटना आ गये थे। इन्हीं दिनों इनका संपर्क 'युवक' नामक पत्रिका से एवं उसके सम्पादक बेनीपूरीजी से हुआ। कुछ ही दिनों के बाद 'दिनकर' की उग्र कतिवाएँ 'युवक' में छपने लगी थीं। स्कूल के दिनों से ही पढ़ाई की अपेक्षा कविता और साहित्य पर वे अधिक ध्यान देने लगे थे। सन् 1932 में उन्होंने पटना विश्वविद्यालय से इतिहास में आनर्स लेकर बी.ए. की परीक्षा पास की। बी.ए. पास करने के बाद अर्थाभाव के कारण उन्हें पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी। नौकरी खोजने में इन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। शुरू शुरू में वे एक हाई स्कूल में 55 रुपये मासिक वेतन पर हेडमास्टर नियुक्त हुए। बाद में उन्होंने यह नौकरी छोड़ दी और सब रजिस्ट्रार के रूप में सरकारी सेवा में आ गये। अक्टूबर 1934 से सितम्बर 1943 तक पूरे दस वर्ष वे इसी पद पर कार्य करते रहे। सरकारी नौकरी करते हुए अक्सर वे कुंठित और क्षुब्ध रहे। उनकी कविताओं में पाये जाने वाले क्षोभ और विद्रोह का संभवतः यह भी एक कारण हो। पहली बार सन् 1950 में उन्हें खुला वातावरण मिला। कारण यह था कि इन्होंने सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया था और मुजफ्फरपुर कॉलेज में हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त हो गए थे। बाद में ये राज्यसभा के सदस्य मनोनीत किये गये। कुछ समय तक भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति तथा भारत सरकार के विशेष हिन्दी-अधिकारी के रूप में भी इन्होंने कार्य किया। स्वभाव से ही 'दिनकर' परिश्रमी और अध्ययनशील थे। सरकारी नौकरी की कठिनाइयों एवं अनेकानेक विवशताओं से घिरे हुए होने पर भी 'दिनकर' की काव्य-प्रतिभा कुंठित नहीं हो सकी। वे निरन्तर काव्य साधना करते रहे। उन्हें हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू, बंगला एवं संस्कृत का भी अच्छा ज्ञान था। साहित्य के अतिरिक्त दर्शनशास्त्र, राजनीति एवं इतिहास में उनकी विशेष रुचि थी। अनेक प्रकार के साहित्यिक सम्मानों से विभूषित, काव्य के क्षेत्र में 'युग चारण' कहलाने वाला यह यशस्वी कवि अप्रैल 1974 में इस संसार से विदा हो गया।

व्यक्तित्व : दिनकर जी अत्यन्त ही प्रखर व्यक्तित्व के स्वामी थे। 'निराला' जी की तरह इनका कद ऊँचा था। उनके नेत्र तेजपूर्ण थे और ललाट उन्नत था। शरीर एवं डीलडौल से भी सामान्य व्यक्तियों की तुलना में वे विशिष्ट लगते थे। उनके व्यक्तित्व में क्षत्रिय का तेज और ब्राह्मण का अहं एक साथ मिला हुआ था। 'दिनकर' के व्यक्तित्व की विस्तृत झांकी हमें उनके काव्य-नायकों के व्यक्तित्व में देखने को मिलती है। उनके समस्त काव्य-नायक उनके ही व्यक्तित्व के अंश प्रतीत होते हैं। परशुराम की तरह दिनकर का क्रोध भी प्रसिद्ध था। उनकी ही तरह कवि में क्षत्रियत्व और ब्राह्मणत्व दोनों ही गुण विद्यमान थे। 'कुरुक्षेत्र' के भीष्म, 'रश्मिरथी' के कर्ण और 'उर्वशी' का पुरूरवा मानो उनके ही व्यक्तित्व के विभिन्न अंग हैं। वे स्वभाव से भाव-प्रवण एवं दार्शनिक-चिन्तक थे। कठोर प्रतीत होते हुए भी वे अत्यन्त संवेदनशील थे। ऐसे अनेक अवसर देखे जा सकते हैं, जब 'दिनकर' जी सहानुभूति में रोये। चन्द्रशेखर आजाद की गिरफ्तारी के समय या 'सरोजस्मृति' कविता सुनते समय उनकी आँखों से आँसू बहने लगे थे। कवितापाठ करते हुए स्वाभाविक रूप से भाव-भंगिमा बदलने में वे निपुण थे। अभी वे गरजती हुई आवाज में कविता पढ़ रहे होते कि अचानक उनका स्वर अत्यन्त धीमा हो जाता और भावानुकूल भंगिमा बदल जाती। राजनीति में भी उनकी पर्याप्त रुचि थी। वे राज्य सभा के मनोनीत सदस्य भी रहे, किन्तु लक्ष्य साहित्य-सर्जन ही रहा सामान्य जनों, मित्रों एवं गोष्ठियों के बीच भी उनके व्यवहार में विशेष फर्क नहीं पड़ता था। सर्वत्र वे अकृत्रिम, सहज और आडम्बर-विहीन होते थे। दिनकर अत्यन्त स्वाभिमानी थे। 'उर्वशी' काव्य में नायक पुरुरवा उर्वशी से कहता है– 'अपने समय का सूर्य हूँ मैं।' यही कथन दिनकर पर भी लागू होता है। लगता है, यह कथन कवि की अपनी प्रति की गई गर्वोक्ति है। यह उनके गम्भीर आत्मविश्वास को प्रकट करता है। महारथी कर्ण की तरह वे भी मानो विभापुत्र थे। उनका उपनाम 'दिनकर' सार्थक है। वे सूर्य की तरह प्रखर थे, आलोकवाही थे।

कृतित्व : दिनकर ने हिन्दी काव्य-जगत् में अपनी प्रथम महत्त्वपूर्ण कृति 'रेणुका' के साथ 1935 ई० में प्रवेश किया। परन्तु इससे पूर्व भी उन्होंने अपनी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय दे दिया था। 'प्रणभंग' (1929 ई०) इनकी पहली कृति मानी जाती है। और 'रेणुका' काव्य-संग्रह के उपरान्त तो उनकी 'हुंकार', 'रसवंती', 'द्वन्द्वगीत', 'धूप-छाँव', 'सामधेनी', 'बापू' आदि कई काव्य-कृतियाँ प्रकाशित हुईं। 'कुरुक्षेत्र', 'रश्मिरथी' तथा 'उर्वशी' इनके प्रबन्धकाव्य हैं। 'कुरुक्षेत्र' महाभारत की कथा पर आधारित युद्ध-काव्य है। इसमें कवि ने प्रश्न उठाया है कि लोक-संहारक युद्ध का उत्तरदायी कौन है? 'कुरुक्षेत्र' की पृष्ठभूमि द्वितीय महायुद्ध है। 'रश्मिरथी' को महारथी कर्ण का प्रशस्ति-काव्य कहना चाहिए। यहाँ कर्ण उपेक्षित एवं कलंकित मानवता के प्रतीक बनकर आये हैं। 'उर्वशी' का आधार 'उर्वशी-पुरुरवा' की पुरातन प्रेम-कथा है। 'नील-कुसुम' की कविताओं में आधुनिक काव्य-प्रयोगों के दर्शन होते हैं। सन् 1965 में इनका एक संग्रह 'आत्मा की आँखें' नाम से प्रकाशित हुआ है। इनकी सारी कविताएँ अंग्रेजी के कवि डी.एच. लारेन्स की कविताओं का रूपान्तर हैं। 'परशुराम की प्रतीक्षा' नामक काव्य-संग्रह में ओजपूर्ण चिन्तन है। इसमें चीनी आक्रमण के सन्दर्भ में राष्ट्र-रक्षा के भाव और वीरता का दर्प जगाने वाली कविताएँ हैं।

गद्यकार के रूप में भी 'दिनकर' का हिन्दी-साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'दिनकर' जी का गद्यकार भी उतना ही सशक्त है जितना कि कवि। इस दिशा में उनका कृतित्व अपना पृथक् और महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। 'मिट्टी की ओर', 'अर्द्धनारीश्वर', 'रेती के फूल', 'उजली आग', 'काव्य की भूमिका', 'प्रसाद', 'पंत और मैथिलीशरण', 'लोकदेव नेहरू', 'शुद्ध कविता की खोज' आदि उनकी महत्त्वपूर्ण गद्य कृतियाँ हैं। इन गद्य-कृतियों से अलग दिनकर से 'संस्कृति के चार अध्याय' नामक वृहत्-ग्रन्थ में भारतवर्ष का सांस्कृतिक इतिहास प्रस्तुत किया है। हिन्दी में यह अपने ढंग का अनूठा प्रयास है। इस ग्रन्थ पर उनको साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी मिला था। 'उर्वशी' पर इन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ। 'काव्य की भूमिका' 'प्रसाद' पन्त और मैथिलीशरण' तथा 'शुद्ध कविता की खोज' आदि कृतियों ने इन्हें हिन्दी के श्रेष्ठ आलोचकों की कोटि में ला दिया है।

विचारधारा : 'दिनकर' का उदय उस समय हुआ, जब छायावाद चरम अवस्था पर पहुँचकर अपना आकर्षण खो रहा था और नवयुवक कवियों की रचनाओं में देश को आजाद कराने की अभिलाषा, संकल्प और संघर्षशील मनोवृत्ति व्यक्त हो रही थी। युवक कवियों का एक समुदाय ऐसा भी था जो राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए जन-आन्दोलन में हिस्सा बंटा रहा था और जन-सभा के मंच से अंग्रेजों, सामन्तों और देशद्रोहियों के विरुद्ध आग उगल रहा था।

दिनकर ऐसे कवियों के अग्रणी थे। उस समय दिनकर का राष्ट्रभक्त और मानववादी कवि भारत को पूर्ववत् सम्पन्न, सन्तुष्ट और समृद्ध देखने के लिए व्याकुल था। वैषम्य को मिटाने के लिए उसने क्रान्ति का आह्वान किया। स्वतन्त्रता उसकी आराध्य थी जिसे किसी भी कीमत पर प्राप्त करना कवि का उद्देश्य था। अतः उसने अतीत से वर्तमान की तुलना कर देश के उत्साही युवकों में चेतना भरती चाही। कवि के कंठ से इतिहास अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ बोल उठा। 'रेणुका' और 'हुंकार' की कुछ कविताएँ इसी तरह की हैं। कवि ने अपने युग की बेचैनी, अधीरता, आक्रोश और क्रोध को सबलता के साथ कविता में व्यक्त किया है। प्रगतिशील विचारधारा को देखकर कुछ आलोचक इन्हें प्रगतिवादी कवि भी कह देते हैं। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि इन्ही 'प्रगति' साम्यवाद का पर्याय नहीं, अपितु 'नवीनता' की सूचक है। इनका प्रगतिशील काव्य वैयक्तिकता को आग्रहपूर्वक स्वीकार करता है। कवि के शब्दों में, "जिस दिन वैयक्तिकता समाप्त हो जायेगी उसी दिन साहित्य से नवीनता का लोप हो जायेगा।" कहना न होगा कि इन्होंने प्रगतिवाद को संशोधन और परिवर्तन के साथ स्वीकार किया है।

भाषा का प्रसादगुण इनके काव्य की विशेषता है। यथास्थान मुहावरों के प्रयोग ने उसमें और भी कसावट ला दी है। अधिकांशतः बोलचाल की भाषा का प्रयोग होने पर भी फारसी-अरबी के उन्हीं शब्दों के प्रयोग मिलते हैं जो खड़ी बोली से एकात्मक हो चुके हैं। इस प्रकार के प्रयोग कवि की भाषा-निष्ठा के परिचायक हैं। अलंकारों के प्रयोग पर भी विशेषतः उपमा, रूपक, दृष्टान्त और उत्प्रेक्षा पर कवि की पैनी दृष्टि के दर्शन होते हैं। ये सभी स्वाभाविक और सहज रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

राष्ट्रीय विचारधारा के पोषक कवि दिनकर का स्वर विद्रोही है। वे समाज में परिवर्तन के प्रबल समर्थक हैं। उनकी अनेक रचनाओं में इन्हीं विचारों की अभिव्यक्ति हुई हैं। गाँधीवाद से प्रभावित होने पर भी कवि दिनकर ने अत्याचार और अन्याय के दमन के लिए युद्ध को आवश्यक माना है। उनकी मान्यता है कि मानव अपने पुरुषार्थ द्वारा अपने भाग्य को बदल सकता है।

योगदान

इतना तो आप जानते ही हैं कि छायावाद के सभी कवि-प्रकृति प्रेम, अदृश्य सत्ता (ईश्वर) आदि के सम्बन्ध में कविताएँ

लिख रहे थे। छायावाद-काल में राष्ट्रीय जागरण, देश-दशा, अतीत-गौरव, समाज-सुधार आदि विषयों पर स्पष्ट ढंग से कविताएँ प्रायः नहीं लिखी जाती थीं। दिनकर ने प्रायः इन्हीं विषयों पर कविताएँ लिखनी शुरू कीं। इन्हें ऐसी कविताओं की प्रेरणा, भूषण, भारतेन्दु, मैथिलीशरण गुप्त और माखनलाल चतुर्वेदी से प्राप्त हुई। छायावादी कवियों में निराला .और पन्त ने ऐसी कविताएँ लिखनी शुरू की थीं। इस तरह कुल मिलाकर काव्य-क्षेत्र में ऐसी कविताओं के लेखन और प्रसार की भूमिका तैयार हो चुकी थी।

राजनीतिक आन्दोलन के क्षेत्र में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए असहयोग आन्दोलन चल रहा था। कांग्रेस के भीतर से ही समाज के सभी लोगों ने कल्याण और हित चाहने वाले नेताओं का अभ्युदय हो रहा था। इस तरह राजनैतिक आन्दोलन की तत्कालीन परिस्थितियों ने भी दिनकर को प्रेरित किया। दिनकर के समकालीन कवियों में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', नरेन्द्र शर्मा, शिवमंगलसिंह 'सुमन' आदि भी इसी प्रवृत्ति की रचनाएँ हिन्दी को दे रहे थे।

राजनैतिक और सांस्कृतिक सभा सम्मेलनों के मंच से दिनकर राष्ट्रीय, प्रगतिशील और समाजवादी कविताएँ सुनाते थे। हजारों और लाखों की भीड़ में दिनकर के कंठ से जनता के हृदय का हाहाकार फूट पड़ता था। आपने अगर दिनकर जी के कण्ठ से कभी कविता सुनी होगी तो इतना आप अवश्य मानेंगे कि दिनकर की वाणी ओज, पुरुषार्थ तथा विद्रोह के आह्वान से भरी होती थी। दिनकर के लोकप्रिय होने का सबसे बड़ा कारण यह भी है कि जनता के मन की तड़प और क्रोध को वह बड़े सबल स्वरों में व्यक्त करते थे। "मेरे नगपति! मेरे विशाल!" जैसी लम्बी कविता को उस समय लोग बार-बार सुनते थे। दिनकर की 'विपथगा' शीर्षक कविता आजादी के पहले बहुत लोकप्रिय हुई थी।

दिनकर की क्रान्तिकारी भावनाओं की महत्त्वपूर्ण कविताओं का संग्रह 'हुंकार' नाम से 1938 ई० में प्रकाशित हुआ था। 'हुंकार' के प्रकाशन से दिनकर हिन्दी-काव्य-जगत में स्थायी यश के अधिकारी बन गये थे।

साम्प्रदायिक दंगों पर भी दिनकर ने कई कविताएँ लिखीं। उन्होंने ऐसी कविताओं में राष्ट्रीय एकता का समर्थन और धार्मिक विद्वेष का खंडन किया है। शांति और समता पर आधारित शासन-व्यवस्था के निर्माण के उद्देश्य से दिनकर जी ने 'कुरुक्षेत्र' जैसे सफल प्रबन्ध काव्य की रचना की है। आजादी के बाद जब हमारे देश में जातीय विद्वेष की आग भड़की और प्रतिभा का अपमान जाति के नाम पर होने लगा, तो दिनकर की समर्थ लेखनी से 'रश्मिरथी' जैसे प्रबन्धकाव्य की रचना हुई। सन् 1962 में जब चीनियों के साथ हमारा संघर्ष हुआ तो दिनकर ने राष्ट्र-रक्षा के निमित्त परशुराम के अवतार की कामना करते हुए 'परशुराम की प्रतीक्षा' नामक काव्य की रचना की।

इस तरह दिनकर के काव्य-विकास पर ध्यान दें तो पता चलता है कि दिनकर पूर्णतः राष्ट्रीय कवि थे। देश की रक्षा, देश के मनुष्य के सुख और देश की प्रगति के लिए ही वह साहित्य की रचना करते थे।

आधुनिक हिन्दी कविता के विकास में दिनकर का महत्त्व इस राष्ट्रीय भावना के कारण भी है। आलोचकों ने उन्हें 'युग-चारण', 'जनकवि' आदि नामों से सम्बोधित किया है।

रश्मिरथी का परिचय

'रश्मिरथी' कवि दिनकर द्वारा रचित एक उत्कृष्ट प्रबन्ध-काव्य है। 'रश्मिरथी' का कथानक सात सर्गों में बंटा हुआ है। इस काव्य के कथानक का आरम्भ रंगभूमि में कौरवों-पाण्डवों की शस्त्र-विद्या की परीक्षा से होता है और अन्त अर्जुन द्वारा कर्ण के वध से। कर्ण की मृत्यु के पश्चात कृष्ण ने कर्ण की वीरता, दान, सुशीलता आदि गुणों की प्रशंसा की हैं।

'रश्मिरथी' काव्य का मुख्य उद्देश्य मानवता के महान् गुणों की प्रतिष्ठा करना तथा उसके महत्त्व को उजागर करना है। कर्ण के चरित्र द्वारा कवि ने बताया है कि मनुष्य जन्म से बड़ा नहीं होता, मानवीय गुणों से ही बड़ा बनता है। कथा की पौराणिकता के धरातल पर कर्ण के व्यक्तित्व का नया मूल्यांकन सम्भवतः 'पौराणिकता में नवीनता' का सुन्दर उदाहरण है।

2. 'रश्मिरथी' काव्य का कथा-सार

'रश्मिरथी' काव्य को रामधारी सिंह दिनकर ने सात सर्गों में विभक्त किया है। इस काव्य में कर्ण के चरित्र के विराट् और उज्जवल पक्षों का मार्मिक चित्रण किया गया है।

प्रथम सर्ग में रंगभूमि का प्रसंग है, जिसमें अर्जुन और कर्ण की प्रतिद्वन्द्विता दिखाई गयी है। अर्जुन अपने **अस्त्र-शस्त्र**-चालन-कौशल का प्रदर्शन कर रहा है। दर्शक उसकी कला पर विमुग्ध हैं। उसी समय अर्जुन को ललकारता

हुआ कर्ण रंगभूमि में प्रवेश करता है वह ऐसे रण-कौशल का प्रदर्शन करता है कि जन-जन की आँखें टंगी रह जाती हैं। फिर कर्ण अर्जुन को द्वन्द्व के लिए ललकारता है। यहीं से कर्ण के ओजस्वी रूप की झांकी मिलनी आरम्भ हो जाती है। अर्जुन को गुरु कृपाचार्य चुप रहने के लिए कहते हैं। गुरु कृपाचार्य अर्जुन के क्षत्रियत्व की दुहाई देते हुए कर्ण से उसके कुल और वंश के विषय में पूछते हैं। कर्ण का हृदय इस बात को सुनकर क्षुब्ध हो गया। वह क्रोधावेश में बोला कि मेरे ये भुजदण्ड ही मेरी जाति हैं। वह अर्जुन की जाति और कुल पर प्रहार करता हुआ उसके पिता की जाति के विषय में पूछता है। जाति और वंश के नाम पर छल से एकलव्य का अंगूठा दान में माँगने वाले लोगों के कुलशील पर व्यंग्य करता है। गुरु कृपाचार्य राजपुत्र से लड़ने के लिए राज्य को अर्जित करने की शर्त रखते हैं। एक क्षण के लिए कर्ण हतप्रभ हो गया, लेकिन इस अन्याय को दुर्योधन न सह सका और उसने भरी सभा के बीच कर्ण के सिर पर अपना मुकुट पहना दिया और उसे अंग देश का राजा घोषित कर दिया। रंगभूमि में दुर्योधन की जय-जयकार गूँजने लगी। कर्ण पर दुर्योधन के इस व्यवहार का इतना प्रभाव पड़ा कि वह उसके साथ 'एक प्राण दो देह' हो गया।

द्वितीय सर्ग में, परशुराम और उनके शिष्य कर्ण की कथा विस्तार से कही गई है। कर्ण अपनी जांघ पर गुरु का सिर रखकर बैठे हुए हैं। गुरु को नींद आ गयी है। कर्ण भक्तिभाव से परशुराम की सेवा-सुश्रुषा मे सजग हैं। कर्ण के विचारों का ताँता तब टूटता है जब तक विषैला कीड़ा कर्ण की जांघ को कुतर-कुतर कर खाने लगता है। गुरु-भक्त कर्ण इस असह्य पीड़ा को सहता रहा। गुरु की नींद न टूट जाय इस आशंका से वह कीड़े को नहीं निकालता किन्तु गर्म-गर्म खून की धार के स्पर्श से गुरु की निद्रा भंग हो गई। कर्ण ने झपट कर कीड़े को घाव से निकाल बाहर किया। परशुराम कर्ण की इस सहन-शीलता को देखकर पहले तो प्रसन्न फिर एकदम गंभीर हो गये। तत्त्व-बोध होने पर वे कर्ण पर बरस पड़े और डांटते हुए यह कहने लगे कि तू कौन छली है? तू ब्राह्मण तो नहीं हो सकता। क्योंकि ब्राह्मण सहनशीलता को अपनाकर कभी जीवित नहीं रह सकता, तू अवश्य क्षत्रिय है। ठीक-ठीक बता नहीं तो शाप दे दूंगा।

कर्ण गुरु के इस रूप को देखकर हतप्रभ हो गया और डर कर कहने लगा कि मैं सूत-पुत्र हूँ, लेकिन आपकी सेवा करने वाला आपका सेवक हूँ। कर्ण ने कहा अब चाहे आप मुझे जो दण्ड दें लेकिन मैं अर्जुन को पराजित करने का व्रत लेकर आपके पास आया हूँ। यही मेरे जीवन की साध है कि मदान्ध अर्जुन को नीचा दिखा सकूं। गुरु परशुराम ने कर्ण से कहा कि तूने मेरे साथ छल किया है, अतः मेरे शाप से तू बच नहीं पायेगा। इतना कहकर गुरु ने कर्ण को यह शाप दिया कि मेरी विद्या का अमूल्य ब्रह्मास्त्र तू समय आने पर भूल जाएगा। परशुराम ने कहा कि मेरा शाप अटल है, लेकिन मैं साथ ही यह वरदान देता हूँ कि इस विश्व में तू महान कहलाएगा और भारत के इतिहास में तू एक कीर्तिमान स्थापित कर जाएगा।

'रश्मिरथी' के **तीसरे सर्ग** का आरम्भ पाण्डवों के अज्ञातवास से लौटने के वर्णन के साथ होता है। पाण्डव तप की अग्नि में तप कर सोने के सदृश हो गये हैं। इतने दिन तक संकटों और विघ्नों को बड़े साहस और वीरता से सहते रहने के कारण उनके व्यक्तित्व में असीम उत्साह और निखार दृष्टिगोचर होने लगा।

भगवान् कृष्ण पाण्डवों की मैत्री का संदेश देने के लिए हस्तिनापुर आते हैं। वह दुर्योधन (सुयोधन) की तरफ मैत्री का हाथ बढ़ाते हुए पाण्डवों को पाँच गाँव देने की माँग रखते हैं, और भावी भीषण विध्वंस से बचने की बात कहते हैं। दुर्योधन कृष्ण की बात को मानना तो दूर रहा, उन्हें बांधने के लिये आगे बढ़ा। यह देखकर कृष्ण ने हुंकार करते हुए अपने विराट् और असीम व्यक्तित्व का विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने कहा तूने मेरी बात नहीं मानी, मैत्री के हितकारी वचन को नहीं माना। अब मेरा अन्तिम संकल्प और निर्णय भी सुन ले-अब जीवन और मरण का फैसला रण में होगा। भगवान कृष्ण के इस निर्णय को सुन कर सारी सभा में सन्नाटा छा गया। भगवान कृष्ण जब सभा को छोड़कर जाने लगे तभी कर्ण भी सकुचाया हुआ-सा वहाँ दिखाई देता है। कृष्ण कर्ण को अपने रथ पर बिठाकर ले जाते हैं।

रथ पर कृष्ण और कर्ण वार्तालाप होता है। इस सर्ग में कृष्ण और कर्ण की बातचीत काफी महत्त्वपूर्ण है। कृष्ण कर्ण को अपनी और मिलाने का प्रयत्न करते हैं। उसे राजसी ठाठ-बाट का प्रलोभन देते हुए कौरवों का साथ छोड़ने के लिए कहते हैं। पांडवों में बिछड़े हुए भाई को भाई की तरह मिलने के लिए कहते हैं। कर्ण केशव के कहता है कि 'मुझे इस संकट में न डालें। मैं आपनी बात नहीं मान सकता। मैं अपने मित्र दुर्योधन का साथ किसी भी कीमत पर नहीं छोड़ सकता और फिर आपका साथ देने पर अर्जुन भी तो कलंकित होगा–सब लोग यही कहेंगे कि अर्जुन ने राजनीतिक चाल कर कर्ण को अपनी ओर फोड़ लिया'। कृष्ण और कर्ण की बातचीत का कोई समाधान नहीं निकला। कृष्ण कर्ण को प्रणाम कर रथ से उतर गया। कृष्ण भी कर्ण के मैत्री-भाव से बहुत प्रसन्न हुए।

'रश्मिरथी' के **चौथे सर्ग** में दान की महिमा के वर्णन के साथ ही दानवीर कर्ण के अपूर्व दान की कथा कही गयी है। गुणी और ज्ञानी कर्ण के बारे में तो यह प्रसिद्ध था कि रविपूजन के समय जो भी याचक उनके पास आता था, वह मुंहमाँगा दान प्राप्त करता था। गाय, धरती, हाथी, घोड़े आदि किसी चीज की भी याचना करने पर प्राप्त किया जा सकता था। दानवीर कर्ण प्रसन्न और स्वस्थ मन से इन सभी का दान किया करता था। एक दिन इन्द्र विप्र का वेश बनाकर उसे छलने के लिए उनके पास गये। विप्र ने कहा कि आपके दान की महिमा काफी सुनी है। कर्ण ने कहा कि हे विप्र! आप निस्संकोच होकर दान माँग लें। हर प्रकार की परीखा लेने के बाद विप्र इन्द्र ने कर्ण से कवच और कुण्डल की माँग की। कवच और कुण्डल की बात सुनकर कर्ण एकदम चकित रह गया, फिर उसने कहा कि मैंने तो आपको दीन विप्र समझा था। अब मेरी समझ में आया कि यह क्या रहस्य है। आप निश्चय ही सुरपति हैं। आप मुझे निरस्त्र करके, कवच और कुण्डल से खाली करके अर्जुन के सुख के लिए दान माँग रहे हैं। (महाभारत के अनुसार, अर्जुन इन्द्र का पुत्र था)।

कर्ण और इन्द्र के आपसी वार्तालाप से कर्ण के चरित्र का उज्ज्वल पक्ष सामने आता है। कर्ण इन्द्र से व्यंग्य से कहता है, 'यदि अर्जुन को विजय की कामना हो तो वह एक मोम की मूर्ति बनाए और उसे काटकर कर्णजयी कहलाए। हे इन्द्र! आपने बहुत अच्छा किया जो मुझसे कवच और कुण्डल माँग लिये। अब कोई नहीं कहेगा कि कर्ण कवच और कुण्डल की वजह से युद्ध जीत गया। अब जाकर आप अर्जुन से कहना कि 'पुत्र! मैं वृथा नहीं आया हूँ तेरे लिए कर्ण से विजय माँग लाया हूँ।' कर्ण की इन बातों को सुनकर इन्द्र ग्लानि से गलने लगे। काफी ग्लानि और क्षुद्रता से पीड़ित होने के बाद इन्द्र का मन कुछ स्वस्थ हुआ; उन्होंने कर्ण से कहा कि 'हे कार्ण! तू कुछ दान में माँग ले जिससे मेरा बोझ कुछ हल्का हो जाए।' इन्द्र से उने बिना माँगे अमोघ अस्त्र का वरदान दिया और कहा कि इस अमोघ अस्त्र का वार कभी खाली नहीं जाता, यह काल को खा सकता है, लेकिन इसका प्रयोग एक बार ही किया जा सकता है। देवराज इन्द्र अमोघ अस्त्र का दान देकर वहाँ से चले गये।

'रश्मिरथी' के **पाँचवे सर्ग** का आरम्भ कुन्ती द्वारा भावी युद्ध की कल्पना से होता है। कुन्ती युद्ध की विभीषिका से भयाक्रांत है। युद्ध की कल्पना से भयभीत होकर वह सोचने लगी कि कर्ण अनुजों के प्राण हरेगा अथवा अर्जुन के हाथों स्वयं मारा जायेगा। लेकिन इन सभी बातों को सोचकर कुन्ती का हृदय भर आता है। कुन्ती इन्हीं विचारों में डूबती-उतरती विदुर-भवन से बाहर आ जाती है। वहाँ से जाह्वी के तीर पर आती है। वहाँ पर राधेय (कर्ण) जल में दोनों बाहें संध्यापूजन में मग्न था। संध्यापूजन में मग्न कर्ण अप्रतिम तेज का पुंज दिखायी देता था। इस भव्य रूप में कर्ण को देखकर कुन्ती अपनी देवता को भूलकर निष्पलक नयनों से उस पर अपना ममत्व बरसाती रही।

जब कर्ण का ध्यान टूटता है, तब अपने सामने एक वृद्धा नारी को देखकर वह पूछता है कि आप कौन हैं? इसके बाद के प्रसंगों में कर्ण और कुन्ती के संवादों की झाँकी देखने को मिलती है। कुन्ती कर्ण को राधा का पुत्र न मानकर राजवंशी मानती हुई कहती है कि तुझे पाकर मैं बहुत धन्य हुई हूँ, कुमारिका होने के कारण और समाज-भय से मैं तुझे पिटारी में बन्द कर पानी में डाल आई थी। कुन्ती कर्ण को विश्वास दिलाती है कि वह उसी का पुत्र है, अंशुधर का प्रकाशमय सुत है। आकाशवाणी द्वारा भी इस सत्य पर प्रकाश डाला जाता है।

कर्ण कुन्ती को काफी खरी-खोटी सुनाता है। वह कहता है कि जब सब कुछ समाप्त होने को है और जीवन आखिरी दाँव पर लगा हुआ है, तब अंचल के पट में प्यार बाँधकर, इस मरघट में कौन-सी निधि खोजने आयी हो? मुझे त्यागने के बाद तुम्हारा ममत्व कहाँ खो गया था? तुमने माँ का चरित्र खूब निभाया! मुझे जग के लिए अकेला छोड़कर और अपने लिए राजसी ठाट-बाट सुरक्षित रखकर, तुमने काफी नाम कमाया है। हे देवी, तुम यहाँ से जाओ। मैं अपने मित्र का साथ कभी नहीं छोड़ सकता। कर्ण कुन्ती से कहता है कि तुम बहुत देर से आयी–अब तो समय हाथ से जाता रहा; अब तो मेरा एक ही ध्येय है– पार्थ को हराकर इस वसुधा पर अप्रतिम कहलाना। किन्तु कुन्ती की मनोदशा को देखकर एक और महादान कर्ण को करना पड़ा। उसने कुंन्ती को वचन दिया कि युद्ध में अर्जुन को छोड़कर उसके और किसी बेटे को वह अवसर आने पर भी नहीं मारेगा।

'रश्मिरथी' के **छठे और सावतें सर्गों** में कौरवों और पांडवों के बीच हुए भयंकर युद्ध का वर्णन किया गया है। भीष्मपितामह शर-शय्या पर पड़े हुए हैं। कर्ण भीष्मपितामह का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए उनके पास जाता है। वह भीष्मपितामह के चरणों को स्पर्श करके युद्ध में धनुष-धारण करने की आज्ञा चाहता है। भीष्मपितामह कर्ण को युद्ध में जाने के लिए मना करते हैं, परन्तु कर्ण को विचलित न होते देख उसे युद्ध में जाने का आदेश दे देते हैं।

कौरव और पांडवों में और भयंकर युद्ध छिड़ गया। कर्ण सागर के समान भीषण गर्जन करके अपने प्रतिपक्षी शत्रुओं पर टूट पड़ा। उसके इस भयंकर आक्रमण से शत्रु सेना के पाँव उखड़ने लगे। इस स्थिति को देखकर कृष्ण भी चक्कर में पड़ गये। उन्होंने अर्जुन को किसी तरह बचाने के लिए यह सोचा कि किसी तरकीब से कर्ण को एकघ्नी अस्त्र के प्रयोग के लिए बाध्य किया जाय। कृष्ण ने एकघ्नी का बार सहने के लिए घटोत्कच का आह्वान किया और उसे युद्ध करने का आदेश दिया। घटोत्कच ने कौरवों की सेना के साथ भयंकर युद्ध किया, जिससे कौरवों की सेना में खलबली मच गई। कौरवों की सेना के पैर उखड़ते दखे कर्ण को बाध्य होकर एकघ्नी अस्त्र का प्रयोग करना पड़ा। घटोत्कच इस युंद्ध में मारा गया। घटोत्कच के मारे जाने पर समस्त पांडव सेना में व्याकुलता छाने लगी। युधिष्ठिर, नकुल, भीम, सभी बिलखने लगे, उनके धैर्य की सीमा टूटने लगी। इस स्थिति को देखकर भी नट-नागर कृष्ण अपनी हँसी रोक नहीं पा रहे थे। यह सच है कि शक्ति और वीरता के अतिरिक्त कुछ बुद्धि का घात और छल-छद्म भी होना चाहिए। केवल शारीरिक बल से युद्ध में नहीं लड़ा जा सकता। कृष्ण ऐसी ही चाल चल गये।

रात्रि बीती और अगला दिन हुआ। रथ सजने लगे और युद्ध की भेरियाँ बजने लगीं। कर्ण गरज-गरज कर पाडंवों की सेना पर प्रहार कर रहा था। कर्ण के इस भयंकर युद्ध के सामने युधिष्ठिर, भीम और नकुल ठहर नहीं पाते थे। वचन-बद्ध होने के कारण कर्ण ने युधिष्ठिर, भीम आदि पांडवों को मारने का अवसर पाकर भी छोड़ दिया। स्वयं श्री कृष्ण भी इस महावीर को इस रूप में देखकर प्रशंसा किये बिना न रह सके। रथ पर चढ़ा कर्ण पांडवों पर भयंकर प्रहार कर रहा था। अचानक उसके रथ का पहिया कीचड़ में फंस गया। जब किसी भांति पहिया न निकला तो कर्ण रथ से कूद कर नीचे आया और पहिये को निकालने लगा लेकिन पहिया टस से मस नहीं हो रहा था। कृष्ण ने ऐसे समय को ही सबसे उत्तम मानते हुए अर्जुन को बाण चलाने का आदेश दिया। जब अर्जुन बाण चलाने को उद्यत हुआ तब शस्त्ररहित कर्ण ने कहा कि मानवता का कुछ तो ख्याल करो। अर्जुन को कुछ न कहते देख कृष्ण कुपित होकर बोले कि भीम को विष देते, लाक्षागृह को जलाते, अभिमन्यु को मारते और द्रौपदी का अपमान करते समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था। कर्ण ने भी प्रत्युत्तर में कहा कि आपने भी भीष्म, द्रोण एवं भूरिश्रवा की मृत्यु छल से करायी थी, फिर मैंने जो कुछ किया वह भी तो धर्म के लिए उचित ही था। इन स्थितियों में दोष किसका है, यह पूछता ही वृथा है। अन्त में कृष्ण की आज्ञा से अर्जुन ने अपने बाण के द्वारा कर्ण का सिर उड़ा दिया। इस स्थिति में कर्ण को देखकर आकाश से सारे सुर-यान चले गये और पवन भी इस दृश्य को देखकर व्यथित हो गया। मरते समय कर्ण को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे सूर्यलोक से प्रकाश का बना हुआ रथ उसे लेने आ रहा है। कर्ण के प्राण उसी रश्मि-रथ पर सवार होकर सूर्यलोक को चल पड़े। अन्त में कृष्ण भी कर्ण की पराजय को पराजय न मारकर उसके पराक्रम को ही श्रेष्ठ मानते हैं तथा कर्ण को तेजस्वी, वीर और तपस्वी बताते हैं।

3. कथानक की समीक्षा

महाभारत और 'रश्मिरथी' के कर्ण-प्रसंग

दिनकर का कवि के रूप में तथा 'रश्मिरथी' का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करने के बाद, अब हम महाभारत और 'रश्मिरथी' के कर्ण-प्रसंग पर विचार करते हैं। यह तो आप जानते ही हैं कि दिनकर ने 'रश्मिरथी' के कर्ण-प्रसंग को महाभारत से ग्रहण किया है। लेखक ने महाभारत के विभिन्न स्थलों से कर्ण के प्रसंग को ग्रहण किया है। महाभारत के आदिपर्व के अध्याय 110, 135 और 136 से लेखक ने **प्रथम सर्ग** की कथा ग्रहण की है। कर्ण के जन्म, कर्ण को पेटिका में बंद कर जल में बहाने का प्रसंग एवं कर्ण द्वारा रंगभूमि में अपने पराक्रम दिखाने का प्रसंग भी इसी आदिपर्व से लिये गये हैं। 'वनपर्व' मे भी कर्ण के जन्म की कथा का वृत्तान्त मिलता है। दिनकर जी ने प्रथम और पंचम सर्गों में इन घटना-प्रसंगों का बड़े ही विस्तार के साथ वर्णन किया है। यह भी आप जान लें कि दिनकर जी ने महाभारत के कर्ण-प्रसंग को 'रश्मिरथी' में कहीं-कहीं यथावत् तथा कहीं-कहीं कुछ मौलिक परितर्वनों के साथ प्रस्तुत किया है, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे। 'रश्मिरथी' के **द्वितीय सर्ग** की कथा को लेखक ने महाभारत के शांतिपर्व के द्वितीय और तृतीय अध्याय से ग्रहण किया है। कर्ण शस्त्रास्त्र की विद्या प्राप्त करने के लिए ब्राह्मण बनकर परशुराम के पास गये, वह वर्णन महाभारत के शांतिपर्व के तीसरे अध्याय में मिलता है। कर्ण को अन्तिम रूप से शाप इसी सर्ग में मिलता है।

'रश्मिरथी' के तीसरे सर्ग में श्रीकृष्ण का दुर्योधन को शांति-संदेश देना, दुर्योधन द्वारा श्रीकृष्ण को बंदी बनाने की चेष्टा करना तथा श्रीकृष्ण द्वारा विराट रूप दिखाना आदि घटनाएँ महाभारत के उद्योगपर्व के 124, 130 और 131 अध्यायों के अनुसार अंकित की गयी हैं। दिनकर जी ने कृष्ण द्वारा दुर्योधन को दिये गये शांति-संदेश दो पद्यों में तथा दुर्योधन द्वारा कृष्ण को बांधने को प्रसंग एक पद्य में दिया है। कृष्ण के विराट् स्वरूप का चित्रण लेखक ने विस्तार के साथ किया है। महाभारत

के उद्योगपर्व के अध्याय 131 के प्रसंग को, कवि ने उसी रूप में स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त कृष्ण और कर्ण का संवाद भी इसी पर्व के 140 और 141वें अध्याय के अनुसार है।

महाभारत के वनपर्व (कुण्डलाहरणपर्व) के अध्याय 310 के अनुसार कवि ने 'रश्मिरथी' के चतुर्थ सर्ग की रचना की है। इन्द्र के द्वारा ब्राह्मण का वेश बनाकर, कर्ण से कवच और कुण्डल की माँग करने की कथा, इसी प्रसंग में मिलती है।

कर्ण और कुन्ती के घटना प्रसंगों पर आधारित 'रश्मिरथी' के **पंचम सर्ग** की कथा महाभारत के उद्योगपर्व के 144, 145 और 146वें अध्यायों के अनुसार है। कर्ण और कुन्ती की कथा को विस्तार के साथ 'रश्मिरथी' में प्रस्तुत किया गया है।

'रश्मिरथी' के **षष्ठ सर्ग** की कथा महाभारत के भीष्मपर्व के अध्याय 122 से ली गई है। लेकिन कर्ण के साथ घटोत्कच के युद्ध एवं कर्ण के द्वारा एकघ्नी के उसका संहार महाभारत में द्रोणपर्व के अध्याय 179 के आधार पर है। 'रश्मिरथी' के सप्तम सर्ग की कथा महाभारत के कर्णपर्व के 90 और 91वें अध्याय के अनुसार है।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि दिनकर जी ने कर्ण के जीवन-प्रसंगों पर आधारित समस्त घटनाओं को अपनी आवश्यकता के अनुसार महाभारत की कथा से ग्रहण किया है।

महाभारत और रश्मिरथी में प्राप्त होने वाले कर्ण के प्रसंगों पर एक दृष्टि डालने के बाद, अब हम उन दोनों में उपलब्ध होने वाला एक-जैसे प्रसंगों पर संक्षेप में विचार करते हैं।

'रश्मिरथी' के प्रथम सर्ग में रंगभूमि के दृश्य की कल्पना महाभारत के आदिपर्व के अनुसार है। जब कर्ण अपनी वीरता से सबको स्तब्ध कर देते हैं, तब गुरु कृपाचार्य नीति की चाल चलते हैं। कर्ण की जाति, गोत्र और वंश के विषय में पूछते हैं। 'रश्मिरथी' के ये शब्द–

क्षत्रिय है, यह राजपुत्र है, यों ही नहीं लड़ेगा,
जिसं-तिस से हाथापाई में कैसे कूद पड़ेगा ?
अर्जुन से लड़ना हो तो मत रहो सभा में मौन,
नाम-धाम कुछ कहो, बताओ कि तुम जाति हो कौन ?

महाभारत के इन शब्दों के कितने मिलते-जुलते हैं–

अयं पृथायास्तनयः कनीयान् पाण्डुनन्दनः। कौरवो भवता सार्ध द्वन्द्वयुद्धं करिष्यति।
त्वमप्येवं महाबाहो मातरं पितरं कुलम्। कथयस्व नरेन्द्राणां येषां त्वं कुलभूषणम्।

(आदिपर्व, अध्याय 135)

इसी प्रकार कर्ण को अंग देश का अधिपति बनाने की बात, जो रश्मिरथी के प्रथम सर्ग में आई है, महाभारत के आदिपर्व के अध्याय 135 के श्लोक 36 में है।

महाभारत के कर्ण जब कृष्ण के रथ से उतर कर जाने लगते हैं, तब कृष्ण से यह कहते हैं कि युधिष्ठिर से आप यह न कहना कि कर्ण उनका बड़ा भाई है, नहीं तो राज्य ग्रहण न करेंगे।

'यदि जानाति मां राजा धर्मात्मा संयतेन्द्रियः। कुन्त्या प्रथमजं पुत्रं न स राज्यं ग्रहीष्यति।।'

(महाभारत उद्योगपर्व, अध्याय 141 श्लोक 21)

'रश्मिरथी' के लेखक भी कर्ण के मुख से तृतीय सर्ग में यही बातें कहलवाते हैं–

'पर एक विनय है मधुसूदन! मेरी यह जन्म कथा गोपन।
मत कभी युधिष्ठिर से कहिए, जैसे हो इसे दबा रहिए।
वे इसे जान यदि पायेंगे, सिंहासन को ठुकरायेंगे। तृतीय सर्ग, पृ. 45

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि दिनकर जी ने रश्मिरथी के कथा और घटना प्रसंगों को अपनी इच्छा और आवश्यकता के अनुसार महाभारत से यथावत् स्वीकार करने में पुराण-शैली का पूर्ण निर्वाह किया है। ऊपर दिये हुए उदाहरणों के द्वारा, रश्मिरथी और महाभारत के तुलनात्मक प्रसंगों से यह बात स्पष्ट हो जती है।

रश्मिरथी में निबद्ध कथा-प्रसंगों को मौलिकता के विषय में आगे, यथास्थान विचार किया जाएगा।

कथानक की समीक्षा

दिनकर का कवि-परिचय, महाभारत और 'रश्मिरथी' के कर्ण-प्रसंग तथा 'रश्मिरथी' का कथानक जान लेने के बाद, अब हम 'रश्मिरथी' काव्य की आलोचना करते हैं। किसी भी काव्य की आलोचना में कथानक का महत्त्वपूर्ण स्थान होता हैं। कथानक

के निर्माण में कवि विशेष रूप से सतर्क रहता है। कथानक में घटनाओं का उतार चढ़ाव एक विशेष कार्यकारण-सम्बन्ध से जुड़ा हुआ होता है। कोई भी घटना ऐसी नहीं होती जिसका कथानक के विकास से संबंध न जुड़ा हुआ हो। इसके अतिरिक्त कवि को यह भी ध्यान देना होता है कि कथानक में ऐसी अतिप्राकृत और अविश्वसनीय बातें न आ जायें जिससे कथानक के क्रमिक विकास में बाधा उत्पन्न हो जाए। इसलिए कवि कथानक और घटनाओं के संयोजन में विशेष रूप से सजग एवं सावधान होता है। कथानक में घटनाओं के परस्पर सम्बन्ध के अतिरिक्त कवि को कथानक में संगठन, कथानक में आवश्यक ग्रहण एवं अनावश्यक का त्याग, कथानक में मौलिक परिवर्तन, पुराण शैली की आवश्यकता के अनुरूप ग्रहण एवं परित्याग तथा कथा के विन्यास में विशेष सूझ-बूझ आदि पर भी ध्यान देना होता है। किसी भी काव्य के कथानक की आलोचना करते समय हमें इन सभी बातों पर ध्यान देना होता है।

कथानक में नवीनता और मौलिकता

दिनकर जी ने कर्ण के प्रसंग को महाभारत की अपेक्षा अधिक संवेदनशील बनाने के लिए कुछ मौलिक परितर्वन भी किए हैं। जहाँ वे महाभारत के प्रसंगों को यथावत् स्वीकार कर लेते हैं, वहीं वे कथाप्रसंगों को अधिक उपयोगी और मार्मिक बनाने के लिए नवीन मौलिक उद्भावनाओं को भी स्वीकार करते हैं। काव्य के प्रथम सर्ग से ही इस प्रकार के मौलिक परिवर्तन मिलने लगते हैं।

कर्ण अर्जुन से द्वन्द्व युद्ध करने के लिए तैयार हो जाता है, लेकिन गुरु कृपाचार्य बीच में आ जाते हैं। वे अर्जुन के पक्षधर हैं। लेकिन मन ही मन वे भी कर्ण के ओजस्वी रूप से बहुत प्रभावित हैं। द्रोण के कर्ण के विषय में ये वाक्य 'मुझे कर्ण में चरम वीरता का लक्षण मिलता है', तथा अर्जुन! तेरे लिए कभी वह हो सकता है काल-कर्ण को अर्जुन से अधिक वीर और पराक्रमी सिद्ध करते हैं। इन वाक्यों से कर्ण के उत्कर्ष की संभावना प्रारंभ से ही व्यक्त होने लगती है। इन स्थितियों तथा मनःस्थितियों का महाभारत में कोई भी संकेत नहीं मिलता है। इन प्रसंगों की कल्पना में कवि की मौलिकता विद्यमान है। कर्ण और अर्जुन के ये प्रसंग 'रश्मिरथी' के प्रथम सर्ग में नवीनता का द्योतक हैं।

महाभारत के आदिपर्व में कर्ण की जाति, गोत्र, कुल और देश की बात दुर्योधन करता है। वह गुरु कृपाचार्य के प्रश्नों के उत्तर स्वयं देता है लेकिन 'रश्मिरथी' में दिनकर जी ने इस तथ्यों को अधिक मार्मिक एवं प्रसंगानुकूल बनाने के लिए कुछ मौलिक सूझ बूझ से काम लिया है। यहाँ कर्ण स्वयं अपनी जाति और गोत्र की बात इन शब्दों में करता है– 'जाति जाति रटते, जिनकी पूँजी केवल पाखंड, मैं क्या जानूँ जाति जाति हैं ये मेरे भुजदंड।'

कथा के क्रमिक विकास को ध्यान में रखते हुए कवि ने अपने काव्य के द्वितीय सर्ग में भी मौलिक परिवर्तन किये हैं। महाभारत के शांतिपर्व के द्वितीय और तृतीय अध्याय में भीष्म परशुराम के शाप का इतिवृत्त युधिष्ठिर को सुनाते हैं। लेकिन दिनकर जी को यह स्थिति मान्य नहीं थी। उन्होंने अपने काव्य के द्वितीय सर्ग में परशुराम के शाप का वर्णन कर कथा को अधिक उपयुक्त और नवीन मोड़ देने में सफलता प्राप्त की है। इस प्रकार कथानक को प्रसंगानुकूल और स्वाभाविक बनाने की चेष्टा की गई है। 'रश्मिरथी' के अन्य सर्गों में आने वाली कथा से यह बात सिद्ध हो जाती है।

'रश्मिरथी' के चौथे सर्ग में भी कवि ने मौलिक सूझ-बूझ से काम लिया है। इन्द्र द्वारा कर्ण से कवच और कुण्डल माँगने की बात कही गई है। महाभारत में 'इन्द्र सीधे कर्ण से कवच-कुण्डल माँगते हैं–' यदेतत् सहज वर्म कुण्डले च तवानघ, एतदुत्कृत्य मे देहि यदि सत्सव्रतो भवान। (कुण्डला-हरणपर्व, अध्याय 310, श्लोक–4), लेकिन 'रश्मिरथी' के इन्द्र एकदम कवच-कुण्डल की माँग नहीं करते हैं। वह पहले कर्ण को दानशीलता, वीरता और पराक्रम आदि की बात करते हैं। वह कर्ण को पूरी तरह अपने वार्तालाप के द्वारा प्रभावित करते हैं, उसके बाद कर्ण से कवच-कुण्डल की माँग करते हैं। 'रश्मिरथी' में कर्ण और इन्द्र का वार्तालाप अधिक मनोवैज्ञानिक और तर्कपूर्ण है। महाभारत के वनपर्व में कर्ण और सूर्य के प्रसंगों को जिसमें सूर्य कर्ण से इन्द्र को कवच-कुण्डल न देने के लिए कहते हैं– वह प्रसंग कवि ने उपयुक्त न समझकर छोड़ दिया है।

कवच और कुण्डल लेने के बाद इन्द्र प्रसन्न होते हुए मन-ही-मन यह विश्वास हो जाने पर कि मैंने पांडवों के लिए विजय निश्चिय कर ली है, स्वर्गलोक जाते हैं। महाभारत के वनपर्व (अध्याय 310, श्लोक 39) के इस भाव को 'रश्मिरथी' के लेखक ने अधिक सटीक और भावगंभीर रूप में प्रस्तुत किया है। कर्ण देवराज से कहता है–

देवराज! जीवन में आगे और कीर्ति क्या लूँगा ?
इससे बढ़कर दान अनुपम भला किसे क्या दूँगा ?
अब जाकर कहिए कि, पुत्र! मैं वृथा नहीं आया हूँ,
अर्जुन! तेरे लिये कर्ण से विजय माँग लाया हूँ। (चतुर्थ सर्ग, पृ. 61)

'रश्मिरथी' में पाँचवें सर्ग में कर्ण और कुन्ती का वार्तालाप प्रस्तुत किया गया है। महाभारत के उद्योगपर्व में कुन्ती सीधे कर्ण के पास जाती है और उसे अपना पुत्र बताती है–

'कोन्तेयस्त्वं न राधेयो न तवाधिरथः पिता,
नासि सूतकूलेजातः कर्णतद्विद्धि मे वचः।' (उद्योगपर्व अध्याय 145 , श्लोक-2)

लेकिन रश्मिरथी के पंचम सर्ग में कुन्ती सीधे कर्ण के पास नहीं जाती है। वह पहले विचारों का ताना बाना बुनती है, तपस्या मग्न कर्ण के तेजस्वी रूप को देखती है। उसके ओजस्वी रूप से तदाकार होती है– फिर उसके पास जाती है। कर्ण के आँख खोलने पर और पूछने पर वह कहती है–

'राधा का सूत तू नहीं, तनय मेरा है, जो धर्मराज का वही वंश तेरा है।
तू नहीं सूत का पुत्र, राजवंशी है, अर्जुन-समान कुरुकुल का ही अंशी है।' (पृ. 70)

इस सर्ग में कुन्ती का आत्मसंघर्ष अत्यंत मनोवैज्ञानिक है। इस तरह का चित्रण महाभारत में नहीं मिलता।

महाभारत के द्रोणपर्व (अध्याय 179, श्लोक 48) में अनेक कौरवों ने कर्ण से घटोत्कच पर एकघ्नी शक्ति चलाने की प्रार्थना की, जबकि रश्मिरथी के षष्ट सर्ग में केवल दुर्योधन ने–

'हे वीर विलपते हुए सैन्य का, अचिर किसी विध त्राण करो,
अब नहीं अन्य गति, आँख मूँद, एकघ्नी का संधान करो।' – (पृष्ठ 121)

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि दिनकर जी ने रश्मिरथी के क्रथानक को अधिक उपयोगी और ग्राह्य बनाने के लिए कथानक में आवश्यक परिवर्तन किए हैं। कवि की मौलिक सूझ-बूझ से 'रश्मिरथी' का कथानक अधिक गतिशील एवं सुंगठित बन पड़ा है। कथानक का विकास अपनी स्वाभाविक गति से परिपूर्ण है।

अतिप्राकृत एवं अस्वाभाविक प्रसंगों का अभाव

'रश्मिरथी' के कथानक को अधिक स्वाभाविक और सजीव बनाने की कवि ने पूरी कोशिश की है। इसमें अलौकिक और अतिप्राकृतिक प्रसंगों का एकदम अभाव है। 'रश्मिरथी' के दूसरे सर्ग में दिनकर ने वज्रदंष्ट्र नामक जिस विषकीट का संकेत किया है, उस विषकीट का वर्णन महाभारत में बड़े विस्तार से मिलता है। वहाँ यह कहा गया है कि वह विषकीट पूर्वजन्म में दंश नामक असुर था। उसे भृगु ने कीड़ की योनि में जन्म लेने का शाप दिया था। दिनकर ने इस अलौकिक और अस्वाभाविक प्रसंग को कथा-विकास के लिए उपयुक्त नहीं माना और उसका परित्याग कर दिया। इसी प्रकार तृतीय सर्ग में दिनकर जी ने कर्ण और कृष्ण के वार्तालाप को महाभारत के उद्योगपर्व के 140 और 141वें अध्यायों के अनुसार प्रस्तुत किया है। कृष्ण कर्ण की जाति, गोत्र, वंश आदि की बात करते हुए उसे अपनी ओर करना चाहते हैं। अनेक प्रकार के प्रलोभन देते हैं। राजसी ठाठ-बाट का लोभ देते हैं, लेकिन कर्ण दुर्योधन की अटूट मित्रता के समक्ष इन सभी प्रलोभनों को ठुकराता है– यहाँ तक तो दिनकर महाभारत के अनुसार चलते हैं लेकिन जहाँ कर्ण पांडवों की विजय और कौरवों की पराजय सूचित करने वाले अपशकुन और स्वप्नों पर प्रकाश डालते हैं, वहाँ दिनकर उन अलौकिक और अतिप्राकृत प्रसंगों को ग्रहण नहीं करते। ये सभी प्रसंग महाभारत के उद्योगपर्व के 143वें अध्याय में आए हैं, जिन्हें दिनकर ने नहीं लिया।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि दिनकर जी ने 'रश्मिरथी' के कथानक को अपनी आवश्यकता के अनुसार परिवर्तित और परिवर्धित करने का पूर्ण प्रयास किया है। कथानक को गति देने वाली घटनाओं को भी कवि ने उचित रूप से प्रस्तुत किया है। घटनाएँ कथानक के साथ जुड़ी हुई हैं। कर्ण के प्रसंग से संबंधित घटनाएँ महाभारत के अनुसार यथावत् रूप में स्वीकार की गई हैं, जिनकी चर्चा हम महाभारत और 'रश्मिरथी' के कर्ण-प्रसंग में कर चुके हैं। इसका कथानक केवल कर्ण के प्रसंग पर आधारित होने के कारण संक्षिप्त है। कथानक स्वाभाविक एवं आकर्षक बन पड़ा है। कवि ने इस संक्षिप्त कथानक में कर्ण के माध्यम से पतित और दलित समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। कवि ने उपेक्षित और समाज से तिरस्कृत कर्ण के चरित्र को उभार कर प्रस्तुत किया है। कर्ण कर्म की प्रतिष्ठा करने वाले व्यक्तियों का प्रतीक बनकर हमारे सामने आता है। कर्ण वंश, गोत्र और कुल की मर्यादा की आड़ में अपनी हीनता छिपाने वाले व्यक्तियों पर कटु प्रहार करता है। पुरुषार्थ और कर्म की प्रतिष्ठा–ये दो ही मुख्य संदेश 'रश्मिरथी' में कर्ण के माध्यम में प्रस्तुत किये हैं। इन संदेशों को कथानक में अत्यंत स्वाभाविक रूप में कवि ने प्रस्तुत किया है।

कथानक में नाटकीयता

'रश्मिरथी' का कथानक सात सर्गों में बँटा हुआ है प्रत्येक सर्ग में कवि ने कथा के साथ-साथ अपने विचार भी प्रकट किये हैं। प्रत्येक सर्ग कर्ण के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं पर प्रकाश डालता है। घटनाओं से नायक कर्ण के चरित्र पर

तो प्रकाश पड़ता है, कथानक को भी गति मिलती है। कवि ने अनेक मार्मिक स्थलों का उद्‌घाटन किया है और कथा तत्त्व को गतिशील बनाये रखने के लिए अनेक सजीव कथोपकथनों का आयोजन भी किया है।

'रश्मिरथी' के कथानक की एक बहुत बड़ी विशेषता है– नाटकीयता। रंगभूमि में अकस्मात् कर्ण का आना और अर्जुन जैसे धनुर्धारी को लड़ने के लिए चुनौती देना पाठकों के हृदय में कुतूहल उत्पन्न कर देता है। तब धीरे-धीरे कर्ण के व्यक्तित्व की विशेषताओं का उद्‌घाटन होने लगता है।

शस्त्र-विद्या सीखने में कर्ण की लगन परशुराम को मन्त्रमुग्ध कर देती है; किन्तु कर्ण की यही सहनशीलता जब उसके लिए अभिशाप बन जाती है तो कथा में एक अन्य नाटकीय मोड़ आ जाता है। पाठक आशा करते हैं कि परशुराम से शस्त्र विद्या प्राप्त कर कर्ण युद्ध में अर्जुन को नाकों चने चबा देगा; किन्तु परशुराम का सहसा कुपित होकर उससे अपनी दी हुई विद्या का चरम तेज (ब्रह्मास्त्र-प्रयोग-विधि) वापिस ले लेना एक विशेष परिस्थिति उपस्थित कर देता है। कथावस्तु की नाटकीय वक्रता का एक अन्य उदाहरण यह है कि कर्ण के शरीर पर जन्म से ही स्वर्णमय कवच-कुण्डल थे, जिसके कारण कोई शस्त्र उसके शरीर को घायल नहीं कर सकता था। इधर उसे परशुराम ने एक ऐसा अस्त्र दिया था जिसका वार कभी खाली नहीं जा सकता था। ऐसी स्थिति में, युद्ध में अर्जुन पर उसकी विजय निश्चिय सी थी, किन्तु सूर्य पूजा करते समय अकस्मात् इन्द्र द्वारा भिखारी के रूप में आकर कवच कुण्डल माँग ले जाने और फिर युद्ध में घटोत्कवच को मारने के लिए एकघ्नी अस्त्र छोड़ने के लिए कर्ण को विवश हो जाने से युद्ध का पासा ही पलट जाता है। इस अवसर पर पांडव और कौरव दोनों दलों में प्रसन्नता के प्रकाश और विषाद की छाया की मिलती-जुलती झलक कथानक को अत्यन्त हृदय स्पर्शी बना देने वाली है। पांडवों की सेना तो अपने एक पराक्रमी वीर घटोत्कच की मृत्यु के कारण रो रही है, किन्तु श्रीकृष्ण को इस बात की प्रसन्नता है कि अब कर्ण के पास अर्जुन के वध के लिए कोई अस्त्र शेष नहीं रहा। उधर कौरव-सेना में इस बात का हर्ष है कि शत्रुपक्ष का एक भीषण योद्धा मारा गया, किन्तु कर्ण का हृदय इस बात से दुःखी है कि अर्जुन पर उसकी विजय का एकमात्र साधन अब समाप्त हो गया–

हारी हुई पाण्डव चमू में, हंस रहे भगवान थे,
पर जीतकर भी कर्ण के हारे हुए से प्राण थे।

परिस्थिति की इस विडम्बना पर कवि के उद्‌गार देखिए–

मोती छिपे आते किसी के आंसुओं के तार में,
हँसता कहीं अभिशाप ही आनन्द के उच्चार में।

मार्मिक स्थलों की अवतारणा

'रश्मिरथी' के कथानक में विभिन्न मार्मिक स्थलों की अवतारणा भली प्रकार हुई है। कर्ण भरी सभा में इसलिए अपमानित हो रहा है कि वह हीन जाति का, सूत-पुत्र है कुन्ती चुप है। कृपाचार्य कह देते हैं– राजकुमार अर्जुन से कोई राजा ही युद्ध कर सकता है। इस अवसर पर दुर्योधन का उठकर कर्ण के मस्तक पर अंग देश का राजमुकुट रख देना कितना चमत्कारपूर्ण और नाटकीय है। तदुपरान्त कर्ण एक ब्राह्मणकुमार के रूप में शास्त्रविद्या ग्रहण करने जाता है। एक दिन गुरु परशुराम शिष्य कर्ण की जांघ पर सिर रखकर सोये थे। अकस्मात् एक विषैला कीड़ा कर्ण की जांघ का मांस कुतर–कुतर कर खाने लगा। रक्त की धारा बह चली, पर कर्ण तिल भर न हिला। पाठक इस स्थिति की कल्पना पर अवाक् रह जाता है, किन्तु तरल रक्त के स्पर्श से परशुराम की नींद खुल जाती है। पाठक सोचता है– वे अवश्य कर्ण की प्रशंसा करेंगे किन्तु इसके विपरीत जब वे कुपित होकर कर्ण को दी गई सारी शस्त्रविद्या वापिस ले लेते हैं तो स्थिति बहुत मार्मिक हो उठती है। इसी प्रकार कुन्ती और कर्ण का वार्तालाप भी बड़ा मर्मस्पर्शी है। एक ओर ममतामयी माँ के उद्‌गार हैं जो कर्ण के तेजोदीप्त व्यक्ति के हर्षित किन्तु अपने ही कलेजे के टुकड़ों के पारस्परिक बैर से दुःखित है तो दूसरी ओर जन्म लेते ही माँ द्वारा त्याग दिए पुत्र की विवशता और कटुता है जो माँ को निराश भी नहीं कर सकता और अपने मित्र एवं चिन्तक दुर्योधन के प्रति कृतघ्न भी नहीं बन सकता। 'रश्मिरथी' काव्य की अन्तिम घटना सबसे अधिक मार्मिक बन पड़ी है। कर्ण अर्जुन के अतिरिक्त अन्य चारों पाण्डवों को पकड़ने का अवसर पाकर भी छोड़ चुका है। अन्त में वह अर्जुन पर भीषण आक्रमण करता है। एक बार तो उसके बाण से वह मूर्च्छित भी हो जाता है। अकस्मात उसके रथ का एक पहिया कीचड़ में फँस जाता है और बार-बार प्रयत्न करने पर भी निकल नहीं पाता। तभी कृष्ण के संकेत से अर्जुन का उस पराक्रमी वीर को निःशस्त्र देखकर बाण से विद्ध कर देना कितना रोमांचकारी दृश्य उपस्थित कर देता है–

लगा शर एक ग्रीवा में सम्भल के
उड़ी ऊपर प्रभा तन से निकल के

\+ + +

सुयोधन बालकों सा रो रहा था
खुशी से भीम पागल हो रहा था।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'रश्मिरथी' का कथानक पर्याप्त सुंगठित, विश्वसनीय, मार्मिक, सजीव और प्रभावपूर्ण बन पड़ा है।

4. पात्रों का चरित्र चित्रण

प्रबन्ध-काव्य में पात्र और उनके चरित्र का महत्त्व

प्रबन्ध-काव्य का आधार प्रायः कोई कथा होती है और कथा के आधार होते हैं–पात्र। उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए प्रबन्ध-काव्य का कवि कथानक का उचित विकास करता है और इस कथा-विकास के साथ ही पात्रों के चरित्र का भी विकास होता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, 'रश्मिरथी' एक खण्डकाव्य है। 'खण्डकाव्य' में, यह आवश्यक होता है कि पात्रों की संख्या कम हो और उनका चरित्र इतना स्पष्ट हो कि पाठक पर पूरा-पूरा प्रभाव पड़ सके। कवि अपने विचारों को मूर्त्त रूप देने के लिए ही पात्रों की रचना करता है। प्रत्येक पात्र में कुछ विशिष्ट गुण होते हैं, कुछ अवगुण। भिन्न-भिन्न पात्रों के परस्पर संघर्ष और सामंजस्य से हम किसी पात्र के चरित्र के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करते हैं। प्राचीन काव्यों में कुछ पात्रों को केवल 'सत्' और कुछ को केवल 'असत्' रूप में चित्रित किया गया है, परन्तु यदि यथार्थ दृष्टि से देखा जाय तो मनुष्य में सत् और असत् दोनों ही प्रकार की प्रवृत्तियाँ विद्यमान रहती हैं। जब जैसी परिस्थितियाँ होती हैं उनसे संघर्ष कर व्यक्ति या तो अपने चरित्र को और अधिक उज्जवल बनाता है या परिस्थितियों के प्रभाव से अपने को बदल लेता है। इन घात-प्रतिघातों के बीच पात्र के चरित्र में क्रमशः परिवर्तन आते हैं। विरोधी परिस्थितियों से संघर्ष करता हुआ मनुष्य आगे बढ़ता है। यह संघर्ष बाह्य भी होता है और आंतरिक भी। बाह्य संघर्ष परिस्थितियों के बीच घटित होता है, जबकि आन्तरिक संघर्ष या अन्तर्द्वन्द्व मनुष्य के मन के भीतर का संघर्ष है। जो भी कवि या लेखक चरित्र के परिवर्तन की इन सूक्ष्मताओं का स्वाभाविक रूप में अंकन करता है, वह चरित्र-सृष्टि के क्षेत्र में पूर्णयता सफल होता है। सभी पात्रों की ऐसी विशेषताओं को प्रकाशित करना ही चरित्र-चित्रण कहलाता है।

'रश्मिरथी' खण्डकाव्य में कर्ण का चरित्र ही सर्वप्रमुख है। उसी के चरित्र-विकास में 'रश्मिरथी' का उद्देश्य निहित है। 'कुन्ती' दूसरा महत्त्वपूर्ण पात्र है परन्तु वह मुख्यतः कर्ण के चरित्र को प्रकाशित करने के लिए है। शेष सभी पात्र-कृष्ण, अर्जुन, परशुराम, दुर्योधन, द्रोणाचार्य, इन्द्र, भीष्मपितामह आदि– सहायक एवं गौण पात्र हैं, यद्यपि वे सभी आवश्यक एवं उपयोगी हैं। यहाँ हम इन पात्रों के सम्बन्ध में विस्तार से विचार करेंगे।

कर्ण

कर्ण 'रश्मिरथी' काव्य का नायक है। चरित्र-विधान की दृष्टि से कर्ण ही 'रशिमरथी' काव्य का केन्द्रबिन्दु है। 'रश्मिरथी' शीर्षक उसी का एक विशेषण है। काव्य में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक उसी के व्यक्तित्व की झांकी मिलती है। उसके चरित्र में आदर्श-मैत्री, गुरुभक्ति, वीरता, महान त्याग और दानशीलता आदि उदात्त गुणों की सुन्दर व्यंजना हुई है। महाभारत के पात्रों में कर्ण अकेला पात्र है जो अपने पुरुषार्थ और पराक्रम के बल पर यशस्वी बनता है। कर्ण की महानता संस्कारजन्य, राजपुत्र होने के कारण नहीं, वरन् त्याग, पुरुषार्थ एवं दानशीलता आदि मानवीय गुणों के कारण है। कर्ण कलंकित मानवता का प्रवक्ता प्रतीक है। उसके चरित्र में हम एक विशेष प्रकार का स्वाभिमान पाते हैं। किन्तु यह स्वाभिमान ही उसे अन्त तक पुरुषार्थी, दानी और शक्तिशाली बनाये रखती है। इन्हीं प्रमुख गुणों के आधार पर हम यहाँ उसके चरित्र की विशेषताओं का वर्णन करेंगे।

स्वाभिमानी– कर्ण के चरित्र का सर्वाधिक उज्ज्वल पहलू यह है कि वह स्वाभिमानी है। प्रारम्भ से ही कर्ण को अपने बल पर विश्वास है। रंगभूमि में अर्जुन की स्पर्धा में कर्ण आगे बढ़कर अपने शौर्य तथा पराक्रम का अद्‌भुत परिचय देता है। वह अर्जुन को द्वन्द्व-युद्ध के लिए भी ललकारता है। कृपाचार्य द्वारा नाम, कुल, जाति आदि पूछने पर कर्ण वीरोचित स्वाभिमान के साथ उत्तर देता है :–

पूछो मेरी जाति, शक्ति हो तो, मेरे भुजबल से,
रवि समान दीपित ललाट से और कवच कुण्डल से।

कर्ण के इस उत्तर में उसके चरित्र की दृढ़ता और व्यक्तित्व की गरिमा का परिचय मिलता है।

शूरवीर– कर्ण का चरित्र शौर्य का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है। वीरता के साथ दम्भ और विश्वास दोनों होते हैं। कर्ण के साथ वीरत्व का प्रमुख रूप यह था कि वह कभी भी अपने को किसी से हेय न समझ सका। इसी विश्वास के साथ

वह अन्त तक संघर्ष करता रहा। कर्ण शूर-धर्म की व्याख्या करता है कि शूर व्यक्ति भाग्य को भी परिवर्तित कर सकता है–

वह करतब है यह कि शूर जो चाहे कर सकता है,
नियति भाल पर पुरुष पाँव निज बल से धर सकता है।

कर्ण के चरित्र में वीरत्व के साथ सत्य की अडिगता भी मिलती है। मानवता छल और छद्म से कलंकित होती है। अपने बाहुबल पर भरोसा रखने वाला भर कर भी विजयी बनता है–

देवराज! छल छद्म, स्वार्थ कुछ भी न साथ लाया हूँ,
मैं केवल आदर्श एक उनका बनने आया हूँ!
जिन्हें नहीं अवलम्ब दूसरा छोड़ बाहु के बल को।
धर्म छोड़ भजते न कभी जो किसी लोभ से छल को।

अतः कर्ण बाहुबल का समर्थन करता है।

धर्म-युद्ध का पक्षपाती– 'रश्मिरथी' के कर्ण के चरित्र की मुख्य विशेषता है कि उसने कभी भी क्रूर युद्ध का आश्रय नहीं लिया। उसकी मानवतावादी भावना युद्ध-क्षेत्र में भी जीवित रही। उसके जीवन में एक से एक विपत्तियाँ आयीं किन्तु उसने धर्म की कभी उपेक्षा नहीं की। स्वयं कृष्ण भी अधर्म की राह पर गए, परन्तु कर्ण ने व्यक्तिगत रूप से कभी भी धर्म से मुख नहीं मोड़ा। समरभूमि में भी उसने अपना आदर्श व्यक्त करते हुए कहा–

नहीं शर हो सखा सत्कर्म भी हो,
धनुष पर आज मेरा धर्म भी हो।

अपने जीवन से सब प्रकार की शक्ति को खोकर भी कर्ण पराक्रम के बल से लड़ा। यही पुरुषार्थ-प्रियता 'रश्मिरथी' की उपलब्धि है।

जातिवाद का निन्दक – कर्ण जातिवाद की कटु निन्दा करता है और उसे केवल पाखंडियों की पूँजी मानता है। जाति-गोत्र, कुल-वंश, माता-पिता आदि के गौरव को स्वीकार न करता हुआ वह पुरुषार्थ, शौर्य, पराक्रम, बल आदि के द्वारा इतिहास में रेखा खींच कर अमर बनना चाहता है। जन्म देवायत्त है, मनुष्य की अधिकार-सीमा से बाहर की बात है, फिर उसकी चिन्ता क्यों की जाय?

किन्तु मनुज क्या करे? जन्म लेना तो उसके हाथ नहीं,
चुनना जाति और कुल अपने बस की तो है बात नहीं।

परशुराम और कर्ण के प्रसंग में भी कर्ण के मानसिक द्वन्द्व को स्वर दिया गया है। कर्ण जन्मजात हीनता के कारण ही परशुराम से प्राप्त ब्रह्मास्त्र-विद्या का ज्ञान गंवा बैठा, उसे इस बात का दुःख नहीं, किन्तु परशुराम के मुख से ब्राह्मणकुमार शब्द सुनते ही कर्ण के हृदय में क्षोभ भर जाता है। मन धिक्कारने लगता है। कर्ण ने परशुराम से छल किया, यह सुनते ही कर्ण के हृदय मे क्षोभ भर जाता है। मन धिक्कारने लगता है। कर्ण ने परशुराम से छल किया, यह उसके चरित्र का दुर्बल अंश है। कर्ण आत्म-ग्लानि और रक्त की धार बहाकर छल के पाप को धो देता है। कर्ण के चरित्र के इस उदाहरण से कवि ने छल का विरोध किया है। किन्तु कर्ण को छली कह कर भी कलंकित नहीं किया जा सकता। भाग्य उसे सदा छलता रहा। इन्द्र ने छलकर कवच-कुण्डल हर लिया। अर्जुन को मारने के लिए एकघ्नी बच गई थी, कृष्ण ने छल से उस का प्रयोग घटोत्कच पर करवा दिया। लेकिन संकटों के बीच रह कर भी कर्ण घबराने वाला नहीं था।

आदर्श-मित्र एवं सच्चा गुरु-भक्त – कर्ण एक आदर्श मित्र एवं सच्चा गुरु-भक्त है। दुर्योधन के प्रति अपनी मित्रता निभाने के लिए वह श्रीकृष्ण एवं कुन्ती के उस आग्रह को भी अस्वीकार कर देता है, जिसका समर्थन वह स्वयं हृदय से करता है। वह श्रीकृष्ण से कहता है–

जिस नर की बाँह गही मैंने, जिस तरू की छाँह गही मैंने।
उस पर न वार चलने दूँगा, कैसे कुठार चलने दूँगा?
जीते जी उसे बचाऊँगा, या आप स्वयं कट जाऊँगा।

कर्ण की गुरुभक्ति का सबसे बड़ा प्रमाण वह घटना है, जब कर्ण विषैले कीट द्वारा घायल होता हुआ भी इस कारण अडिग रहता है कि उसके शस्त्रगुरु परशुराम की नींद में विघ्न न पड़े–

किन्तु पाँव हिलते ही गुरुवर की नींद उचट जाती,
सहम गई यह सोच कर्ण की भक्तिपूर्ण विह्वल छाती,
सोचा उसने अतः कीट यह पिते रक्त, पीने दूँगा,
गुरु की कच्ची नींद तोड़ने का पर पाप नहीं लूँगा।

दानवीर – कर्ण के चरित्र का मुख्य गुण दानवीरता है। कवि कर्ण की दानशीलता पर मुग्ध है। 'दिनकर' ने कर्ण की वीरता और दानशीलता की पुनः प्रतिष्ठा करने के लिए ही कर्ण पर काव्य-रचना की है। कर्ण के चरित्र की इस विशेषता का परिचय रश्मिरथी के चतुर्थ सर्ग में मिलता है। सूर्य की उपासना करते समय इन्द्र छद्मवेश में आकर कर्ण से कवच और कुण्डल माँग लेता है। कर्ण एक सच्चे दानवीर की भाँति अपने शरीर के जन्मजात कवच कुण्डलों को काट कर इन्द्र को दे देता है। कर्ण को इसमें गौरव अनुभव होता है–

''धन्य हमारा सुयश आपको खींच मही पर लाया,
स्वयं भीख माँगने आज, सच ही मिट्टी पर आया।''

दानी कर्ण की महिमा सुनकर कुन्ती भी अपने पुत्रों का जीवनदान माँगने उसके पास जाती है। कर्ण उसे अर्जुन को छोड़ शेष चार पाण्डव पुत्रों का जीवनदान देकर सन्तुष्ट करता है।

विनम्र और शिष्ट – कर्ण के चरित्र में उनकी विनम्रता और शिष्टता द्रष्टव्य है। वह केवल माँ के दुलार से ही वंचित नहीं है अपितु माँ उसके साथ एक शत्रु जैसा व्यवहार करती है। समाज के भय से उसे नदी का धारा में बहा देती है। ऐसी माँ के प्रति कर्ण के यह व्यंग्य-वचन स्वाभाविक ही हैं–

क्या कहूं देवि! मैं तो ठहरा अनचाहा,
पर तुमने माँ का खूब चरित्र निबाहा।

किन्तु कर्ण के चरित्र की यह कठोरता स्वभावगत नहीं थी। आवेश में आकर ही उसने ऐसा किया था। कर्ण का हृदय मानव का हृदय था। जब कुन्ती का मातृ-हृदय पश्चाताप करने लगता है, तब कर्ण उसके चरणों में नत हो जाता है। उसके चरित्र की यह विनम्रता उसके शील की परिचायक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सहनशीलता, विनम्रता, दानशीलता आदि के विभिन्न तत्त्वों से कर्ण के चरित्र का निर्माण हुआ है और इस दृष्टि से कर्ण का चरित्र सच ही 'नई मानवता की स्थापना' का प्रयास है। इन्द्र ने ठीक ही कहा है–

तू पहुँचा जहाँ कर्ण, देवत्त्व न जा सकता।

कर्ण का चरित्र कवि के हाथों की कठपुतली-मात्र नहीं है बल्कि अत्यन्त स्वाभाविक, सजीव और प्रभावशाली बन पड़ा है। कर्ण के चरित्र स्थिर चरित्र है। उनमें गतिशीलता दृष्टिगत नहीं होती। 'रश्मिरथी' के प्रथम सर्ग में उसे धीर, वीर, दानी, धर्म-निष्ठ पाते हैं। अन्तिम सर्ग तक उस में वही गुण विद्यमान रहते हैं। कर्ण ने दुर्योधन की मित्रता निभाने का निश्चय किया था। कुन्ती और कृष्ण के बहुत समझाने पर भी उस पर कुछ असर नहीं होता। अपने प्राणों की बलि देकर भी वह अपने वचन का पालन करता है। विकास की दृष्टि से कर्ण का चरित्र गतिशील नहीं है। किन्तु मनुष्यता का विकास जितना इसमें मिलता है, उतना दूसरे किसी पात्र में नहीं मिलता। कर्ण की इन्हीं मानवोचित विशेषताओं के विकास में ही उसके चरित्र की महानता है।

यहाँ यह बात विशेष रूप से लक्ष्य करने की है कि 'दिनकर' ने 'रश्मिरथी' में कर्ण को 'अच्छाइयों का पुतला' के रूप में अंकित किया है। किन्तु उसका चरित्र पूर्णतः निर्दोष नहीं है। कथा परम्परा में, यहाँ तक कि 'रश्मिरथी' में भी उसके चरित्र में उद्दंडता दिखलायी देती है। महाभारतकार ने उसे 'समर-शलाघी' कहा है। 'रश्मिरथी' में भी वह बहुत ही आत्म-श्लाघा करता है। वह इन्द्र और कुन्ती को दान तो अवश्य देता है किन्तु जिस तरह उन्हें व्यंग्य-बाणों से छलनी करता है वह भी देखने योग्य है। अर्जुन के प्रति उसके मन में भयानक द्वेष-मात्सर्य है। वह जैसे युद्ध के लिए राड़ करता चलता है। रंगभूमि में अर्जुन चुप है। वह ऐसा कोई कार्य नहीं करता जिसे कर्ण का अपमान कहा जा सकता हो, किन्तु कर्ण उसके प्रति बहुत ही उद्धत है। शस्त्र-विहीन 16 वर्षीय बालक अभिमन्यु के वद्य में कर्ण भी सहायक रहा है। 'रश्मिरथी' कार ने इसका कोई भी उल्लेख नहीं किया है। इसी प्रकार विराट् नगर में गोहरण करते समय कर्ण आदि सभी कौरवों को बिना कृष्ण की सहायता के अर्जुन से पराजित किया था, उसकी भी संकेत 'दिनकर' ने इस कृति में नहीं किया है, बल्कि उन्होंने उसे परावलम्बी, कठपुतली के रूप में अंकित करके उसके प्रति अन्याय ही किया है। 'रश्मिरथी' में अर्जुन का शील और धर्म-भाव ही उसे निहत्थे कर्ण पर पहले प्रहार करने से रोकता है, किन्तु बाद में अभिमन्यु वध को चर्चा होने से वह प्रतिशोध से आकुल हो उठता है। कर्ण, धर्म, न्याय आदि की बातें तो बहुत करता है, किन्तु पक्षधर है दुर्योधन का जिसने

पाण्डवों पर बार-बार अत्याचार किये हैं। तत्त्वतः कर्ण ही सत्ता-प्रतिष्ठान से जुड़ा रहा है, पाण्डवों का अधिकांश जीवन तो दर-दर की खाक छानने में ही बीता है। उसने दलितों, त्रिया आदि के उद्धार आदि की बातें तो बहुत की हैं, किन्तु दान देने के अतिरिक्त उनका उद्धार करते हुए कहीं नहीं दिखायीं देता।

इन कमियों के बावजूद यह निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि कर्ण महाभारत के पात्रों में सर्वाधिक संघर्षशील पात्र है। वह मानवधर्मनिष्ठ, दानशील, कृतज्ञ, मैत्रीभावना से युक्त उदात्त चरित्र है। कर्ण जीवन की अनेकानेक परिक्षाओं में खरा उतरता है। वह जाति, कुल-वंश, माता-पिता के गौरव को नहीं भुलाता, बल्कि अपने गुरुषार्थ, पराक्रम के बल पर इतिहास में आलोक की लीक खींचता है। उसकी मृत्यु पर उदास कृष्ण भाव-विहल होकर युधिष्ठर से कह उठते हैं–

समझ कर द्रोण मन में मान भरिए,
पितामह की तरह सम्मान करिए।
मनुजता का नया नेता उठा है,
जगत् से ज्योति का जेता उठा है।

कुन्ती

'रश्मिरथी' के स्त्री पात्रों में केवल कुन्ती का चरित्र ही उल्लेखनीय है। कुन्ती महाराज पाण्डु की पत्नी और पाण्डवों की माता है। कुन्ती के चरित्र में परस्पर विरोधी भावना के दर्शन होते हैं। उसका जीवन त्यागमय, तेजस्वितापूर्ण और कष्टमय रहा है। दिनकर ने कुन्ती को मातृत्व और नारीत्व का प्रतीक मानकर उसके अन्तः संघर्ष का चित्रण किया है। रश्मिरथी में कर्ण के जन्म की समस्या को लेकर ही कुन्ती का चरित्रांकन किया है।

कुन्ती के चरित्र की विचित्रता पुत्रोत्पत्ति में है। वह आदर्श पत्नी है, किन्तु दुर्भाग्यवश पाण्डु सन्तानोत्पादन के लिए ब्राह्मण के शाप-वश अनुपयुक्त हो जाते हैं। कुन्ती के सामने वंश-रक्षा का प्रश्न उपस्थित होता है। महाभारत में यह समस्त घटना अलौकिक वातावरण में घटित होती है। दिनकर ने भी कुन्ती के इस अलौकिक स्वरूप की विवेचना न करके उसे यथावत स्वीकार किया है।

अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित – कुन्ती के चरित्र में कवि ने एक विवश माता की करुणा और अन्तर्व्यथा को व्यक्त करने का सफल प्रयास किया है। कुन्ती ने कौमार्यावस्था में कर्ण को जन्म दिया अतः समाज के भय से कर्ण को एक पिटारी में बन्द करके नदी की धारा में बहा दिया। किन्तु वह बच निकलता है और राधा कर्ण का पालन-पोषण करती है। किन्तु कुन्ती का अन्तर्मन बराबर कोसता रहता है। कुन्ती के इस अन्तः संघर्ष के दर्शन हमें पुस्तक के प्रथम सर्ग में ही होते हैं। जब अर्जुन ने रंगभूमि में अपनी अद्भुत अस्त्र-शस्त्र चालन कुशलता दिखाई थी तब कर्ण ने आगे बढ़कर अपना कौशल प्रदर्शित कर सारी सभा को चकित कर दिया। इससे सब लोग खुश हुए। किन्तु कुन्ती? जब सारा रनिवास लौट रहा था सबसे पीछे-पीछे वह अपना मन मसोसती आ रही थी। कर्ण वास्तव में उसी का पुत्र था, किन्तु इस रहस्य को केवल वही जानती थी। अपने पुत्र की रण-कलाओं से उसे जो प्रसन्नता हुई। उसे वह किसी से कह नहीं सकती थी। उसके मन की बात मन में ही रह गई। उस समय की विकलहृदयता कुन्ती की चित्र देखने योग्य है:–

"उजड़ गये हों स्वप्न कि जैसे हार गई हो दाँव,
नहीं उठाये भी उठ पाते थे कुन्ती के पाँव।"

ममतामयी माँ – कुन्ती एक माँ है, जिसका पूर्ण मातृत्व काव्य के पंचम सर्ग में चित्रित हुआ है। उसका मातृरूप विशेषतः तब प्रकट होता है जब महाभारत के संग्राम के दूसरे दिन कर्ण-अर्जुन का युद्ध निश्चित हो जाता है। एक ही माँ के लाल आपस में कट मरेंगे, इसकी उसे विशेष चिन्ता है। वह छिपकर कर्ण के पास जाने का निश्चय करती है। गंगा-तट पर कर्ण उस समय सन्ध्या-पूजन में मग्न है। उसकी शोभा देखकर माँ कुन्ती का वात्सल्य उमड़ पड़ता है–

"सुत की शोभा को देख मोद में फूली,
कुन्ती क्षण भर को व्यथा वेदना भूली।"

कर्ण की जब आँख खुलती है, तो उसे वह उसके जन्म की सारी घटना बताती है। कौमार्यावस्था में संतानोत्पत्ति सामाजिक दृष्टि से एक भयंकर अपराध था और वही कुन्ती के लिए अभिशाप बन गया।

कुन्ती में माँ की ममता पूर्ण रूप से विद्यमान है। वह वात्सल्य-स्नेह से प्रेरित होकर कर्ण के पास आँचल फैलाती है। वह यह नहीं चाहती थी कि पाँचों पाण्डवों का अग्रज कर्ण अपने ही पाँचों अनुजों का संहार करे। उसके हृदय में किसी प्रकार का छल नहीं। उसे तो सिर्फ यही चिन्ता सता रही है कि उसके पुत्र आपस में कट मरेंगे–

''एक ही गोद के लाल कोख के भाई,
सत्य ही लड़ेंगे हो दो ओर लड़ाई।''

कर्ण के पास जाकर वह न केवल उसे युद्ध से विरक्त करना चाहती है, अपितु पाण्डवों की प्राण रक्षा की भीख भी माँगती है। वह कर्ण के सामने अपना सारा दोष स्वीकार कर लेती है, अपने को पापिनी और सांपिन तक कहने लगती है। पश्चाताप की अग्नि में जलकर उसका हृदय कर्ण-जन्म के समय जितना कठोर था, अब उतना ही पवित्र एवं कोमल बन जाता है। कुन्ती का मातृत्व उमड़ पड़ता है और वह कर्ण को छाती से लगा लेती है, अपने खोये पुत्र को पाकर माता का वात्सल्य फूट पड़ना, बिल्कुल स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक है।

विद्रोहिणी – कुन्ती के भीतर विद्रोह की चिंगारी है। वह अत्यधिक करुण है तो कठोर भी। समाज के भय से एक बार उसने भूल अवश्य की थी, परन्तु फिर दूसरी बार वह उसी समाज के सिर पर चरण रख कर आगे भी बढ़ जाना चाहती है। महाभारत युद्ध में, अपनी ही कोख से उत्पन्न पुत्रों को युद्ध के लिए प्रस्तुत देखकर उसका नारी-हृदय समाज से विद्रोह करने को प्रस्तुत हो जाता है–

'उस जड़ समाज के सिर पर कदम धरूँगी,
डर चुकी बहुत, अब और न अधिक डरूँगी।''

ममता और कठोरता का जैसा सुन्दर चित्रण 'रश्मिरथी' की कुन्ती में हुआ है वैसा अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। वह एक ऐसी भग्न हृदया नारी है, जिसके मातृत्व में मूक वेदना की कसमसाहट है। वह कहती है–

'बेटा धरती पर बड़ी दीन है नारी,
अबला होती सचमुख पोषित कुमारी।'

दिनकर ने कुन्ती के मुख से नारी की शाश्वत पराधीनता की भावना व्यक्त की है। यदि नारी पतिता है तो उसे अपने चरित्र का परिष्कार भी नहीं करने दिया जाता, वह तो अपने कलंक को छिपाकर ही सम्मानपूर्वक रह सकती है। कवि ने समाज की इस मान्यता को चुनौती देने के लिए ही कुन्ती के चरित्र में निडरता का संचार किया है। अब वह समाज से नहीं डरेगी और उसके समक्ष अपने मूल स्वरूप को स्वीकार करते संकुचित नहीं होगी।

इस प्रकार 'रश्मिरथी' में कुन्ती के चरित्र का स्वतन्त्र अस्तित्व है। यद्यपि कथा-विकास के क्रम में उसे काव्य में अपेक्षित स्थान नहीं मिल पाता है, तथापि वह मातृत्व का आदर्श स्थापित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण चरित्र है।

श्रीकृष्ण

'रश्मिरथी' काव्य में श्रीकृष्ण के चरित्र का विशेष महत्त्व है। प्रत्येक युग में ऐसे महापुरुषों का जन्म होता है जो अदम्य साहस और आदर्श चरित्र द्वारा जन-जीवन में चेतना का आलोक जगाते हैं। कृष्ण ने भी अपने युग में असुरवृत्ति-सम्पन्न राजाओं को नष्ट किया और वे भगवान का अवतार माने जाने लगे। महाभारत में कृष्ण के तीन रूप उल्लेखनीय हैं–

(1) नीतिज्ञ कृष्ण

(2) लोक-रक्षक कृष्ण

(3) परब्रह्म कृष्ण

'दिनकर' ने मुख्यतः महाभारत के कुशल राजनीतिक श्रीकृष्ण को ही ग्रहण किया। कवि ने उनके चरित्र-चित्रण में कुछ कल्पना का सहारा भी लिया है। दुर्योधन के दरबार में भगवान श्रीकृष्ण जो अपना विराट् रूप प्रदर्शित करते हैं, गीत के आधार पर कवि ने उसकी अपने आप कल्पना की है। महाभारत में इनका विवेचन नहीं मिलता। 'रश्मिरथी' में कृष्ण के चरित्र का वर्णन कई रूपों में मिलता है जो निम्नलिखित हैं–

युद्ध-विरोधी के रूप में – हिंसा और अहिंसा, युद्ध और शांति यह मानव जीवन की सनातन समस्या है। मनुष्य का कल्याण युद्ध में है या शान्ति में–इस प्रश्न को 'दिनकर' ने रश्मिरथी में भी उठाया है। कवि देश को युद्ध के भयानक विनाश से बचाना चाहता है, इसलिए श्रीकृष्ण पाण्डवों के दूत बनकर दुर्योधन के दरबार में जाते हैं और कहते हैं–

दो न्याय अगर तो आधा दो, पर इसमें भी यदि बाधा हो,
तो दे दो केवल पाँव ग्राम, रक्खो अपनी धरती तमाम।
हम वही खुशी से खायेंगे, परिजय पर असि न उठायेंगे।

एक अन्य स्थल पर भी श्रीकृष्ण कर्ण को युद्ध रोकने के लिए समझाते हुए कहते हैं–

"चिन्ता है मैं क्या और करूँ, शान्ति को छिपा किस ओर धरूँ
सब राह बन्द मेरे जाने, हाँ, एक बार यदि तू माने,
तो शान्ति नहीं जल सकती है,
समराग्नि अभी टल सकती है।"

श्रीकृष्ण युद्ध से छुटकारा पाकर शान्ति से रहना चाहते हैं। किन्तु दुर्योधन मानता नहीं है। उन्हें अन्याय का विरोध करने तथा अपने अधिकारों की रक्षा करने के लिए युद्ध कराना ही पड़ता है।

अलौकिक रूप में – 'रश्मिरथी' के कवि ने कृष्ण को मानव नहीं, ईश्वर रूप में भी स्वीकार किया है। वे साक्षात् परब्रह्म ही दिखाई देते हैं–

मुझ में विलीन झंकार सकल,
मुझ में लय है संसार सकल।

किन्तु कृष्ण का यह अलौकिक रूप खटकने वाला नहीं है, क्योंकि उनके कार्यकलाप मानवीय धरातल पर ही उतर आये हैं।

कुशल राजनीतिज्ञ के रूप में – 'रश्मिरथी' के तृतीय सर्ग में श्रीकृष्ण राजनीति-कुशल व्यक्ति के रूप में उपस्थित हुए हैं। कृष्ण के बुद्धि-कौशल के द्वारा ही पाण्डवों को विजय मिली। युद्धभूमि में कीचड़ में फँसे कर्ण के रथ को देखकर कृष्ण अर्जुन को बाण बरसाने को कहते हैं। जब अर्जुन कहता है कि "नरोचित किन्तु क्या यह धर्म होगा?" तो कृष्ण उसे समझाते हुए कहते हैं–

कहूँ जो पाल उसको, धर्म है यह,
हनन कर शत्रु का, सत्कर्म है यह।

कर्ण जब भी धर्म की दुहाई देते हुए न्याय माँगता है तो कृष्ण पाण्डवों के साथ कौरवों के अन्याय की ओर संकेत करते हुए कहते हैं–

"मरा अन्याय से अभिमन्यु जिस दिन,
कहाँ पर सो रहा था धर्म उस दिन।"

कृष्ण की युद्ध-सम्बन्धी स्पष्ट नीति के कारण ही कर्ण को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ता है। कवि ने कृष्ण को राष्ट्रीय भावना का प्रतीक मानकर सांस्कृतिक उत्थान का आधार बनाया है। कृष्ण का उद्देश्य अखंड मानवता की स्थापना करना है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह किसी भी साधनमार्ग को अपना सकते हैं। अतएव महाभारत के युद्ध को कूटनीतिज्ञ दृष्टि से परिचालित कराने और पाण्डवों को विजयी बनाने में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

मानवोचित गुणों के प्रशंसक – कृष्ण केवल राजनीति–वेत्ता ही नहीं थे, वरन् मानवोचित गुणों के प्रशंसक भी थे। इसीलिए विपक्षी दल के नेता कर्ण के गुणों की उपेक्षा भी नहीं कर सकते। अनेक स्थलों पर वह कर्ण की जाति वंश पर ध्यान दिये बिना ही उसकी प्रशंसा करते हैं। कर्ण की मृत्यु के समय वह कहते हैं–

मनुजता का नया नेता उठा है,
जगत् से ज्योति का जेता उठा है।

विरोधी होते हुए भी कृष्ण युद्ध की समाप्ति पर युधिष्ठिर से कर्ण की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं।

इस प्रकार, 'रश्मिरथी' पुरुष पात्रों के कर्ण के बाद जिस चरित्र का व्यक्तित्व अपेक्षाकृत अधिक उभरा है– वह कृष्ण ही हैं। कृष्ण का चरित्र प्रभावपूर्ण और अलौकिक बन पड़ा है।

परशुराम

परशुराम एक प्रसिद्ध पौराणिक पात्र हैं। वे एक आदर्श गुरु है। 'रश्मिरथी' काव्य में इन्हें 'महेन्द्रगिरि' नामक पर्वत पर आश्रम बनाकर तपस्वी के रूप में रहते हुए दिखाया गया है। परशुराम को एक साथ वीर और तपस्वी रूप में चित्रित किया गया है। देखने वाले को "युद्ध भूमि का हवन कुंड यह कुछ समझ नहीं पड़ता है।" उनका बाह्य रूप जितना कठोर, उग्र और तेजस्विता से परिपूर्ण है, उनका हृदय उतना ही कोमल और दयालु है। कवि के शब्दों में–

कहता है इतिहास, जगत में हुआ एक ही नर ऐसा,
रण में कुटिल काल-सम क्रोधी तप में महासूर्य जैसा।

परशुराम कर्ण के तेजस्वी स्वरूप को देखकर और उसे ब्राह्मण समझकर शस्त्र-विद्या सिखा देते हैं। यह ज्ञात हो जाने पर कि कर्ण सूतपुत्र है, वे उसे ब्रह्मास्त्र-विद्या भूल जाने का शाप देते हैं, किन्तु तुरन्त ही उन्हें अपने निर्णय पर खेद होता है और वें एक विचित्र अंतः संघर्ष की स्थिति में पड़ जाते हैं। यहाँ उनके चरित्र में स्वाभाविक अन्तर्द्वन्द्व की योजना हुई:–

'आह, बुद्धि कहती कि ठीक था, जो कुछ किया, परन्तु हृदय,
मुझ से कर विद्रोह तुम्हारी मना रहा, जाने क्यों जय?
अनायास गुण, शील तुम्हारे, मन में उगते आते हैं,
भीतर किसी अश्रु-गंगा में मुझे बोर नहलाते हैं।'

और परशुराम ने अभिशप्त कर्ण को भी विश्व में महान् कहलाने का वरदान दिया। भारत का इतिहास उसकी कीर्ति से धवल होगा। कर्त्तव्यनिष्ठ परशुराम इससे अधिक और क्या कर सकते थे।

कवि ने परशुराम को जातिवाद के अभिशाप से ग्रस्त दिखाया है, क्योंकि यह उस युग की परिस्थितियों की माँग थी। परशुराम जैसे व्यक्ति ही देश में जाति-पाँति को बढ़ावा दे रहे थे। इस दृष्टि से परशुराम का चरित्र सार्थक मानना चाहिए।

संक्षेप में, हम यह कह सकते हैं कि कठोरता और कोमलता, वर और शाप का समन्वय परशुराम के चरित्र में मिलता है।

अर्जुन

अर्जुन भगवान् कृष्ण का मित्र और द्रोणाचार्य का प्रिय शिष्य था। 'रश्मिरथी' में अर्जुन को कर्ण के प्रतिद्वन्द्वी रूप में चित्रित किया गया है। किन्तु अर्जुन का चरित्र उतना विकसित नहीं हो पाया जितना एक प्रतिद्वन्द्वी का होना चाहिए। वह कृष्ण के हाथ की कठपुतली है। कृष्ण जैसा कहते हैं, वैसा ही वह करता है; क्योंकि अर्जुन कृष्ण को केवल मित्र ही नहीं, भगवान् मानता है।

अर्जुन के चरित्र का सर्वप्रमुख गुण उसकी वीरता है। 'रश्मिरथी' के प्रथम सर्ग में ही अपनी ही रणकलाएँ दिखाकर सबको मुग्ध कर देता है। कर्ण जब उसे द्वन्द्व के लिए ललकारता है तो वह युद्ध के लिए आकुल हो उठता है। किन्तु गुरु उसे मना कर देते हैं और वह मौन हो जाता है। इससे पता चलता है कि अर्जुन वीर होने के साथ-साथ गुरुभक्त भी था।

किन्तु अर्जुन वीर होते हुए भी छली है। युद्ध भूमि में जब कर्ण के रथ का चक्का कीचड़ में फँस जाता है तो कृष्ण के कहने पर अर्जुन कर्ण पर बाणों का प्रहार करता है। इससे उसकी वीरता कलंकित हो उठी है। वह साधन की पवित्रता में विश्वास नहीं रखता। उसका व्यक्तित्त्व कठपुतली के समान है जो कि सुत्रधार कृष्ण की अँगुलियों के इशारें पर नाचता है। अर्जुन की वीरता पाठकों पर प्रभाव डालने में असमर्थ रहती है। इस प्रकार कवि ने अर्जुन के चरित्र में मानवीय दुर्बलताओं का चित्रण किया है, जिससे उसका चरित्र अशक्त एवं निस्तेज बन गया है।

अन्य पात्र

'रश्मिरथी' के प्रथम सर्ग में द्रोण और छठे तथा सातवें सर्ग में भीष्म पितामह, इन्द्र, घटोत्कच, दुर्योधन शल्य, अश्वसेन आदि पात्र आते हैं, लेकिन केवल नायक पर ध्यान केन्द्रित रहने के कारण कवि ने इनके चरित्रों को विकसित नहीं किया है। फिर भी कवि चरित्रों की ऐसी रेखाएँ खींचने में सफल हुआ है जो इन पात्रों के मूल चरित्र को स्पष्ट करती है। **द्रोणाचार्य** अर्जुन के प्रति घोर पक्षपाती हैं। वह अर्जुन की राह निष्कंटक रखने के लिए एकलव्य का अंगूठा तो कटवा चुके हैं, अब कर्ण को अपना शिष्य न बनाने का निर्णय भी कर लेते हैं। भीष्म **पितामह** कौरवों-पाण्डवों के पितामह अर्थात् परदादा थे। इनके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे चाहते थे कि लोग लड़ने में नहीं, शान्ति स्थापित करने में वीरता दिखाएँ। इसीलिए पहले तो वे कर्ण को युद्ध के क्रूर कर्म से विरत करने की चेष्टा करते हैं, परन्तु जब उसको अडिग देखते हैं तब उसे युद्ध करने की अनुमति दे देते हैं। युद्ध का विरोध और शान्ति स्थापित करने के सन्देश में ही 'रश्मिरथी' काव्य में भीष्म पितामह के चरित्र की सफलता है। इन्द्र अर्जुन के पिता थे। वे अपने छल और प्रपंच के लिए प्रसिद्ध हैं। अपने पुत्र की जीत को सुरक्षित रखने के लिए ही उन्होंने कर्ण से कवच-कुण्डल दान में माँग लिए थे। किन्तु अन्त में उन्हें पृथ्वीपुत्र (कर्ण) के सामने हार स्वीकार करनी पड़ी–'सत्य ही नर जीता सुर हारा।' पश्चाताप की आँच में जलकर वे पवित्र हो जाते हैं। दुर्योधन कर्ण को तेजस्विता और वीरता का आदर उसे अंगदेश का राजा बनाकर करता है और उसके हृदय में सदा के लिए अपना स्थान सुरक्षित कर लेता है।

इस प्रकार 'रश्मिरथी' काव्य के चरित्र विश्लेषण में **कर्ण और कुन्ती के चरित्र ही कवि की चरित्र कल्पना के उत्कृष्ट प्रतीक हैं।** कर्ण के चरित्र-चित्रण में कवि ने मानतावादी दृष्टिकोण अपनाया है अतः उसमें युगानुरूपता और मौलिकता है।

5. काव्य-सौष्ठव

किसी काव्य की परख दो दृष्टियों से की जा सकती है। एक तो इस दृष्टि से कि उसमें 'क्या कहा गया हैं?' और दूसरे इस दृष्टि से कि 'कैसे कहा गया है?' पहले आधार को साहित्यिक भाषा में काव्य का 'भाव पक्ष' कहा जाता है और दूसरे आधार को काव्य का 'कलापक्ष' कहा जाता है। भावपक्ष में रस, भाव, वस्तु वर्णन आदि की समीक्षा की जाती है और कला पक्ष में भाषा, छन्द, अलंकार, काव्यगुण आदि पर विचार किया जाता है।

इन दोनों पक्षों का सुन्दर सामंजस्य ही काव्य को सच्चा सौष्ठव प्रदान करता है। 'रश्मिरथी' के रचयिता कवि 'दिनकर' मानव-मन के सच्चे पारखी हैं, अतः उन्होंने विभिन्न अनुभूतियों अथवा भावों का इस काव्य में सजीव एवं सरस चित्रण किया है। साथ ही वे काव्य भाषा और काव्य-शैली के भी मर्मज्ञ हैं, अतः उनकी रचना 'काव्यपक्ष' की दृष्टि से भी पर्याप्त प्रौढ़ है।

'रश्मिरथी' एक खण्डकाव्य है। इसमें विभिन्न रसों की अवतारणा के लिए अवसर नहीं था। अतः इसमें मुख्य रूप से एक ही रस का चित्रण हुआ है। वह है– वीर रस। वीर रस के चार माने गए हैं– युद्धवीर, दानवीर, दयावीर, और धर्मवीर। इस काव्य के नायक कर्ण के चरित्र द्वारा वीर रस के इन चारों रूपों की सफल अभिव्यंजना हुई है। महाभारत के युद्ध में वीर रस की छटा देखते ही बनती है–

सेना समय हुंकार उठी, 'जय-जय राधेय' पुकार उठी।
उल्लास युक्त हो छहर उठा, रण-जलधि-घोष में घहर उठा।
बज उठी समर-भेरी भीषण,
हो गया शुरू संग्राम गहन।
सागर सा गर्जित, क्षुभित घोर, विकराल, दंडधर सा कठोर,
अरिदल पर कुपित कर्ण टूटा, धनु पर चढ़ महामरण छूटा,
ऐसी पहली ही आग जली,
पांडव की सेना भाग चली।

कर्ण दानवीर भी है। उसके पास जो भी याचक आता है, कभी खाली नहीं लौटता–

मेघ भले लौटे उदास हो किसी रोज सागर से,
याचक फिर सकते निराश पर नहीं कर्ण के घर से।

'दान' का मूल आधार 'दया' है। दानी व्यक्ति अपने से दुर्बल अथवा अभावग्रस्त व्यक्ति की असहायता पर दया करते हुए ही अपने उत्साह का परिचय देता है। कर्ण के चरित्र के माध्यम से दयावीरता की झलक हमें उस समय दिखाई देती है जब वह युद्ध में अर्जुन के अतिरिक्त अन्य चारों पांडवों को पकड़ कर भी उन्हें दया करके छोड़ देता है और कहता है–

ये चार फूल हैं मोल किन्हीं कातर नयनों के पानी के,
ये चार फूल प्रच्छन्न दान हैं किसी महाबल दानी के।

दान और दया धर्म के अटूट अंग हैं। कोई धर्मात्मा ही दान और दया में प्रवृत्त हो सकता है। धर्म के बिना धीरता क्रूरता में बदल जाती है। कर्ण की वीरता धर्म से वंचित नहीं अतः 'रश्मिरथी' में धर्मवीर की अभिव्यंजना भी हुई है। कर्ण स्वयं कहता है–

नहीं शर हो सखा सत्कर्म भी हो,
धनुष पर आज मेरा धर्म भी हो।

पूरी कृति में कर्ण कभी धर्म से मुख नहीं मोड़ता।

वीर रस के सहायक रस रौद्र तथा भयानक है। 'रश्मिरथी' में इनकी अभिव्यंजना भी यथास्थान हुई है। 'रौद्र' का स्थायी भाव क्रोध है। महाभारत के युद्ध में दोनों दलों के योद्धाओं के एक दूसरे के प्रति क्रोध मानो कवि 'दिनकर' की वाणी का सम्बल पाकर फूट पड़ा है–

''है कहाँ पार्थ? है कहाँ पार्थ?'' राधेय गरजता था क्षण-क्षण,
''करता क्यों नहीं प्रकट होकर अपने कराल प्रतिभट से रण?''

भयानक रस की स्थिति भी युद्ध में दिखाई देती है। शस्त्रों की भीषण टंकार शत्रु-सेना के हृदय को कंपाकर किस प्रकार हलचल मचा देती है–

प्लावन का था दुर्जन प्रहार, जिस तरह काँपती है कगार,
या चक्रावत में यथा कीर्ण, उड़ने लगते पत्ते विशीर्ण,
त्यों उठा कांप थर-थर अरिदल,
मच गई बड़ी भीषण हलचल,
सब रथी व्यग्र बिलबिलाते थे, कोलाहल रोक न पाते थे

जब श्री कृष्ण दुर्योधन को सन्धि के लिए प्रेरित करने जाते हैं तब वह उनकी बात मानना तो दूर, उलटे उन्हें बन्दी बनाना चाहता है। इस अवसर पर श्रीकृष्ण जिस विराट् रूप का प्रदर्शन करते हैं वह बड़ा विस्मयकारी है। विस्मय अर्थात् आश्चर्य-भाव अद्भुत रस का स्थायी भाव है, अतः 'रश्मिरथी' काव्य में इसकी झलक भी मिलती है यथा–

हरि ने भीषण हुंकार किया, अपना स्वरूप विस्तार किया।
डगमग डगभग दिग्ज डोले, भगवान् कुपित होकर बोले-
'जंजीर बढ़ा के साथ मुझे,
हाँ-हाँ दुर्योधन बाँध मुझे,
यह देख गगन मुझ में लय है,
यह देख पवन मुझ में लय है,
मुझमें विलीन झंकार सकल, मुझमें लय है संसार सकल,

इन रसों के अतिरिक्त वात्सल्य भाव एवं शोक-भाव की अभिव्यक्ति भी 'रश्मिरथी' में हुई है। कुन्ती और कर्ण की भेंट के अवसर पर ममतामयी माँ का वात्सल्य कवि के इन शब्दों में उमड़ा है–

सुत की शोभा को देख मोद में फूली,
कुन्ती क्षण भर को व्यथा-वेदना भूली।
भर कर ममता-पय से निष्पलक नयन को,
वह खड़ी सींचती रही पुत्र के तन को।

महाभारत के युद्ध में जब पांडव-दल का महान् योद्धा घटोत्कच कर्ण द्वारा मार डाला जाता है तब शोक की काली छाया सारे पांडव दल पर छा जाती है–

''हा! हा!'' की चारों ओर मची पांडव दल में व्याकुल पुकार,
नरवीर युधिष्ठिर, नकुल, भीम, रह सके न कहीं कोई न धीर,
जो जहाँ खड़े थे लगे वहीं करने कातर क्रन्दन गम्भीर।

इस प्रकार 'रश्मिरथी' का भाव पक्ष बहुत सबल है। कवि ने विभिन्न रसों और भावों का बड़ा हृदयस्पर्शी चित्रण किया है।

'कलापक्ष' का मुख्य सम्बन्ध भाषा से है। भाषा को प्रभावशाली बनाने के लिए कविगण अनेक साधनों का प्रयोग करते हैं, जैसे शब्दशक्तियाँ, शब्द-गुण, मुहावरे, सूक्तियाँ अलंकार और छन्द, संगीत आदि। 'रश्मिरथी' की भाषा में इन सभी विशेषताओं का समुचित समावेश हुआ है।

'भाषा', भाव रूपी आत्मा का शरीर है। यह भाषा-रूपी काया सुष्ठु-योजना चमत्कार-पूर्ण शैली के द्वारा सुन्दर और आकर्षक रूप ग्रहण करती है। कवि अपने हृदय में उमड़ने वाली अनुभूतियों को साकार रूप देने के लिए ही भाषा का सहारा लेता है। अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि भाषा भावों के अनुरूप हो। 'रश्मिरथी' काव्य की रचना शुद्ध एवं परिमार्जित खड़ी बोली में हुई है। यद्यपि इसमें अधिकांशतः कवि ने 'तत्सम' अर्थात् संस्कृत की शब्दावली का प्रयोग किया है और कहीं-कहीं समास-युक्त शब्दों के प्रयोग से इसमें जटिलता भी है तथापि ऐसी भाषा वहीं प्रयुक्त हुई है जहाँ कवि ने गूढ़ चिन्तन प्रधान भावों या विचारों को प्रकट किया है। कहीं-कहीं प्राकृतिक वातावरण की सजीवता या युद्ध की भीषणता का आभास देने के लिए भी इस प्रकार की शब्दावली प्रयुक्त हुई है जैसे–

(क) गिरी का उदग्र गौरवाधार,
गिर जय शृंग ज्यों महाकार,
\+ + +
कौरव दल का कर तेज हरण,
त्यों गिरे भीष्म आलोकवरण,

(ख) लेकिन अजस्र शर वृष्टि निरत, अनवरत युद्ध-रत धीर कर्ण,
मन ही मन था हो रहा स्वयं इस रण से कुछ विस्मित विवर्ण,

इन उदाहरणों में संस्कृत के अनेक शब्द समासपूर्ण शैली के साथ प्रयुक्त हुए हैं परन्तु कवि की विशेषता यह है कि उसने दूसरे चरण में सरल, व्यावहारिक शब्दों का प्रयोग करके भाषा को बोझिल नहीं होने दिया। सरलता और सरसता का 'दिनकर' की भाषा में अद्‌भुत सामंजस्य है। शब्द-शब्द जैसे प्रवाह के साथ प्रवाहित प्रतीत होता है। उदाहरणतः–

चन्द्रमा, सूर्य तम में जब छिप जाते हैं,
किरणों के अन्वेषी जब अकुलाते हैं,
तब धूमकेतु, बस इस तरह आता है,
रोशनी जरा मरघट में फैलाता है,

काव्यभाषा के तीन गुण प्रसिद्ध हैं– माधुर्य, ओज और प्रसाद। मधुर, रोचक और मर्मस्पर्शी-सरस भावनाओं के लिए माधुर्य गुण का प्रयोग उचित समझा जाता है। इसमें अधिकतर अनुस्वारयुक्त तथा दन्त्य और तालव्य वर्णों का समावेश होता है। 'रश्मिरथी' के अनेक प्रसंगों में माधुर्यगुण युक्त भाषा का प्रयोग हुआ है। एक उदाहरण देखिए–

इस आत्म-दाह पीड़िता विषण्ण कली को,
मुझमें भुज खोले हुए दग्ध रमणी को।
छाती से सुत को लगा तनिक रोने दे,
जीवन में पहली बार धन्य होने दे।

ओजगुण-युक्त भाषा अधिकतर उत्साह या क्रोध भाव को प्रकट करने में सहायक होती है। इसमें अधिकतर ट, ठ, ड, ढ आदि वर्ण और द्वित्व अक्षर (जैसे– ट्ठ ड्ढ आदि) प्रयुक्त होते हैं जिनसे टंकार उत्पन्न हो। 'रश्मिरथी' में युद्ध-वर्णन के अवसरों पर ही ऐसी भाषा का प्रयोग हुआ है। जैसे–

झंझा की घोर झंकोर चली, डालों को तोड़-मरोड़ चली
पेड़ों की जड़ टूटने लगी, हिम्मत सब की छूटने लगी।
ऐसा प्रचंड तूफान उठा, पर्वत का भी हिल प्राण उठा।

'प्रसाद' का अर्थ है सरलता। जहाँ पद्य पढ़ते ही अर्थ अपने-आप स्पष्ट होता चला जाय, वहीं प्रसाद गुण माना जाता है। 'रश्मिरथी' में प्रसाद गुण की प्रधानता है। अधिकतर पद्यों को पढ़ते या सुनते ही कवि के अभीष्ट भाव का स्वतः ही बोध हो जाता है। जैसे–

कर्ण मुग्ध हो भक्ति भाव में, मग्न हुआ सा जाता है,
कभी जटा पर हाथ फेरता, पीठ कभी सहलाता है।
चढ़े नहीं चीटियाँ बदन पर, पड़े नहीं तृण-पात कहीं,
कर्ण सजग है, उचट जाय गुरुवर की कच्ची नींद नहीं।

'रश्मिरथी' में मुहावरों या लोकोक्तियों का प्रयोग अधिक नहीं हुआ, फिर भी कुछ सूक्तियाँ अनायास ही कवि की कुशाग्र प्रतिभा का परिचय देने वाली हैं। कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

(1) बड़े वंश से क्या होता है खोटे हों यदि काम।

(2) मोती छिपे आते किसी के आँसुओं के तार में,
हँसता कहीं अभिशाप ही आनन्द के उच्चार में।

'रश्मिरथी' की काव्य शैली की सबसे बड़ी विशेषता इसकी नाटकीयता है। एक तो कवि ने घटनाओं को इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि पाठक जिस बात की आशा करता है, उससे सर्वथा भिन्न कुछ और ही स्थिति उत्पन्न हो जाती है। दूसरे, कवि ने परिस्थितियों और वातावरण का वर्णन इस प्रकार किया है, जैसे वह किसी दृश्य की योजना प्रस्तुत कर रहा हो। तीसरे प्रत्येक सर्ग में कवि ने बड़े रोचक और प्रभावशाली संवादों की योजना की है।

'चित्रोपमता' भाषा की एक अन्य विशेषता है। 'रश्मिरथी' में अनेक स्थलों पर इस प्रकार के वर्णन हैं जिनसे वस्तुस्थिति का सजीव चित्र-सा हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। संध्या-समय का वर्णन देखिए–

दिनमणि पश्चिम की ओर क्षितिज से ऊपर,
थे घट उंडेलते खड़े कनक के भू पर,
लालिमा बहा अग-जग की नहलाते थे,
खुद भी लज्जा से लाल हुए जाते थे।

'रश्मिरथी' में अलंकारों की योजना उचित रूप से हुई है। 'दिनकर' जी ने इस काव्य में विभिन्न अलंकारों का प्रयोग बड़ी सुचारुता से किया है। कहीं भी अलंकार ठूँसे हुए प्रतीत नहीं होते, अपितु वे कवि की भाषा का स्वाभाविक अंग बनकर उपस्थित हुए हैं। कुछ प्रमुख अलंकारों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

अनुप्रास – मनुजता का नया नेता उठा है,
जग में ज्योति का नेता उठा है।

उपमा – **पत्थर-सी हों** माँस-पेशियाँ, लोहे से भुजदण्ड अभय।

रूपक – **वासना-वहि** से जो निकला, कैसे हो वह संयुग कोमल।

उत्प्रेक्षा – दीपित ललाट अपरार्क सदृश्य लगता था,
मानो युग स्वर्णिम-शिखर मूल में आकर,
हो बैठ गया सचमुच ही सिमट विभाकर।

विभावना – मारे बिना हृदय में अपने-आप मरा जाता है।

विशेषोक्ति – गंगा में ले जन्म, वारि गंगा का पी न सका मैं।

संदेह – यो दो अर्चियों विशाल पुनीत अनल की।
हो सजा रही आरती विभा मंडल की।
अथवा अगाध कंचन में कहीं नहा कर,
मैनाक शैल हो खड़ा बाहु फैला कर।

छन्द-प्रयोग की दृष्टि से भी 'रश्मिरथी' काव्य में विविधता है। कवि ने इस काव्य में अधिकतर मात्रिक छन्दी का प्रयोग किया है। जिनमें से प्रमुख हैं– सरसी, पद्धरि, राधिका, अरिल्ल, दुर्मिल, हरि-गीतिका, सुमेरु आदि। सभी छन्दों के प्रयोग में कवि ने इस बात का ध्यान रखा है कि लय और गेयात्मकता बनी रहे।

इस प्रकार 'भावपक्ष' और 'कलापक्ष' दोनों दृष्टि से 'रश्मिरथी' में 'दिनकर' की काव्य-कुशलता स्पष्ट है।

6. काव्यरूप

काव्य के अनेक रूप हैं। प्राचीन काव्याचार्यों ने दो प्रमुख काव्यरूप स्वीकार किए थे– **(1) दृश्यकाव्य, (2) श्रव्यकाव्य**। जिस काव्य का रसास्वादन दृष्टि के माध्यम से होता है, उसे 'दृश्यकाव्य' कहते हैं। नाटक और एकांकी आदि इसी काव्यरूप के भेद हैं। जिस काव्य का रसास्वादन श्रवण अर्थात् कानों के माध्यम से होता है वह 'श्रव्यकाव्य' कहलाता है। रंगमंच पर खेले जा सकने वाले एकांकियों को छोड़कर, शेष सभी प्रकार की काव्य-कृतियाँ 'श्रव्यकाव्य' हैं। 'श्रव्यकाव्य' को आजकल 'पाठ्यकाव्य' भी कह सकते हैं, क्योंकि उन्हें केवल सुनकर ही आनन्द नहीं मिलता, शिक्षित जन उन्हें स्वयं पढ़कर भी रसास्वादन कर सकते हैं। इस दृष्टि से 'रश्मिरथी' एक 'श्रव्यकाव्य' या 'पाठ्यकाव्य' है। इसे पढ़ या सुनकर आनन्द मिलता है, देखकर नहीं, क्योंकि यह नाटक या एकांकी नहीं है।

श्रव्यकाव्य या पाठ्यकाव्य के भी कई रूप है। कविता के क्षेत्र में इसके दो रूप प्रसिद्ध हैं– **(1) प्रबन्ध काव्य, (2) मुक्तक काव्य**। जिस काव्य में किसी क्रमबद्ध कथा का वर्णन हो उसे 'प्रबन्धकाव्य' कहते हैं। इसकी विषयवस्तु परस्पर सम्बन्धित होती है अर्थात् उसमें पारस्परिक बन्धन भाव (प्रबन्ध) होता है। इसके विपरीत, जो काव्य पारस्परिक सम्बन्ध से सर्वथा मुक्त हो और अपने आप में पूर्ण किसी स्वतन्त्र अर्थ या भाव का बोध कराने वाला हो, वह मुक्तककाव्य कहलाता है। 'रश्मिरथी' को मुक्तककाव्य नहीं कह सकते, क्योंकि इसका प्रत्येक पद्य आने से पहले अथवा बाद के अन्य पदों से किसी न किसी रूप से सम्बन्धित है। इस काव्य में आदि से अन्त तक एक कथा का वर्णन है, जो महाभारत की विभिन्न घटनाओं पर आधारित है। अतः यह एक प्रबन्धकाव्य है।

अब यह देखना है कि 'रश्मिरथी' को प्रबन्धकाव्य के किस रूप के अन्तर्गत रखा जा सकता है। प्राचीन काव्याचार्यों ने **प्रबन्धकाव्य के दो भेद माने हैं- (1) महाकाव्य, (2) खण्डकाव्य**। जिस प्रबन्धकाव्य में किसी 'महान्' पुरुष के जीवन का विशद वर्णन हो उसे 'महाकाव्य' कहते हैं। इसमें जीवन के विविध पहलुओं का विस्तृत विवेचन होता है। किन्तु जिस प्रबन्ध काव्य में जीवन के किसी एक अंग, किसी एक प्रमुख घटना, या कथा का वर्णन होता है, उसे 'खण्डकाव्य' कहते हैं। यह वर्णन संक्षिप्त होते हुए भी अपने आप में पूर्ण होता है, और किसी एक निश्चित लक्ष्य की ओर संकेत करता है। कुछ विद्वान् प्रबन्धकाव्य का एक अन्य भेद **'एकार्थकाव्य'** भी मानते हैं, जो वास्तव में महाकाव्य और खण्डकाव्य के बीच की अवस्था का सूचक कथाकाव्य है। इसमें कथावस्तु तो महाकाव्य जैसी विस्तृत होती है, किन्तु जीवन के विविध पहलुओं को चित्रण न होकर किसी एक पहलू का ही सूक्ष्म और गहन विश्लेषण किया जाता है।

प्रबन्धकाव्य के उपर्युक्त तीनों भेदों में से 'रश्मिरथी' को 'खण्डकाव्य' के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इसे महाकाव्य इस कारण नहीं माना जा सकता, क्योंकि इसकी कथावस्तु विस्तृत नहीं है। कवि ने कर्ण के चरित्र से सम्बन्धित केवल तीन-चार घटनाओं को कथा के सूत्र में पिरोकर एक काव्य का रूप दे दिया है। इसमें कर्ण के जीवन के कुछ पहलू ही स्पष्ट हो पाये हैं, उनके जीवन का विस्तृत चित्र इसमें नहीं है। महाकाव्य की तरह इसमें पात्रों की विविधता भी नहीं है और न ही प्रकृति के विविध रूपों तथा विभिन्न सांसारिक पदार्थों का विशद चित्रण हुआ है। 'रश्मिरथी' का कथानक अत्यन्त संक्षिप्त होने के कारण इसे 'एकार्थकाव्य' भी कहा जा सकता है। अतः इसे एक 'खण्डकाव्य' मानना अधिक उपयुक्त है।

'रश्मिरथी' को खण्डकाव्य की कसौटी पर परखने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि किन विशेषताओं के आधार पर किसी खण्डकाव्य को सफल अथवा श्रेष्ठ माना जा सकता है। खण्डकाव्य की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

(1) खण्डकाव्य में किसी एक पात्र के जीवन के किसी एक पक्ष को प्रस्तुत किया जाता है।

(2) इसकी कथावस्तु सीमित होती है।

(3) इसकी कथावस्तु और प्रमुख घटनाओं का केन्द्र प्रमुखतः कोई एक ही स्थान होता है।

(4) यह सर्गों (अध्यायों) में बंटा होता है परन्तु इनकी संख्या अधिक नहीं होनी चाहिए।

(5) इसमें कोई एक रस प्रमुख होता है। अन्य रसों का होना अनिवार्य नहीं, किन्तु विविध भावों की व्यंजना अवश्य होनी चाहिए।

(6) खण्डकाव्य 'विषय प्रधान' (अर्थात् घटना प्रधान) न होकर 'विषयिप्रधान' (अर्थात् चरित्रप्रधान या भाव प्रधान) होता है।

खण्डकाव्य की उपर्युक्त प्रमुख विशेषताओं के आधार पर यदि 'रश्मिरथी' की समीक्षा की जाय तो इसे निस्सन्देह एक श्रेष्ठ खण्डकाव्य कहा जा सकता है।

'रश्मिरथी' में महाभारत के केवल एक पात्र 'कर्ण' के जीवन के उस पहलू का उद्घाटन हुआ है, जो उसे एक सहृदय दानवीर के साथ-साथ प्रबल पराक्रमी और स्वाभिमानी सिद्ध करता है। यद्यपि महाभारत में कर्ण का आख्यान अनेक पर्वों (अध्यायों) में मिलता है तथापि 'दिनकरजी' ने केवल कुछ ही गिनी-चुनी घटनाओं के सहारे यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि वह कितना आदर्श 'मानव' था।

इस काव्य की कथावस्तु अत्यन्त संक्षिप्त है। कवि दिनकर ने इसे सात छोटे-छोटे सर्गों में विभक्त किया है प्रत्येक सर्ग में कर्ण के किसी विशेष चारित्रिक पहलू को उजागर किया गया है, अतः यह खण्डकाव्य निश्चय ही विषयि प्रधान अर्थात् चरित्र प्रधान है। इसकी कथा इतनी सी है कि पाण्डव और कौरव राजकुमार गुरू द्रोणाचार्य से शस्त्र-विद्या ग्रहण कर चुकने के पश्चात् रंगभूमि में अपनी-अपनी शस्त्रकला का प्रदर्शन करते हैं। अर्जुन का शस्त्र-कौशल सभी को प्रभावित करता है। तभी अकस्मात कर्ण जन-समुदाय में से उठकर अर्जुन को ललकारता है, पर हीन जाति में जन्मा कहकर तिरस्कृत किया जाता है। दुर्योधन उसे वहीं अंगदेश का राजा घोषित कर गौरव प्रदान करता है। यह घटना कर्ण को दुर्योधन का मित्र और पाण्डवों का शत्रु बना देती है। वह युद्ध-कौशल में और अधिक निपुण होने के लिए परशुराम की सेवा में जाता है। वहाँ उसकी गुरुभक्ति और सहनशीलता का परिचय मिलता है। बाद में महाभारत के युद्ध में कौरवों की ओर से युद्ध करता हुआ श्रीकृष्ण की कूटनीति के कारण अर्जुन के हाथों मारा जाता है।

यह कथावस्तु अधिकांशतः हस्तिनापुर और कुरुक्षेत्र में घटित होती है। यद्यपि यह कथा कुछ समय के लिए कर्ण के साथ महेन्द्रगिरि पर परशुराम के आश्रम में भी पहुँच जाती है तथापि शीघ्र ही केन्द्र स्थल पर लौट आती है। इस प्रकार खण्डकाव्य की घटनाओं का फैलाव भिन्न-भिन्न स्थानों पर न होकर, एक ही स्थान पर अर्थात् कुरूक्षेत्र और उसके आस-पास सिमटा हुआ है।

इस सीमित-सी कथावस्तु में कवि दिनकर ने विभिन्न मार्मिक स्थलों की अवतारणा करके इसे बड़ा प्रभावपूर्ण और हृदयस्पर्शी बना दिया है। कुछ उदाहरण देखिए– कर्ण भरी सभा में इस कारण अपमानित हो रहा है कि वह हीन जाति का सूत-पुत्र है। कुन्ती चुप है। कृपाचार्य कह देते हैं– राजकुमार अर्जुन से कोई राजा ही युद्ध कर सकता है। इस अवसर पर दुर्योधन का उठ कर कर्ण के मस्तक पर अंग देश का राज्य-मुकुट रख देना कितना चमत्कारपूर्ण है। इसके पश्चात् कर्ण की गुरु-भक्ति-सम्बन्धी घटना भी बड़ी मार्मिक है। गुरु परशुराम शिष्य कर्ण की जाँघ पर सिर रख कर सोये हैं। अकस्मात् एक विषैला कीट कर्ण की जाँघ का माँस कुतर-कुतर कर खाने लगता है। रक्त की धारा बह निकलती है, कर्ण तिल भर नहीं हिलता। पाठक इस स्थिति को देखकर अवाक् रह जाता है। तभी रक्त के उष्ण स्पर्श से परशुराम की नींद खुल जाती है। पाठक सोचता है –वे अवश्य कर्ण की प्रशंसा करेंगे किन्तु इसके विपरीत जब वे कुपित होकर कर्ण को दी गयी शस्त्रास्त्र-विद्या के चरमतेज (ब्रह्मास्त्र-विद्या) को वापस ले लेते हैं, तो स्थिति बहुत मार्मिक हो उठती है। इसी प्रकार कुन्ती और कर्ण का वार्तालाप भी बड़ा मर्मस्पर्शी है। एक ओर ममतामयी माँ है जो कर्ण के तेजादीप्त व्यक्तित्व को देखकर फूली नहीं समाती किन्तु साथ ही अपने कलेजे के टुकड़ों के पारस्परिक बैर से दुःखित है। दूसरी ओर जन्म लेते ही माँ द्वारा त्याग दिए गए पुत्र की विवशता है जो माँ को निराश भी नहीं करना चाहता और अपने मित्र एवं शुभचिन्तक दुर्योधन के प्रति भी कृतघ्न नहीं बन सकता। 'रश्मिरथी' काव्य की अन्तिम घटना सबसे मार्मिक बन पड़ी है। युद्ध में कर्ण पाण्डवों को नाकों चने चबवा रहा है। अर्जुन के अतिरिक्त अन्य चारों पाण्डवों को पकड़कर भी वह छोड़ चुका है। अर्जुन उसके बाणों को झेलने में असमर्थ है। अचानक कर्ण के रथ का एक पहिया कीचड़ में धंस जाता है। उसे निकालने के लिए रथ से नीचे उतर आता है तभी कृष्ण का संकेत पाकर अर्जुन उस निःशस्त्र वीर को मार डालता है। सचमुच यह घटना बड़ी हृदय द्रावक है।

पात्र-योजना अथवा चरित्र-विधान की दृष्टि से भी 'रश्मिरथी' खंडकाव्य की कसौटी पर खरा उतरता है। कर्ण इस खण्डकाव्य का बिन्दु है। 'रश्मिरथी' शीर्षक उसी का एक विशेषण है। पूरे काव्य में आरम्भ से लेकर अन्त तक उसी के व्यक्तित्व की प्रभावशाली झाँकी अंकित है। वह इस काव्य रूपी गनन पर धूमकेतु की भाँति उदित होकर, प्रचण्ड प्रकाश की ज्योति बिखेर कर अस्त हो जाता है। उसके सम्बन्ध में श्रीकृष्ण के ये शब्द उपयुक्त ही हैं–

मनुजता का नया नेता उठा है।
जगत से ज्योति का जेता उठा है।

रस व्यंजना की दृष्टि से विचार करें तो 'रश्मिरथी' को वीर रस प्रधान खण्डकाव्य कहा जाता है। इस काव्य का नायक कर्ण ने केवल युद्धवीर, अपितु दानवीर, दयावीर और धर्मवीर भी है। पूरे काव्य में आदि से अन्त तक उसी का उत्साह भाव संचरित है। युद्ध-प्रसंग में अर्जुन, घटोत्कच एवं अन्य योद्धाओं का पराक्रम भी वीर रस की अभिव्यंजना में सहायक है। वीर रस की पूर्णता के लिए रौद्र और भयानक रस का समावेश काव्य में अनिवार्य है। 'रश्मिरथी' में भी इन रसों की योजना यथास्थान हुई है। पहले रंगभूमि में और फिर युद्ध-क्षेत्र में कर्ण के आवेशपूर्ण वचन क्रोध भाव की अभिव्यक्ति कर रौद्र रस की सृष्टि करते हैं। कर्ण पर परशुराम का क्रोध भी रौद्र रस के रूप में परिणत हो जाता है। पाण्डव और कौरव-दल में युद्ध की भीषणता से छा जाने वाला आंतक भयानक रस की अभिव्यंजना करता है। इनके अतिरिक्त कुन्ती और कर्ण के वार्तालाप-प्रसंग में वात्सल्य भाव की झलक भी देखी जा सकती है।

वस्तु वर्णन की दृष्टि से 'रश्मिरथी' की समीक्षा करने पर स्पष्ट हो जाता है कि इसमें कवि ने प्रकृति के विविध उपकरणों अथवा विभिन्न सांसारिक प्रसंगों का अधिक विस्तृत वर्णन नहीं किया। 'खंडकाव्य' में यह सम्भव भी नहीं है, क्योंकि इसमें कवि की दृष्टि अधिकतर प्रमुख पात्र के चरित्र और उसके आन्तरिक भावों पर केन्द्रित रहती है। फिर 'दिनकर' जी ने महेन्द्रगिरि पर स्थित परशुराम के आश्रम के वर्णन के माध्यम से प्रकृति का बड़ा सजीव और मोहक चित्र प्रस्तुत किया है–

शीतल विरल एक कानन शोभित अधित्यका के ऊपर,
कहीं उत्स प्रस्रवण चमकते, झरते कहीं शुभ्र निर्झर।
जहाँ भूमि समतल, सुन्दर हैं, नहीं दीखते हैं पाहन,
हरियाली के बीच खड़ा है, विस्तृत एक उटज पावन।

इसी प्रकार कर्ण की सूर्य-पूजा के अवसर पर भी कवि ने प्रभात काल का बड़ा मनोहर चित्रण किया है। 'रश्मिरथी' काव्य का युद्ध-वर्णन और 'संवाद-वर्णन' विशेष महत्त्वपूर्ण है। कर्ण और घटोत्कच तथा कर्ण और अर्जुन का भीषण संग्राम इस काव्य में सशक्त रूप में वर्णित है। संवाद-योजना में भी दिनकर जी पर्याप्त सफल रहे हैं। इस काव्य में छः प्रमुख संवाद हैं–

1. परशुराम-कर्ण संवाद।

2. कृष्ण-कर्ण संवाद।

3. इन्द्र-कर्ण संवाद।

4. कर्ण-कुन्ती संवाद।

5. भीष्म-कर्ण संवाद।

इनके अतिरिक्त प्रथम सर्ग में कृपाचार्य-कर्ण संवाद एवं सप्तम सर्ग में कृष्ण-युधिष्ठिर संवाद भी उल्लेखनीय हैं। इन संवादों से खण्डकाव्य में नाटकीयता एवं रोचकता का गुण अनायास आ गया है।

निष्कर्ष यह है कि 'रश्मिरथी' एक सफल खण्डकाव्य है।

7. संवाद

'रश्मिरथी' एक सफल प्रबन्ध काव्य है। इस काव्य का 'संवाद-वर्णन' भी विशेष महत्त्वपूर्ण है। संवाद-योजना में भी दिनकर जी पर्याप्त सफल रहे हैं। इस काव्य में प्रमुख संवाद निम्नलिखित हैं–

परशुराम-कर्ण-संवाद

परशुराम-कर्ण संवाद 'रश्मिरथी' का एक अत्यन्त ही मार्मिक स्थल है। महेन्द्रगिरि पर प्रकृति के भव्य वातावरण में महामुनि परशुराम का आश्रम है। जब द्रोणाचार्य कर्ण को अपना शिष्य बनाकर भी उसे कुछ भी सिखाते, तब वहाँ से निराश होकर कर्ण महेन्द्रगिरि पर वीर परशुराम के पास पहुँचता है। परशुराम की वह प्रतिज्ञा थी कि वे केवल ब्राह्मण जाति के युवकों को ही धनुर्विधा की शिक्षा देंगे। कर्ण ने उन्हें अपनी जाति का परिचय न दिया।

परशुराम अपने शिष्य कर्ण की जाँघ पर अपना सिर रखकर आश्रम से थोड़ी दूरी पर एक वृक्ष की छाया में सो रहे हैं। माघ महीने की अच्छी लगने वाली धूप पत्तों से छन-छन कर उनके शरीर पर पड़ रही है, जिस कारण मुनि परशुराम जी के थके-माँदे शरीर की थकान अपने-आप ही दूर हो रही है। अपने गुरु परशुराम के प्रति भक्ति-भावना से मोहित होकर कर्ण मन-ही-मन मग्न हो रहा है। कभी वह उनकी जटाओं पर हाथ फेरने लगता है और कभी उनकी पीठ सहलाने लगता है, ताकि उनके शरीर पर चीटियाँ आदि न चढ़ सकें। इसी समय एक विषकीट कहीं से आकर कर्ण के मांस को कुतर-कुतर कर खाने लगा। कीड़े के काटने से कर्ण बहुत ही व्याकुल हो उठा। पीड़ा होते हुए भी वह बेबस था। वह सोचने लगा– यदि कीड़े को निकालने के लिए मैं पाँव हिलाता हूँ, तो गुरुदेव की नींद टूट जाएगी। गुरु-भक्ति की भावना से भरा कर्ण का हृदय यह सोच कर काँप गया। अतः उसने सोचा कि यह कीड़ा चाहे जितना भी मेरा खून पी ले, मैं पीने दूँगा। लेकिन गुरु को कच्ची नींद में जगाकर में पाप का भागी नहीं बनूँगा। अतः वह वैसे ही बैठा रहा। कीड़े के काटने पर भी कर्ण तो स्थिर भाव से बैठा रहा, पर उसके शरीर से बहने वाली खून की धारा के स्पर्श से परशुराम जाग पड़े। देखते ही वे बोल उठे– "तुमने यह कैसी मूर्खता की।" इस पर कर्ण ने कुछ लजाते हुए उत्तर दिया–"नहीं, मुझे कोई खास पीड़ा नहीं हुई। हे गुरुदेव, भला यह छोटा-सा कीड़ा मेरा क्या बिगाड़ सकता है? मैं तो यह सोचकर चुपचाप बैठा रहा कि अगर मैं जरा-सा भी हिला-डुला तो बेकार में ही आपकी नींद खराब हो जाएगी।" इसके बाद परशुराम न जाने क्या सोचकर गम्भीर हो गए। फिर अत्यन्त क्रोधित होकर बोल उठे– "सच बता, तू मुझे छलने वाला (छलिया) कौन है? तू जाति से ब्राह्मण ही है, या फिर किसी अन्य विशेष पुरुष की बलवान सन्तान है? ब्राह्मण का स्वभाव कभी भी सहनशील नहीं होता। वह किसी भी उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपमान रूपी जहर नहीं पी सकता। तू अवश्य ही क्षत्रिय है। क्षत्रिय ही इस प्रकार की पीड़ा चुपचाप सह सकता है। सच-सच बतला दे, अन्यथा परशुराम का कराल क्रोध और शाप तुझे भस्म कर देगा।" परशुराम के चरणों पर गिरते हुए कर्ण ने कहा–'क्षमा करें गुरुदेव! सच है मैं सूत–पुत्र हूँ लेकिन आपका अनुचर हूँ। मैं आपका शिष्य बनने का अभिलाषी था। किन्तु नीच वंश में जन्मा समझकर आप नहीं अपनायेंगे इसलिए मैंने अपनी जाति छिपाई थी। वास्तव में मैं किसी भी प्रकार से धाखेबाज नहीं हूँ। छली कहला कर भला संसार में मैं किसे मुँह दिखाऊँगा। यदि आप मुझे अभी शाप देकर भस्म भी कर देंगे तो इसे भी मैं अपने गुरु की कृपा मानकर स्वीकार करूँगा। लेकिन हे गुरुदेव, आप मुझे भस्म कर देंगे तो अर्जुन का अभिमान मैं चूर नहीं कर पाऊँगा। मेरे जीवन की इच्छाँ अधूरी रह जाएँगी। तो भी मैं आप से जीवन की भिक्षा नहीं मानूँगा। परन्तु मेरी एक अन्तिम इच्छा है। वह यह कि कम से कम अपने गुरु के चरणों में प्राण दे सकूँ, ताकि मैं सुखपूर्वक मर सूकँ।" यह कह कर कर्ण व्याकुल होकर परशुराम के चरणों से लिपट गया।

परशुराम की आँखों से भी आँसू की दो बूँदें बहकर गिर पड़ीं। वे बोले–ओह! तो तुम ही प्रसिद्ध कर्ण हो, जो पाण्डव अर्जुन का प्रतिद्वन्द्वी माना जाता है, जो दुर्योधन का सच्चा मित्र है और जिसने अपनी शक्ति से विश्व को जीतने की कामना कर रखी है। अब मेरी समझ में आया कि तुम किसलिए रात-दिन लगातार परिश्रम करते थे। मैंने तो तुम्हारे समान जिज्ञासु शिष्य और नहीं पाया। अपनी पवित्रता और पुनीत भक्ति-भावना से तो तुमने मुझे जीत लिया है। किन्तु मैं क्या जानूँ कि यह सब छल है। मैंने तुम पर जैसा स्नेह किया था, वैसा कभी किसी ने नहीं किया। इसी स्नेह के कारण ही जब तुम सोये होते थे, तुम तुम्हारे कानों में धनुर्विधा की बातें भरता रहता था। किन्तु, तुम ब्राह्मण नहीं सूत-पुत्र निकले। तुमने अपना वंश पहले न बताकर मेरे साथ जो छल किया है, उसकी सजा तो तुझे भोगनी ही पड़ेगी, क्योंकि परशुराम का क्रोध आज तक न तो बेकार गया है और न ही आज जाएगा।''

पुत्रवत् मान लेने के कारण परशुराम कर्ण को जीवन दान तो दे देते हैं परन्तु कर्ण को शाप दे डालते हैं कि उनकी विद्या से उसे कोई लाभ नहीं पहुँच सकेगा। अन्तिम क्षण में वह उसे भूल जाएगा–

सिखलाया ब्रह्मास्त्र तुझे जो काम नहीं वह आयेगा,
है यह मेरा शाप समय पर उसे भूल तू जायेगा।

शाप सुनकर कर्ण व्याकुल होकर उठ खड़ा हुआ और बोला–'ओह! गुरुदेव! यह आपने क्या कर दिया? इस अत्यन्त भयानक शाप देने से तो अच्छा था कि आप मेरे प्राण ही हर लेते, मुझे मार ही डालते।'

कर्ण की व्याकुलता और मरने की इच्छा देखकर परशुराम ने उसे समझाते हुए कहा– ''हे कर्ण! मेरा शाप अटल है। किन्तु एक 'ब्रह्मास्त्र' चलाने की विद्या न रह गई तो क्या हुआ? तुमने इस महेन्द्रगिरि नामक पर्वत पर रहकर और बहुत कुछ सीखा है। फिर एक वरदान और तुम्हें देता हूँ कि तुम संसार में हमेशा महान् व्यक्ति कहे जाओगे।'' शाप और वरदान देने के बाद परशुराम अपने नियामानुसार कर्ण को वहाँ से विदा हो जाने के लिए कहते हैं। उनको प्रदत्त वस्तु के हरण से खेद है उनका मन विकल हो रहा है। वे कहते हैं– 'कर्ण अब जाओ, यहाँ से चले जाओ! मुझे यहाँ एकान्त में अकेला छोड़कर अपने व्यवहार की व्याख्या करने दो ताकि मेरा मन स्वस्थ और शान्त हो सके।' इतना कहकर परशुराम ने अपना मुँह फेर लिया। कर्ण के सपने जहाँ से मिले थे, वहीं टूटकर बिखर गए। उनके चरण छूकर कर्ण ने अपने आँसुओं का अर्घ्य उन्हें भेंट किया और धीरे-धीरे वहाँ से चला गया।

परशुराम-कर्ण संवाद में दिनकर जी ने मौलिकता का परिचय दिया है। प्राचीन साहित्य में परशुराम के इस रूप का वर्णन नहीं मिलता। यद्यपि कुछ संवाद अधिक लम्बे हैं फिर भी नाटकीय तत्त्वो का प्रयोग संवादों को सजीव एवं स्वाभाविक बनता है।

कृष्ण-कर्ण संवाद

'रश्मिरथी' में कृष्ण-कर्ण-संवाद दो बार आया है। प्रथम बार तृतीय सर्ग में और दूसरी बार दोनों का मिलन रणभूमि में होता है। तृतीय सर्ग में कृष्ण पाण्डवों का सन्देशा लेकर दुर्योधन के दरबार में पहुँचते हैं। उन्होंने दुर्योधन को समझाने का प्रयत्न किया कि न्याय की दृष्टि से तो पाण्डवों को आधा राज्य मिलना चाहिए, परन्तु यदि वह ऐसा नहीं चाहता तो कम-से-कम पाँच पाण्डवों के लिए पाँच गाँव तो दे ही दें, ताकि वे शान्तिपूर्वक रह सकें। दुर्योधन ने उनकी बात न मानते हुए, उन्हें गिरफ्तार करने का प्रयत्न किया। पर कृष्ण ने अपना विराट रूप प्रकट कर उसे फिर समझाने का प्रयत्न किया और अन्त में निराश लौट आये। रास्ते में उनकी भेंट कर्ण से होती है। कृष्ण कूटनीति का सहारा लेकर कर्ण को अपना शिकार बनाना चाहते हैं। रथ चलने के साथ-साथ दोनों में राजनीति के दाँव-पेंच चलने लगे। बड़े शान्त स्वभाव से कृष्ण ने कर्ण ने कर्ण से कहा : 'हाय अब युद्ध को टालने की कोई बात बाकी नहीं रह गई। अगर दुर्योधन मेरी बात मानकर पाण्डवों को पाँच गाँव देने के लिए राजी हो जाता, तो कौन-सी बड़ी बात थी? मैं तो चिन्ता में पड़ गया हूँ और समझ ही नहीं पा रहा कि इस युद्ध को रोकने के लिए और कौन-सा उपाय काम में लाऊँ? हाँ, हे कर्ण, यदि तुम दुर्योधन का साथ छोड़ दो, तो युद्ध की आग को भड़कने से रोका जा सकता है। तुम्हारे ही बल पर वह जीत की आशा लगाये बैठा है। एक और बात भी तुम्हें मालूम नहीं है कि तुम कुन्ती के पुत्र हो, पाण्डव ही तुम्हारे अपने भाई हैं। यदि तुम अपने पाण्डव भाइयों के साथ मिल जाते हो, तो होने वाला भयानक युद्ध भी बिना किसी प्रयत्न के अपने-आप रुक जायेगा।

भगवान कृष्ण की बातें सुनकर कर्ण का मन बहुत ही व्याकुल हो उठा। वह थोड़ी देर के लिए गम्भीर हो गया। फिर कुछ सोचते हुए बोला– 'आपने जो कुछ भी बताया है, वह बहुत बड़ा रहस्य है। मुझे सूर्य भगवान ने भी यह बताया था कि मैं कुन्ती का बेटा और पाण्डवों का भाई हूँ। किन्तु जब मुझे अपने जन्म और जन्म देने वाली माता के व्यवहार का ध्यान आता है, तो मैं उदास होकर सोचा करता हूँ कि वह माता कितनी निर्मोही और भयानक होगी जो अपने शरीर से

किसी मेरे जैसे बच्चे को जन्म भी उसे नदी की धारा में बहा देती है।' फिर कर्ण दुर्योधन के उस उपकार की याद कृष्ण को दिलाता है जो उसे रंगभूमि में लिया था। वह कहता है– "हे कृष्ण मेरा रोम-रोम दुर्योधन का कर्जदार है। दुर्योधन की मित्रता के सामने मेरे लिए अन्य किसी भी सुख-सम्पत्ति का कोई महत्त्व नहीं।' इतना कहते हुए कर्ण ने अपना निष्कर्ष सुनाया– 'रण में ही अब दर्शन होगा' और रथ से उतर पड़ा। इस प्रकार कृष्ण का वार विफल हो गया।

दूसरी बार दोनों का मिलन रणभूमि में होता है। रणभूमि में कर्ण का रथचक्र कीचड़ में फँस गया। कर्ण को मुसीबत में देखकर अर्जुन को सावधान करते हुए कृष्ण ने कहा– अरे भोले अर्जुन! तू चुपचाप खड़ा क्या देख रहा है। यही समय कर्ण को मार डालने के लिए उपयुक्त है। कर्ण ने अर्जुन को धर्म की याद दिलायी। इसी समय कृष्ण कर्ण के सामने आये और गुस्से से भरकर वज्र के समान कठोर वचनों में बोले–'ओ धर्म की उज्ज्वलता के ठेकेदार! तुम अपने आपको बहुत ही भक्त और अच्छे कर्म करने वाला मानते हो। जिस दिन कौरवों के साथ महारथियों ने मिलकर अकेले और निहत्थे अभिमन्यु को मार डाला था, उस दिन तुम्हारा धर्म कहाँ गया था? जिस दिन भीम को विष देकर मारने की चेष्टा की गई थी, उस दिन तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था? जिस दिन कौरवों ने लाख के घर में पाण्डवों को चलाकर मार डालने का षड्यंत्र रचा था, तब तुम लोगों का धर्म कितनी उज्जवल हँसी संसार में हँसा था? जिस दिन भरी सभा में द्रोपदी का चीर हरण हुआ था, तब तुम्हारा धर्म कहाँ था?'

कर्ण ने हँस कर कहा– 'हे कृष्ण! अब यह पूछना बेकार ही है कि किसने पुण्य किया या पाप किया। लेकिन मैं तो यह जानता हूँ कि कल तक जहाँ दुर्योधन खड़ा था आज पाण्डव भी वहीं खड़े हैं अर्थात् अगर कल तक दुर्योधन बुरे कर्म कर रहा था तो आज पाण्डव भी कोई अच्छे कर्म नहीं कर रहे। अभिमन्यु की कथा तो आपको याद है परन्तु आचार्य द्रोण को रण से विरत करने में आखिर पाण्डवों ने कौन सा अपकर्म किया, इसे क्यों भूल जाते हैं? सात्यकि और भूरिश्रवा की हत्या में किस धर्म का सहारा लिया गया था? क्या ये सब करते हुए पाण्डव अपने धर्म से पतित नहीं हुए? आपने जो कुछ कहा है, वह सब ठीक ही है। मुझे अपनी चिन्ता बिल्कुल नहीं। मेरे मन में यदि कुछ पछतावा है तो दुर्योधन का ही है कि उसे विजेता बनाये बिना ही मैं इस दुनिया से जा रहा हूँ– "लिये यह दाह मन मे जा रहा हूँ।" और इसके साथ ही कृष्ण-कर्ण-संवाद का पटाक्षेप भी होता है।

कृष्ण-कर्ण-संवाद में भी दिनकर ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। महाभारत के युद्ध के लिए व्यास जी ने कौरवों को दोषी ठहराया था। परन्तु दिनकर जी ने इस काव्य में उसका परिष्कार किया है। इस प्रकार कृष्ण-कर्ण-संवाद भावों की दृष्टि से सफल संवाद है।

इन्द्र-कर्ण-संवाद

कर्ण के शरीर पर जन्म से ही सुनहले कवच-कुण्डल थे। कृष्ण इस बात को जानते थे कि कवच-कुण्डल के रहते कर्ण को कोई भी मार नहीं सकता। कृष्ण ने नीति से काम लेकर अर्जुन के पिता इन्द्र को इस बात के लिए तैयार किया कि वह कर्ण के दानी स्वभाव से लाभ उठाकर उसके कवच-कुण्डल दान में माँग लाये। इन्द्र तैयार हो गया।

एक दिन जब कर्ण गंगा के किनारे पर सुबह पूजा-पाठ कर रहा था, तो ब्राह्मण का रूप धारण करके इन्द्र उसके सामने जा पहुँचा। उसने अनेक प्रकार से कर्ण के दान की प्रशंसा की। और इस डर से कहीं कर्ण का व्रत भंग न हो जाए बिना माँगे ही इन्द्र ने लौट जाने का स्वाँग रचा। कर्ण ने अपनी प्रतिज्ञा दुहराई– "सब डोले पर नहीं डोल सकता है वचन हमारा।" अन्त में इन्द्र ने उससे कवच-कुण्डल का दान माँगा। कवच और कुण्डल का नाम सुनकर एक बार तो जैसे कर्ण के शरीर को बिजली-सी छू गई। लेकिन फिर असली रहस्य को समझ कर अपने मन को गम्भीर बना कुछ सोचते हुए वह बोला– 'अब मेरी समझ में आया कि आप और कोई नहीं, बल्कि स्वयं देवताओं के राजा इन्द्र हैं। वास्तव में मेरे दान का यश धन्य है कि स्वर्ग के राजा को भी खींचकर धरती पर ले आया है। फिर अपने कवच-कुण्डल का दान देने का निश्चय करने के बाद कर्ण कटु शब्दों में अर्जुन की भर्त्सना करने लगा। वह सच्ची वीरता का महत्त्व बताते हुए कहता है– "हे देवराज इन्द्र, जिस व्यक्ति को हम अपनी बाहों की शक्ति से नहीं जीत सकते, उस व्यक्ति को न्याय छोड़कर छल-कपट से मारें, क्या वह उचित है? सच्चे वीर के लिए हारने या जीतने का कोई महत्त्व नहीं होता। सच्चाई पर डटा रहने वाला वीर व्यक्ति कभी हार कर भी नहीं हारता। यदि अर्जुन बिना युद्ध किये ही जीत पाने के लिए बेचैन हो रहा है, तो मुझे जीतने का मैं उसे एक सरल उपाय बताता हूँ। उसे जाकर कहिये कि वह मेरी मोम की मूर्ति बना ले। बस उस मूर्ति का गला काट कर ही वह संसार में कर्ण को जीतने वाला प्रसिद्ध हो जाये।" इतना कहकर कर्ण ने अपनी तीखी तलवार उठाई और एक ही क्षण में अपने शरीर की चमड़ी छील डाली। अपने शरीर के साथ ही जन्मे कवच तथा कुण्डल को उतार कर इन्द्र के हाथों पर रख दिया और इसकी इच्छा पूरी कर दी। कर्ण के इस महान् दान को देखकर दिशाएँ भी सन्न होकर रह गई। कर्ण के इस कार्य ने इन्द्र को भी लज्जित कर दिया। अपने अहंकार के कारण

इन्द्र कर्ण– जैसे सरल हृदय वाले व्यक्ति को धोखा देने के लिए वहाँ आये थे; उसके महान् तेज की आग में जलने के लिए नहीं आये थे। वे कर्ण के सामने ठहरने में भी अपने को असमर्थ पाने लगे। अन्त में जाने से पहले कर्ण को कोई वरदान माँगने को कहते हैं। किन्तु कर्ण कहता है– 'धर्म की सब मेरा कवच-कुण्डल बनकर मेरी रक्षा करे, और मुझे कुछ भी नहीं चाहिये।' इस पर इन्द्र ने कहा– मैंने कवच और कुण्डल लेकर जो तुम्हें दुर्बल बना दिया है उसकी पूर्ति मैं करना चाहता हूँ। तुम तो कुछ मांगोगे नहीं, लेकिन मैं बिना कुछ दिए जा नहीं सकता। अतः में तुम्हें एक ऐसा अमोघ अस्त्र 'एकघ्नी' दे रहा हूँ जो स्वयं काल को भी खा सकता है। लेकन इस अमोघ अस्त्र से तुम केवल एक बार काम ले सकोगे। एक बार तुम्हारे चलाने के बाद शत्रु का नाश करके यह शीघ्र ही मेरे पास वापस लौट आयेगा। इसलिए अत्यधिक उचित अवसर पर ही इसका प्रयोग करना।' कर्ण को अमोघ अस्त्र देकर इन्द्र चले गये।

इस प्रकार इन्द्र-कर्ण-संवाद रश्मिरथी का प्राण है। इस में मुख्य रूप से कर्ण की दानवीरता की ही प्रशंसा की गई है।

कर्ण-कुन्ती-संवाद

कर्ण-कुन्ती-संवाद रश्मिरथी का बड़ा ही प्रभावशाली और हृदय को छूने वाला संवाद है। कुन्ती कृष्ण की प्रेरणा से कर्ण के पास जाने का कई बार निश्चय करने पर भी अपनी मानसिक दुर्बलता के कारण जा नहीं पायी थी। जब कुरुक्षेत्र के मैदान में महाभारत का युद्ध छिड़ने में केवल एक दिन बाकी रह गया, तब कुन्ती का हृदय अकुला उठा। वह सोचने लगी– 'बड़ा ही भयानक और प्रलय मचा देने वाला युद्ध होगा। भाई-भाई से लड़कर उसका खून बहायेगा। क्यों इन्हें रोका नहीं जा सकता? अतएव उचित यही मालूम पड़ता है कि मैं कर्ण को ही जाकर समझाऊँ।

पीड़ा और चिन्ता के कारण अपने ही मन से उलझी हुई कुन्ती गंगा के किनारे पहुँची। उस समय कर्ण गंगा की धारा में खड़े होकर सूर्य देवता की पूजा में मग्न था। कुन्ती काफी देर तक अपने बेटे कर्ण के तेजस्वी शरीर को देखती रही। कर्ण का जब ध्यान टूटा तो आदर से नमस्कार करके पूछने लगा– 'हे देवि! आप कौन हैं? किसलिए यहाँ आई हैं? यह कुरुक्षेत्र का स्थान अब युद्ध-भूमि बन चुका है, रात का समय है: बताइये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?

कर्ण की गम्भीर वाणी सुन कर कुन्ती का धैर्य जाता रहा। उसके मन में जो दुःख का भाव था, वह आँसू की धारा बन कर बहने लगा। ममता के भाव से पिघलकर काँपते हुए स्वरों में कुन्ती बोली– 'तू राधा का सूत नहीं मेरा पुत्र है। कुमारीवस्था में पैदा होने के कारण मुझे समाज के भय से तुम्हें त्यागना पड़ा। तुमको एक सन्दूकची में बन्द करके और अपने मन को पत्थर के समान कठोर बनाकर, तुम्हें मैं नदी की धारा में बहा आई। अब तक में तुम्हारी जन्मकथा का रहस्य तुझे न बतला सकी– इसका मुझे बहुत दुःख है। लेकन कर्ण! आज तुमसे एक प्रार्थना करने के लिए आई हूँ। कल कुरुक्षेत्र के मैदान में भयानक युद्ध आरम्भ होगा। मैं चाहती हूँ कि तुम उसमें पाण्डवों के विरुद्ध मत लड़ो। पाण्डव तेरे छोटे भाई हैं, उनकी रक्षा करना तेरा धर्म है। मैं जो कुछ कह रही हूँ, यह किसी प्रकार की छल-कपट से भरी योजना नहीं है। पश्चिम में डूबते हुए सूर्य-पिता को देख, वे मेरी बात को पुष्टि कर रहे हैं। उसी समय आकाश से यह वाणी सुनाई दी–हे कर्ण! कुन्ती ने जो कुछ भी कहा है उसके वचनों को सच्चा समझो! हे बेटा, अपनी माँ की आज्ञा का पालन अवश्य करो।

कर्ण डूबते हुए सूर्य को नमस्कार करके और कुन्ती का माता के समान आदर करके कहने लगा– अब तुम मुझे पुत्र कहने के लिए कौन-सा मुँह लेकर आई हो? मैं तो एक नीच समझे जाने वाले सारथी का बेटा साधारण सा मनुष्य हूँ। हे ऊँचे वंश की ठकुरानी, मुझे अपनाकर अब तुम क्या करोगी? मैंने वंशहीन रहकर अपनी सारी आयु बिता दी है। अब तक तो मैं याद नहीं आया परन्तु इस समय एकाएक प्रीति उत्पन्न होने का कारण प्रेम और स्नेह नहीं अपितु पाण्डवों की प्राणरक्षा की भय है। अब मुझे दुबारा प्राप्त करने की तुम्हारी कोशिश बेकार है। किसी भी मूल्य पर मैं दुर्योधन का साथ नहीं छोड़ सकता।' अपनी मानसिक पीड़ा को प्रकट करके कर्ण चुप हो गया। भावुकता, विवशता और मानसिक पीड़ा के कारण कर्ण की आँखों से झर-झर आँसू झरने लगे। उधर कुन्ती के हृदय में भी हाहाकार मचा हुआ था।

रात के उस गहरे सन्नाटे में कुन्ती और कर्ण ये दो व्यक्ति गंगा के किनारे पर भाग्य के मारे पत्थर से समान चुपचाप खड़े थे। आखिर पश्चाताप और दुःखभरे स्वरों से कुन्ती ने कहा– "पुत्र, मैं नारी नहीं, माँ नहीं, सच सर्पिणी हूँ। अपने पुत्र से जो कुछ भी मैंने सुना वह ठीक था। मैं तो केवल यह भरोसा लेकर आई थी कि तू महान् दानी है। सब की इच्छा तो तूने हमेशा पूरी की, लेकिन मैं ही संसार में सबसे अभागी नारी हूँ जो झोली फैलाकर भी अपने बेटे के द्वार से खाली हाथ जा रही हूँ।"

अन्त में चलने से पहले कर्ण को आशीर्वाद देते हुए माता कुन्ती ने आगे बढ़कर उस गले से लगा लिया। माँ के गले से अलग होकर और उसके चरणों में गिर कर वह बोला– 'हे माँ तुम्हारी बिछुड़ी गोदी को फिर से पाकर आज मेरा

जीवन धन्य हो गया। लेकिन दुःख इस बात का है कि तू मेरे स्नेह के अधिकार को ठीक समय पर लेकर नहीं आई है, बहुत देर कर दी है। लेकिन फिर भी मैं तुम्हें खाली हाथ लौटने नहीं दूँगा। तुम मुझे अर्जुन से लड़ने से रोकना चाहती हो, पर अपनी इस इच्छा को छोड़ने पर भला मुझे यश क्या मिलेगा? ऐसा कर के मैं अपनी आत्मा को ही क्या उत्तर दूँगा? तुम मुझसे दान माँगने आई हो। लेकिन क्या पुत्र ही दानी होगा? माता को भी अपने बेटों को कुछ दान देना चाहिए, इसलिए हे माँ, मैं कर्ण तुमसे अपने-आप को ही माँग रहा हूँ; अर्थात् तुम मुझे अपने साथ ले जाने का हठ मत करो। तुम मुझे एक कर्ण दो, बदले में मैं तुम्हें चार कर्ण अर्थात् अर्जुन को छोड़कर बाकी चारों बेटों की रक्षा का वचन देता हूँ। इतना सुनकर कुन्ती कहने लगी– 'रे हठी कर्ण। यह तूने आखिर मुझे क्या दिया? मैं तो पाँच पाण्डवों की ही नहीं, बल्कि तुझे मिला कर छः की माँ बचने के लिए आई थी। लेकिन विधाता वाम ही रहा। कुन्ती की बात सुनकर कर्ण कहने लगा– माँ, तुम यह चार और छः बेटों की बात भूल जाओ। तुम्हारे पाँच बेटे हैं और वे पाँच ही रहेंगे; अर्थात् अर्जुन के न रहने पर पाँचवा मैं हो जाऊँगा– इस बात को निश्चित मानकर तुम मन में प्रसन्न होकर यहाँ से जाओ। अब तो रण ठन चुका है व्यर्थ की चिन्तायें ने करो। कल का प्रभात आने दो। इतना कह कर कर्ण ने माता कुन्ती के पाँव छुए और चुप हो गया। उसकी आँखों से टपककर आँसुओं की दो बूँदें धरती पर गिर पड़ीं। अत्यधिक दुःख के साथ अपने बेटे का माथा चूमकर, मुख से एक भी और शब्द कहे बिना कुन्ती वापस लौट पड़ी।

भीष्म-कर्ण-संवाद

भीष्म-कर्ण-संवाद रश्मिरथी के छठे सर्ग में मिलता है। महाभारत के युद्ध में दस दिन तक युद्ध करने के बाद भीष्म घायल होकर गिर पड़े। तब कर्ण उनसे युद्ध करने की आज्ञा लेने पहुँचा। क्योंकि कर्ण हमेशा दुर्योधन की ही बात माना करता था, इसलिए भीष्म पितामह उससे चिढ़ते थे। इसी कारण एक दिन भीष्म पितामह ने कर्ण को अर्धरथी (आधावीर) कह दिया। इस बात से चिढ़कर कर्ण ने प्रतिज्ञा की कि 'जब तक भीष्म पितामह, जो अपने को महारथी मानते हैं 'युद्ध करेंगे, मैं नहीं लड़ूँगा। या तो वे ही मैदान में रहेंगे, या फिर मैं ही।' भीष्म पितामह को धराशायी देखकर कर्ण वयोवृद्ध पितामह से आशीर्वाद लेने गया। उनके चरण छूकर कर्ण ने सरल वाणी से कहा– 'हे पूज्य! नीची जाति का और कलंकित समझे जाने के कारण मैं आपका स्नेह तथा उत्साह नहीं पा सका। फिर भी आपको अपने आँसुओं की भेंट देने के लिए मैं आप की सेवा की सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। यदि आप आज्ञा दें तो अब मैं भी धनुष धारण करके युद्ध-भूमि में जाकर कुछ कर दिखाऊँ। मैं आज आपके चरणों की धूलि अपने सिर पर चढ़ाकर अपने समस्त अहंकार तथा मोह का त्याग कर देना चाहता हूँ। अतः मुझे क्षमा करें।

कर्ण की नम्रता-भरी बातों से प्रभावित हो उसे खींचकर हृदय से लगाये हुए भीष्म पितामह कहने लगे– मैं प्रत्येक क्षण दुर्योधन को युद्ध करने से रोकने का प्रयत्न करता रहा। परन्तु दुर्योधन ने मेरी एक न सुनी। अब भीषण संहार मचा है। चारों ओर लोग हाहाकार कर रहे हैं। हे बेटा कर्ण! यदि तुम्हारा दुर्योधन पर कुछ भी वंश चल सके, तो युद्ध बन्द करवा कर नये और महान् यश के भागी बनो।

भीष्म पितामह की बात सुनकर उपस्थित परिस्थितियों में युद्ध को आवश्यक बताते हुए कर्ण कहने लगा– 'युद्ध के सिवाय अब और कोई भी रास्ता बाकी नहीं रह गया। यह जीवन अब तो समुद्र के बीच में फँसे हुए जहाज के समान है। यदि इस पार रहे अर्थात् जीत गए तो हमेशा के लिए शान्ति हो जायेगी। इसके विपरीत यदि उस पार उतर गए अर्थात् जिस किसी पक्ष का संहार हो गया, फिर भी शान्ति की आशा की जा सकती है। ऐसी दशा में अब कोई नया निश्चय करना भला कहाँ उचित होगा! अब आशीर्वाद दें कि मैं विजयी होकर फिर आपके चरणों का दर्शन कर सकूँ।' कर्ण की लड़ने की इच्छा देखकर उसके प्रति अपनी शुभ कामनाएँ प्रकट करते हुए भीष्म बोल उठे– 'हे श्रेष्ठ वीर कर्ण! तब जैसे तुम्हारा जी चाहे और जो भी अच्छा लगे, वही कार्य करो। जाओ, युद्ध भूमि में लड़कर अपनी वीरता और अपना नाम अमर करो।'' कर्ण पहले भीष्म पितामह के चरणों की वन्दना और फिर आकाश पर उग आये सूर्य देवता को नमस्कार करके, युद्धभूमि की तरफ चल दिया। भीष्म शर-शय्या पर युद्ध-चिन्ता में भस्म होते रहे।

निष्कर्ष – अतः यह कहा जा सकता है कि रश्मिरथी में संवादों का इतना अधिक महत्त्व है कि यदि पुस्तक से इन संवादों को निकाल दिया जाय तो इसका महत्त्व ही घट जाएगा। काव्य और नाटकीयता इन संवादों में एक घने आलिंगन में एकाकार हैं। आकार में बड़े संवादों में भी रसात्मकता का अभाव नहीं होने पाया है। अतः हम कह सकते हैं कि संवाद ही 'रश्मिरथी' के प्राण हैं।

8. उद्देश्य और सन्देश

कवि अपने युग के समाज से अनुभूतियाँ ग्रहण करता है और उन अनुभूतियों को अपने मनोभावों और विचारों के अनुकूल बनाकर साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करता है। जहाँ तक 'दिनकर' का प्रश्न है, उसके काव्य में युग-धर्म के अनुकूल कोई

न कोई समस्या प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अवश्य होती है। उनका कहना है कि "मनुष्य व्यक्तिवादी प्राणी है और निरुद्देश्य इसकी जीभ नहीं खुलनी चाहिए।" अंतः इसकी प्रत्येक काव्य रचना सोद्देश्य है।

'रश्मिरथी' काव्य की कथा का मुख्याधार 'महाभारत' है। कथावस्तु का आधार पौराणिक होते हुए भी 'रश्मिरथी' की सृजन-प्रेरणा नितांत नवीन और युगीन है। आज के युग में जाति एवं कुल का दर्प व्यक्ति एवं समाज के विकास में बाधक है, जिसे दूर करना आवश्यक है। वस्तुतः इतिहास के ऐसे आख्यान और चरित्र प्रस्तुत करने अनिवार्य हैं, जिनसे मानवीय गुणों की महत्ता की स्वीकृति मिलें 'रश्मिरथी' काव्य के सृजन की मूल प्रेरणा में यही विचारधारा कार्यरत रही है। दिनकर जी ने 'रश्मिरथी' की भूमिका में लिखा है– "हमारे समाज में मानवीय गुणों की पहचान बढ़ने वाली है। कुल और जाति का अहंकार विदा हो रहा है। आगे मनुष्य केवल उसी पद का अधिकारी होगा जो उसके सामर्थ्य से सूचित होता है, उस पद का नहीं, जो उसके माता-पिता या वंश की देन है। इसी प्रकार, व्यक्ति अपने निजी गुणों के कारण जिस पद का अधिकारी है, वह उसे मिलकर रहेगा। यहाँ तक कि उसके माता-पिता के दोष भी इसमें बाधा नहीं डाल सकेंगे। **कर्ण चरित्र का उद्धार एक तरह से, नई मानवता की स्थापना का ही प्रयास है।**"

अतएव 'रश्मिरथी' में कवि का प्रमुख उद्देश्य कर्ण के चरित्र के माध्यम से मानवता के महान् गुणों पर प्रकाश डालना ही रहा है। इस काव्य के प्रथम सर्ग में ही कवि ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है:–

'जय हो', जग में जले जहाँ भी, नमन पुनीत अनल को,
जिस नर में भी बसे, हमारा नमन तेज को, बल को।
किसी वृन्त पर खिले विपिन में, पर, नमस्य है फूल,
सुधी खोजते नहीं गुणों का आदि, शक्ति का मूल।"

कवि अपने जीवनादर्श के उन मूल्यों को प्रतिष्ठित कर रहा है, जो नये भारतीय समाज के निर्माण के लिए अनिवार्य हैं। उसके विचारों में, हमें गुण की पहचान और आदर करना चाहिए, जाति का नहीं। दरिद्र से दरिद्र परिवार में जन्मे प्रतिभाशाली लोगों को सम्मान मिलना चाहिए। गुण की पहचान करने वाले लोग गुणों का आदि, शक्ति का मूल नहीं ढूँढ़ा करते। कवि कथन है:–

ऊँच-नीच का भेद न माने, वही श्रेष्ठ ज्ञानी है,
दया-धर्म जिसमें हो, सबसे वही पूज्य प्राणी है।

कवि ने **जातिवाद को एक अभिशाप के रूप में चित्रित किया है।** हमारे समाज की सबसे बड़ी विशिष्टता जाति-प्रथा मानी जाती रही है। भारतीय इतिहास के जिस काल में जातियों का आविर्भाव हुआ, उस समय ये सभी जातियाँ कर्म पर आधारित थीं। कर्म के अनुसार जातियों का बँटवारा किया गया था। उस बँटवारे के मूल में सामाजिक संगठन के आर्थिक–राजनीतिक कारण मौजूद थे। इन्हीं कारणों के परिणामस्वरूप जातिप्रथम की जनविरोधी रूढ़ियों का विकास हुआ। आज बात यहाँ तक पहुँच गई है कि आदमी गुण से नहीं, बल्कि जाति से पहचाना जाता है।

भारतवर्ष में वर्ग-विरोध जब भी तीखे रूप में अभिव्यक्त होने लगता है तब शासक वर्ग और उसके दुमछल्ले जातिप्रथा का बहुत तेजी से इस्तेमाल करने लगते हैं और वर्ग-विरोध को दबा देते हैं। कवि जातिप्रथा के इस असली मनुष्यभक्षी चेहरे को पहचानता है। जिस तरह अमेरिका में काले-गोरे का भेदभाव है, उसी तरह हमारे समाज में भी छूत-अछूत की समस्या सदियों से मौजूद रही है। हमारे सांस्कृतिक इतिहास का इतना बड़ा पाखंड किस प्रकार बढ़ता चला जा रहा है, इसे आज का प्रत्येक बुद्धिजीवी अच्छी तरह समझता है।

कवि दिनकर 'रश्मिरथी' के माध्यम से इसी पाखंड से जूझे हैं। गुरु कृपाचार्य कर्ण से उसकी जाति पूछते हैं। अस्त्र-विद्या के इतने बड़े पंडित भला जाति न पूछेंगे तो क्या शौर्य या पराक्रम देखेंगे। हाँ तो वे कर्ण को लज्जित करने के उद्देश्य से उसका मूल जानना चाहते हैं। कर्ण निर्विकार कहता है–

जाति-जाति रटते, जिनकी पूँजी केवल पाखंड,
मैं क्या जानूं जाति, जाति हैं ये मेरे भुजदंड।

दुर्योधन कर्ण की इस मान्यता का समर्थन करता है। जाति–प्रथा की व्यर्थता हुए वह भी अपना प्रबल तर्क रखता है–

मूल जानना बड़ा कठिन है, नदियों का वीरों का,
धनुष छोड़कर और गौत्र क्या होता है रणधीरों का।

कवि ने जातिप्रथा की बुराईयों के प्रसंग में कर्ण द्वारा द्रोणाचार्य की तीव्र भर्त्सना करवाई है। एकलव्य से अँगूठे का दान माँगने वाला व्यक्ति जाति की उच्चता की बात करने का क्या अधिकारी है? द्रोणाचार्य जैसे लोग 'अधर्ममय' शोषण के बल से सुख में पलते हैं।'

परन्तु कर्ण के जीवन में भी अत्यन्त विषाद के क्षण आते हैं, जब यह गहरी उदासी और खीज के साथ कहता है–

हाय कर्ण तू क्यों जन्मा था? जन्मा तो क्यों वीर हुआ,
कवच और कुण्डल भूषित भी तेरा अधम शरीर हुआ।

जाति-प्रथा के उन्मूलन के बिना भारत की प्रतिभाएँ इसी तरह नष्ट होती रहेंगी और कर्ण जैसा वीर व्यक्ति भी 'धँस जाये यह देश अतल में' जैसी खिन्न मनोदशा मे ग्रस्त हो जायेगा। **अतः यह संदेश देना भी कवि का उद्देश्य रहा है कि जाति प्रथा का, इस सड़ी-गली प्रणाली का सदा के लिए अन्त हो जाना चाहिए।** आज युग दलितों और उपेक्षियों के उद्धार का युग है। प्राचीन रूढ़िग्रस्तता अब मिटनी ही चाहिए।

स्वर समाज के निर्माण में एक और अवरोधक शक्ति की ओर भी कवि ने संकेत किया है और वह है नारी की पराधीनता। नारी आधुनिक युग की समस्या बन गई है। उसके उद्धार के लिए कई आन्दोलन कियो जा रहे हैं, किन्तु व्यवहार में नृशंस पुरुष समाज इसके विपरीत आचरण करता है। दिनकर जी ने अपनी प्रत्येक काव्य कृति में नारी के शोषण पर प्रकाश डाला है। 'रश्मिरथी' में कवि ने कुन्ती को दलित नारियों का प्रतिनिधि बनाया है। कुन्ती के कंठ से आज की उपेक्षित नारियों का स्वर मुखर हो उठा है। कुन्ती कहती है–

''बेटा धरती पर बड़ी दीन है नारी,
अबला होती सचमुच योषिता कुमारी।
है कठिन बन्द करना समाज के मुख को,
सिर उठा न पा सकती पविता निज सुख को।।''

कवि ने कर्ण के मुख से भी नारी के प्रति किये जाने वाले अत्याचारों के लिए प्रायश्चित करवाया है–

''वधूजन को नहीं रक्षण दिया क्यों?
समर्थन पाप का उस दिन किया क्यों?

स्पष्ट है, युग-युगों से पीड़ित नारी के अधिकार के प्रश्न को उठाना भी कवि का उद्देश्य रहा है।

मानव के परिश्रम और पुरुषार्थ के भाव को जगाना भी कवि का एक उद्देश्य रहा है। कर्ण के चरित्र के द्वारा कवि पुरुषार्थ का महत्त्व प्रतिपादित करता है। दिव्य कवच-कुण्डल और ब्रह्मास्त्र से वंचित कर्ण पुरुषार्थी की भूमिका निभाने के लिए उपयुक्त पात्र बन जाता है। ''दैवायत्तं कुले जन्म, मदायत्तंतु पौरुषम्'' महाभारत के कर्ण का ही उद्घोष नहीं, 'रश्मिरथी' के कर्ण का भी उद्घोष है।

कर्ण को अपने पराक्रम, शौर्य और पुरुषार्थ में अडिग विश्वास है। वह कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी अविचलित रहता है। कर्ण की गर्वोक्तियों के पीछे दंभ नहीं, आत्मबल है। इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए कवि दिनकर ने प्रारम्भ में ही कहा है–

तेजस्वी सम्मान खोजते नहीं गोत्र बतला के,
पाते हैं जग से प्रशस्ति अपना करतब दिखला के।

दिनकर भाग्यवादी नहीं हैं, कर्ण भी भाग्यवादी नहीं है। वह भाग्य या नियति को अपने भविष्य का नियामक नहीं मानता। वह तो पुरुषार्थ को ही जीवन क्रम का नियामक तत्त्व मानता है। कर्ण की निम्न उद्धत उक्ति में इसी विश्वास की व्यंजना हुई है–

वह करतब है यह कि शूर जो चाहे कर सकता है।
नियति-भाल पर पुरुष पाँव निज बल से धर सकता

कर्ण स्पष्ट शब्दों में कहता है–

कुल गोत्र नहीं साधन मेरा,
पुरुषार्थ एक बस धन मेरा।

इतिहास के चरितनायकों पर प्रबन्ध लिखते हुए भी कवि मध्यकाल के अनेक अन्धविश्वासों पर प्रहार करने में सफल हुआ है इसीलिए भाग्य तथा पुरुषार्थ में से कवि पुरुषार्थ को ही चुनता है।

मानवता का कल्याण युद्ध से नहीं शान्ति से हो सकता है। दिनकर युद्ध के विरुद्ध है। साथ ही वे यह भी मानते हैं कि कई बार, सत्य, न्याय और मानव के अधिकारों की रक्षा के लिए युद्ध करना आवश्यक भी हो जाता है। युद्ध की भयानकता और उसके दुष्परिणामों को चित्रित करके कवि ने उसक विरुद्ध आवाज दी है। शर-शय्या पर लेटे हुए भीष्म पितामह युद्ध का विरोध करते हुए कहते हैं–

मानवता ही मिट जायेगी,
फिर विजय सिद्धि क्या लायेगी।

मानवीय गुणों का विकास तभी सम्भव है जब मनुष्य प्रेम से रहे।

वर्तमान युग में अखंड मानवता के लिए युद्ध की नहीं धर्म की आवश्यकता है। धर्म शासन की शुद्धता को देखता है, युद्ध सिद्धि की प्राप्ति का प्रयास करता है। 'रश्मिरथी' में कवि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि कोई भी युद्ध मंगलकारी नहीं हो सकता–

फूटता द्रोह-दव का पावक, हो जाता सकल समाज नरक,
सबका वैभव सबका सुहाग, जाती डकार यह कुटिल आग।

'रश्मिरथी' का नायक कर्ण स्वयं धर्म का प्रतीक बनकर आया है। कर्ण का यह उद्देश्य विश्व का महामन्त्र है–

डिगाना धर्म क्या इस चार बितों की मही को।
भुलाना क्या मरण के पार वाली जिन्दगी को।

परशुराम के प्रति कर्ण की श्रद्धा के द्वारा कवि ने अनन्य गुरुभक्ति का आदर्श प्रस्तुत किया है। यह आदर्श पाठकों को अतिरंजित प्रतीत हो सकता है, पर इस अतिरंजना के बावजूद कवि कर्ण की गुरुभक्ति का जो संदेश देना चाहता है, उसकी अभिव्यक्ति बड़ी मार्मिक बन पड़ी है। परशुराम जैसे क्रोधी और भयंकर उन्मादी गुरु का ह्रदय भी वह जीत गया, इसका उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कवि ने कर्ण की साधना का एक महत्तर रूप दर्शाने की चेष्टा की है। परशुराम ने स्वयं कहा है–

किसी और पर नहीं किया, वैसा स्नेह मैं करता था,
सोने पर भी धनुर्वेद का ज्ञान कान में भरता था,
नहीं किया कार्पण्य, दिया जो कुछ था मेरे पास रतन,
तुझ में निज को सौंप शान्त हो, अभी अभी प्रमुदित था मन।

गुरु, चाहे वह किसी भी युग में जन्मा हो– सुपात्र शिष्य को पाकर उसके लिए कुछ भी अदेय नहीं छोड़ता। ज्ञान-प्राप्ति के लिए विनय, लगन और श्रद्धा आवश्यक है। कर्ण-परशुराम-प्रसंग से कवि इस संदेश को व्यक्त करना चाहता है।

कर्ण महाभारत की कथा का एक मांत्र दानवीर है। उसकी दानवीरता उसके चरित्र का वह गुण है, जिसे कोई भी प्राप्त नहीं कर पाया। उसकी दानवीरता का अनुचित लाभ उठाया जाता है, पर दानशीलता का अपना व्रत वह कभी नहीं तजता। ब्राह्मणवेशी इन्द्र ने कर्ण से कवच-कुण्डल दानस्वरूप माँग लिए। कुन्ती को चार पुत्रों को न मारने का वचन दान-रूप में मिल गया। उस भीम तक की भी कर्ण ने हत्या नहीं की जिसने उसे 'घोड़े की पूँछ झाड़ने वाला' कहा था। उसके चरित्र के इस उज्जवल पक्ष पर प्रकाश डालते हुए कवि कहता है–

मेघ भले लौटे उदास हो किसी रोज सागर से,
याचक फिर सकते निराश पर, नहीं कर्ण के घर से।

कर्ण अपने को 'विपन्न का सखा' समझता है। और दान को वह भिक्षादान नही समझता। दान की उसकी अपनी धारणा है।

अरे कौन है भिक्षु यहाँ पर? और कौन दाता है।
अपना ही अधिकार मनुज नाना विधि से पाता है।

सच्चा दान वही है जो पाने वाले और देने वाले दोनों को उठावे।

कर्ण के चरित्र के द्वारा कवि ने दृढ़ मैत्री का आदर्श भी उपस्थित किया है। कृतज्ञता के वशीभूत कर्ण अनीति का समर्थक तक बन जाता है। रंगभूमि में दुर्योधन ने कर्ण से सिर पर मुकुट रखा, उसे अंगदेश का अधिपति बनाया और अपमान से उसे उबारा। कर्ण उसके इस उपकार को भूलना नहीं चाहता। वह दुर्योधन से कहता है–

वीर बन्धु? हम हुए आज से एक प्राण दो देह।
+ + +
भरी सभा के बीच आज तूने जो मान दिया है।
पहले पहल मुझे जीवन में जो उत्थान दिया है।
उऋण भला होऊँगा उससे चुका कौन सा दान।
कृपा करें दिनमान कि आऊँ तेरे कोई काम।''

कुन्ती और कृष्ण ने जब ज्येष्ठ भाई होने की वजह से उसको राज्य का प्रलोभन दिया तब कर्ण कहता है–

तज उसे भाग यदि जाऊँगा,
कायर कृतध्न कहलाऊँगा।

फिर मित्रता के संबंध में वह अपनी दृढ़ता व्यक्त करता है।

मित्रता बड़ा अनमोल रतन,
कब इसे तोल सकता धन,

इस प्रकार 'रश्मिरथी' के माध्यम से कवि दिनकर ने अपने विभिन्न आदर्शों को अभिव्यक्त किया है। कवि के ये आदर्श कर्ण के जीवन-मूल के रूप में चरितार्थ हुए हैं, इसलिए इनकी महत्ता है।

प्रबन्ध-रचना के पीछे दिनकर का यही उद्देश्य रहा है कि वे कथा के विभिन्न घटना-प्रसंगों के द्वारा पाठकों को कुछ सन्देश दे सकें– ऐसे सन्देश, जो आज के जीवन को भी छूते हों।

9. शब्दार्थ एवं व्याख्या (प्रथम सर्ग)

शब्दार्थ (पृष्ठ 1-9)

पृष्ठ 1:– नमन= नमस्कार। पुनीत=पवित्र। अनल=अग्नि। वृन्त=डाली। विपिन=वन, जंगल। नमस्य=नमस्कार करने योग्य। सुधी=बुद्धिमान मनुष्य। आदि=आरम्भ। मूल=जड़ या कारण। पूज्य=आदर के योग्य। प्राणी=जीव। निर्भयता=निडरता। तेजस्वी=गुणवान। सम्मान=आदर। गोत्र=जाति-वंश आदि। प्रशस्ति=प्रशंसा। करबत=महान कार्य। हीन मूल=छोटी जाति। इतिहासों में लीक खींचना=नया इतिहास बनाना। पहला=झूला। पिटारी=सन्दूकची। सूतवंश=रथ वालों का खानदान। जननि=माता। क्षीर=दूध।

पृष्ठ 2:– समरशूर=युद्ध में वीरता दिखाने वाला। पौरुष=शक्ति। शास्त्रास्त्र=अस्त्र-शस्त्र। शास्त्र=सब प्रकार की विधाएँ। सम्यक्=अच्छी प्रकार। सुविकास=अच्छी उन्नति। कोलाहल=शोर। पुरी=नगरी। पुरजन=नगरों के निवासी। साधना=तपस्या। उद्योगी=परिश्रमी। निरत=लग हुआ। कर्मठता=कर्मशीलता। वन्य कुसुम सा=जंगली फूल के समान। मात्र=केवल। अमितवार=अनेक बार। पुर से=नगर से। कुंज कानन में=जंगल के झुरमुटों में। जलद-पटल=बादल रूपी पर्दा। रवि=सूर्य। अवहेलना=अनादर। शूरसा=शूरवीर। समक्ष=सामने। रंगभूमि=परीक्षा और शस्त्र-विद्या के दर्शन का स्थान। समाँ अनोखा बांधे=वीरता से प्रभावित करता हुआ। शरासन साधे=धनुष पर बाण चढ़ाये हुए। स्तब्ध=मौन।

पृष्ठ 3:– फूले=प्रसन्न। कलाएँ रण की=युद्ध के जौहर। स्तब्ध=धक से रह जाना, स्थिर। आँखें टंगी=आँखें फाड़कर। जन-जन की=प्रत्येक व्यक्ति की। चतुर्दिक=चारों दिखाएँ। जन का पारावार=लोगों का समूह। धन्वा=धनुष। टंकार=आवाज। फिरा=घूमा। विपद=मुसीबत। सुयोधन=दुर्योधन। द्वन्द्व-युद्ध=जिस युद्ध में केवल दो आदमी ही आपस में लड़ते हैं।

कृपः–

कृप अथवा कृपाचार्य कौरवों को धनुर्वेद की शिक्षा देने वाले गुरु थे। ये प्रसिद्ध तपस्वी शरद्वत् के पुत्र थे। शरद्वत् जब महान् तपस्या कर रहे थे तब इन्द्र ने उनकी तपस्या भंग करने के लिए जलपदी नामक अप्सरा को भेजा था। इससे उन्हें एक पुत्र और एक कन्या उपन्न हुई। राजा शांतनु उधर शिकार खेलने गये तो उस पुत्र और कन्या को उठा लाये और उनका कृपापूर्वक पालन किया। इसलिए उस पुत्र का नाम कृप और कन्या का नाम कृपी रखा। कृपी का विवाह द्रोणाचार्य से हुआ था। द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा इसी कृपी का पुत्र था। कृपाचार्य ने द्रोणाचार्य को कौरवों के यहाँ विद्या सिखाने के लिए रखने में प्रयत्न किया था। कृपाचार्य सत्यपथ के समर्थक थे इसलिए कौरव और कर्ण आदि की तुलना में वे पाण्डवों की प्रशंसा करते रहते थे।

भरतवंश=भरत, दुष्यन्त और शकुन्तला का पुत्र था। उसी वंश में संवरण नाम के राजा हुए जिन्होंने भरतवंश का यशोविस्तार किया था। सवंरण के ही पुत्र कुरु थे, जो कौरवों और पाण्डवों के पूर्व पुरुष हुए हैं।

पृष्ठ 4:– क्षोभ से=घृणा और क्रोध से। पाषंड=पाखण्ड। भुजदण्ड=बाँहें। कनक क्षत्र=सोने का छत्र। सूतपुत्र=सूत का बेटा। पार्थ=अर्जुन। ग्लानि=घृणा और लज्जा। मस्तक=माथा। अधर्ममय=धर्म से रहित। शोषण=दूसरों का अधिकार छीनना। अधम =नीच। भुजबल=बाहों की शक्ति। दीप्ति=चमकते हुए। ललाट=मस्तक। कवच=शरीर पर पहना जाने वाला लोहे का वस्त्र। कुण्डल=कर्णाभूषण। अंकित=लिखा हुआ। क्षत्रियत्व=क्षत्रिय के गुण। कर से=हाथों से। महाजाति=वीरजाति। वृथा=बेकार।

पृष्ठ 5:– अकाज=बुरा कार्य। अर्जित करना=प्राप्त करना। हतप्रभ=निस्तेज। भरमाया=भ्रम या दुविधा में पड़ गया। दीप रहा हो=चमक रहा हो। रणधीर=युद्ध में धैर्य रखने वाला। तपोबल=तपस्या की शक्ति। भूतल=धरती। शूर=वीर। क्रूर=पाखण्डी। अनायास=अचानक। आतंक=दबदबा, प्रभाव। सूतपुत्र=रथवान का बेटा। श्वपच=भंगी का बेटा। मलिन=तुच्छ। अनमोल=कीमती। विभूति=सम्पति। सकल=सारा। अंगदेश=गंगा नदी के दाहिने तट पर अवस्थित प्राचीन राज्य। कहते हैं, यह वह भू-भाग था जो अब बिहार राज्य का भागलपुर और मुंगेर जिला कहलाता है।

पृष्ठ 6:– मस्तक=सिर। महावीर=महान् वीर। के हित=के लिए। अर्पित=भेंट। चकित=हैरान। परम=श्रेष्ठ। कृतज्ञता=किये गये उपकार को मानना। क्षुद्रोपहार=साधारण भेंट। उद्भ्रान्त=चकित। गल गया=स्नेह से भर गया। उत्थान=उन्नति। उऋण= कर्ज से छुटकारा। दिनमान=सूर्य। मुदित=प्रसन्न। पुरवासी=नगर के निवासी। शूरता पूजन=वीरता की पूजा। अभिलाषी=इच्छुक। मिथ्या अभिमानी=झूठा घमंड करने वाला। आराध्य=पूज्य।

पृष्ठ 7:–कुंकुम रोली। चतुर्दिक=चारों ओर। पुलकाकुल=रोमांचित। कलकल=मधुर ध्वनि। विनयपूर्ण=नम्रतापूर्वक। प्रतिवन्दन=नमस्कार का प्रत्युत्तर। सविशेष=विशेष रूप से। विकल=व्याकुल। अंगेश=अंग देश का राजा। विफल=व्यर्थ। हय=घोड़ा। धर्मज्ञ=धर्म को जानने वाला। धाम=घर। रहस्य=भेद। अवगुण=बुराइयाँ। भाल=माथा। हया=लज्जा।

पृष्ठ 8:– पुरवासी=नगरवासी। मोद=आनन्द। प्रतिबल=मुकाबला कर सकने वाला, प्रतिद्वन्द्वी। कढ़ी=निकली। निष्कण्टक=बेरोक-टोक। चरम वीरता=महान् वीरता। निष्कंटक=निर्विघ्न। उद्भट=महान् वीर। भट=योद्धा। बाल=बालक। प्रचण्डतम=महाभयानक। धूमकेतु=पुच्छल तारा। विकट=अद्भुत। हे तात=हे पुत्र। कंचन=सोना। युग=दो। शैल-शिखर-सम=पहाड़ की चोटियों के समान। सुगठित=अच्छी प्रकार से गठा हुआ। सुघड़=सुडौल। सुवर्ण=गोरे। गलबांही दे=गले में बाँहें डालकर। कंचन के युग.... कर्ण=गले में बाँहें डालकर जाते हुए दुर्योधन और कर्ण ऐसे लग रहे थे जैसे कि गठीले, सुन्दर पर्वत की दो सुनहली चोटियाँ हों अर्थात् कर्ण और दुर्योधन दोनों के शरीर सुडौल थे।

पृष्ठ 9:– तृप्ति=सन्तोष। शीतल=ठण्डे। अस्ताचल=जहाँ सूर्य अस्त होता है। स्निग्ध=स्नेह भरी। सुकोमल कर=नर्म किरणें। दिवस=दिन। समय सिद्ध=निश्चित समय पर। अवसन=अस्त होना। विरम गया=रुक गया। क्षितिज=आकाश। गति=चाल। विमान=रथ। रनिवास=महल का वह हिस्सा जिसमें रानियाँ रहती हैं। विकला=व्याकुल होती हुई। मसोसती मन को=मन को मारती हुई।

कठिन स्थलों की व्याख्या (पृष्ठ 1-8)

जय हो जग में ..... शक्ति का मूल (पृष्ठ 1)

प्रसंग : प्रस्तुत अवतरण महाकवि दिनकर रचित 'रश्मिरथी' के 'प्रथम सर्ग' से उद्धृत है। इसे हम पुस्तक का मंगलाचरण भी कह सकते हैं, किन्तु यहाँ कवि ने परम्परानुसार देव-स्तुति न करके संसार के गुणशाली व्यक्तियों के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित की है।

व्याख्या : कवि कहता है कि संसार में जिस व्यक्ति में अच्छे गुण हों, प्रतिभा हो, वह पूज्यनीय है। अग्नि के समान तेज और बल जिस व्यक्ति में भी रहता है, वही व्यक्ति पूजा करने योग्य है। फूल चाहे वन में किसी भी डाली पर खिला हो वह अपनी सुन्दरता और सुगन्ध के कारण आदरणीय होता है। जिस प्रकार फूल के महत्त्व को जानने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि किस डाली पर खिला है, उसी प्रकार व्यक्ति-मूल को ढूँढ़ना भी आवश्यक नहीं है। जो विद्वान हैं, तत्त्वदर्शी हैं– वे व्यक्ति की शक्ति की ही आदर तथा प्रशंसा करते हैं।

टिप्पणी – प्रस्तुत पंक्तियों में महाभारत के एक प्रमुख पात्र कर्ण की वीरता और गुणों की ओर संकेत किया गया है। कर्ण का लालन-पालन एक सारथी के घर हुआ था, किन्तु उसमें उच्च मानवीय गुण कूट-कूट कर भरे थे। फिर भी कर्ण को समाज में जो सम्मान मिलना चाहिए था, वह न मिला। यहाँ कवि ने ऐसे व्यक्तियों का बिना किसी भेदभाव के आदर करने का सन्देश दिया है।

'किसी वृन्त.....मूल' में दृष्टान्त अलंकार है।

जलद-पटल.....**पहली आग (पृष्ठ 2)**

प्रसंग–मनुष्य की कर्मनिष्ठा व्यक्ति को अपने सद्‌गुणों के आधार पर निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाने में किस प्रकार सफल होती है, कवि ने इस तथ्य को इन पंक्तियों में बड़े सुन्दर रूप से व्यक्त किया है।

व्याख्या:– कर्मनिष्ठ व्यक्ति सूर्य के समान है। जिस प्रकार सूर्य बादलों की ओट में अधिक देर तक नहीं रह सकता, उसी प्रकार शूरवीर भी युग की अवहेलना को अधिक देर तक सहन नहीं कर सकता। समय पाकर शूरवीर के हृदय में वीरता की आग फिर से चमक उठती है।

यहाँ कवि ने शूरता का प्रतिनिधि कर्ण को माना है। गुरु ने कर्ण का तिरस्कार किया था। उसी गर्व के मूल को ही कुचल देने की कर्ण ने मन ही मन प्रतिज्ञा कर ली थी। समय आने पर विराट् जन-समूह के बीच अर्जुन से भी अपने को अधिक योग्य सिद्ध करके उसने गुरु द्रोण का उपहास किया था। उसने सिद्ध कर दिया कि कुल-गौरव से औद्योगिक गौरव श्रेष्ठ है अर्थात् भाग्य से कर्म का स्थान ऊँचा है।

विशेष– यहाँ 'जलद-पटल' में रूपक अलंकार है।

जाति! हाय.....भुजदण्ड (पृष्ठ 4)

प्रसंग : कर्ण ने जब अर्जुन को द्वन्द्व-युद्ध के लिए ललकारा तो कृपाचार्य के माध्यम से उसे यह कह कर हतोत्साहित किया गया कि पहले वह अपनी जाति के विषय में बताये। कर्ण के उस समय के उद्‌गार प्रस्तुत पंक्तियों में दृष्टव्य हैं।

व्याख्या– कर्ण से जब उसकी जाति पूछी गई तो उसका हृदय क्षोभ से भर उठा। वह कृपाचार्य की ओर क्रोध से देखकर कहने लगा कि जाति-जाति केवल वही कायर पुरुष रटते हैं, जिनके पास भुजबल नहीं है– कायरता ही जिनकी एकमात्र पूंजी है। कर्ण दावे के साथ कहता है कि वह अपनी जाति के विषय में कुछ नहीं जानता, उसकी जाति तो उसकी भुजाओं में सुरक्षित है।

विशेष–यहाँ कवि ने जातीय संकीर्णता पर सशक्त प्रहार करते हुए जन्म से जाति मानने के विचार की धज्जियाँ उड़ायी हैं। जाति-जाति में पुनरुक्ति अलंकार है यहाँ 'जाति' शब्द का एक ही अर्थ में दो बार प्रयोग, भाव की गम्भीरता को प्रकट करने के लिए किया गया है।

सूत पूत्र हूँ मैं.....पिता पार्थ के कौन-(पृष्ठ 4)

अर्थ– कर्ण व्यंग्यपूर्वक पूछता है कि यदि मैं सारथी का पुत्र हूँ, तो अर्जुन के पिता कौन हैं? महाभारत में आयी एक कथा के अनुसार अर्जुन इन्द्र के पुत्र थे। कुन्ती ने अपने पति की आज्ञा से इन्द्र से अर्जुन को पुत्र रूप में प्राप्त किया था क्योंकि उसके पति पाण्डु सन्तान पैदा करने योग्य नहीं थे। कर्ण को भी कुन्ती ने कुमारी अवस्था में जन्म दिया था। कुमारी कुन्ती समाज की दृष्टि में अपनीं लाज रखना चाहती थी। इसलिए उसने शिशु को नदी की धारा में बहा दिया। संयोगवश अधिरथ नामक सूत को वह पिटारी मिली जिसमें कर्ण था। अतः उसका लालन-पालन सूत वंश में हुआ। वास्तव में कर्ण और अर्जुन भाई ही थे पर इस रहस्य को कुन्ती के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता था।

मस्तक ऊँचा.....का दान (पृष्ठ 4)

प्रसंग– जाति-पाँति में अवस्था रखने वालों को दूसरों का शोषक और कपटी बताते हुए कर्ण कृपाचार्य से कह रहे हैं–

व्याख्या– मनुष्य ऊँची जाति में जन्म ले लेने से ही ऊँचा नहीं बन जाता। जाति-पाँति में विश्वास रखने वाले मनुष्य अन्याय और अधर्म के बल पर दूसरों के अधिकार छीन कर स्वयं सुख से जीवन व्यतीत करते हैं। नीची जाति में यदि कोई व्यक्ति ऊँची जाति वालों के समान गुणवान पैदा हो जाता है तो ऊँची जाति वालों के प्राण थर-थर कांपने लगते हैं। स्वयं को ऊँचा दिखाने के लिए वह निम्न जाति के लोगों से नीचता का व्यवहार करते हैं। तभी तो द्रोणाचार्य ने भील जाति के एक वीर बालक एकलव्य का अँगूठा कटवा लिया था।

टिप्पणी–एकलव्य एक वीर भील बालक था। गुरु द्रोणाचार्य ने उसे नीचा समझकर शस्त्र-विद्या सिखाने से इंकार कर दिया था। एकलव्य ने गुरु की मूर्ति से आदेश लेकर शस्त्र-विद्या का अभ्यास किया था। परिणामतः एकलव्य अर्जुन से भी बढ़कर निपुण हो गया। अपनी ऊँची जाति के झूठे गौरव की रक्षा करने के लिए द्रोणाचार्य ने एकलव्य से गुरु-दक्षिणा के रूप में उसका दांया अँगूठा लिया था, ताकि अर्जुन से प्रतियोगिता करने वाला कोई न रहे। यहाँ कवि ने ऊँची जाति के नीच कर्मों पर आक्षेप किया है।

पूछो मेरी जाति ..... इतिहास (पृष्ठ 4)

प्रसंग– जब कर्ण के शौर्य को सूत-पुत्र कह कर तिरस्कृत करने का प्रयत्न किया गया, तब कर्ण ने कहा–

व्याख्या– जाति पूछने की सामर्थ्य यदि किसी में है तो वह कर्ण के भुजबल से पूछे। इसका उत्तर उन्हें सूर्य के समान चमकता हुआ उसका मस्तक एवं उसके कवच-कुण्डल ही देंगे। कर्ण बड़ी निर्भीकता से कहता है कि उसके रोम-रोम मे जो तीव्र प्रकाश झलक रहा है, लोग उसे पढ़ने का प्रयत्न करें। उसी में उसका इतिहास अंकित है।

टिप्पणी– 'मेरा इतिहास' शब्द यहाँ सारगर्भित है। कर्ण अपने विगत जीवन की ओर संकेत करके कह रहा है। उसने एक कुमारी राजकुमारी के गर्भ में जन्म लिया था। उसके पिता थे 'विकर्त्तन' अर्थात् 'सूर्य'। जननी ने समाज के भय से नवजात शिशु को मंजूषा में रखकर अश्व नदी की धारा में प्रवाहित कर दिया, उन्होंने पुत्र का रक्षण-पोषण नहीं किया। कर्ण का लालन-पालन एक सारथी-दम्पति द्वारा हुआ। कर्ण पला तो एक सारथी के घर में किन्तु जननी-जनक से उपलब्ध संस्कारवश वह सारथी न बनकर अद्वितीय योद्धा बना। कर्ण के रोम-रोम में यही संस्कारजन्य प्रकाश झलक रहा था।

विशेष– 1. रवि-समान दीपित ललाट में उपमा अलंकार है।

मूल जानना ..... क्रूर (पृष्ठ 5)

प्रसंग–यहाँ दुर्योधन वीरों का लक्षण बताते हुए जातिवाद की निंदा करते हुए कहता है–

व्याख्या– सच्चे वीर की मूल जाति या वंश कौन-सा है यह जानना उतना ही कठिन है, जितना कि नदियों के उद्गम-स्थान को जानना। वीर मनुष्य का गोत्र तो 'धनुष' ही होता है। सच्चे वीर अपनी तपस्या और लगन के बल से ही सम्मान प्राप्त करते हैं। जाति-पाँति का सहारा तो वे लोग लेते हैं जो कायर और निर्बल होते हैं। वीर पुरुष अपना परिचय वीरतापूर्ण कार्यों के द्वारा ही देते हैं।

दुर्योधन ..... नहीं वंश धनधाम (पृष्ठ 7)

प्रसंग– कर्ण जब रंगभूमि में अवतरित हुए, उसी समय भीम ने तिरस्कार करते हुए कहा–अरे ओ सूतपुत्र! तू तो अर्जुन के हाथ से मरने के योग्य भी नहीं है। तुझे तो शीघ्र ही चाबुक हाथ में लेना चाहिए, क्योंकि वही तेरे कुल के अनुरूप है। भीम के इस तिरस्कारपूर्ण वचन को सुनकर दुर्योधन ने भीम की भर्त्सना निम्न शब्दों में की–

व्याख्या–दुर्योधन ने कहा कि हे भीम! तुम झूठी बकबक कर रहे हो। तुम बड़े धर्मज्ञ कहलाते हो किन्तु ईर्ष्या का विष तुम्हारे मन में भरा हुआ है। बड़े वंश में जन्म लेने में क्या होता है, यदि मनुष्य के काम खोटे हों। मानव का गुण उसके उज्ज्वल चरित्र में होता है, न कि बड़े में उत्पन्न होने में या धनाढ्य होने में अथवा ऊँचे भवन में रहने में। जीवन की स्वतः साधना ही मनुष्य के जीवन का वास्तविक मापदण्ड बन सकती है। कर्ण सूतपुत्र था, परन्तु उसकी भुजाओं के शौर्य को जातीयता के दावों से झुठलाया नहीं जा सकता।

दिप्पणी–भाव यह है कि जातिवाद का विष न केवल द्रोणाचार्य तक सीमित था, बल्कि वह तत्कालीन परशुराम जैसे महापुरूष में भी प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है। एकलव्य का अँगूठा कटवाकर द्रोणाचार्य ने जातीयता के रोग का ही परिचय दिया था। परशुराम भी इस महारोग से नहीं बचे थे। इसलिए कर्ण को ब्राह्मण के वेश में शस्त्र विद्या सीखने के उद्देश्य से प्रतापी परशुराम की सेवा में उपस्थित होना पड़ा। जातिवाद के दूषित धरातल का कूट के जो बीच महाभारत काल में अंकुरित हो रहे थे, उसी के परिणामस्वरूप भारत विदेशी शक्तियों से पदाक्रान्त हुआ। सदियों तक निरन्तर इसके गौरव को रौंदा गया।

जन्मे नहीं ..... तेरा राह (पृष्ठ 8)

प्रसंग– कर्ण का शौर्य देखकर गुरु द्रोण का धैर्य हिल उठता है क्योंकि वे अर्जुन के जोड़ का बल रखने वाले प्रतिद्वन्द्वी को देखना नहीं चाहते। तभी वे कहते हैं–

व्याख्या– हे अर्जुन, तेरे जोड़ का बल रखने वाला प्रतिद्वन्द्वी इस संसार में नहीं होना चाहिए। इसीलिए मैंने तेरे प्रतिद्वन्द्वी एकलव्य का अँगूठा कटवा दिया और उसने अपने मुख से आह तक नहीं निकाली। वे अर्जुन का मार्ग कांटों से रहित रखना चाहते थे अर्थात् जो भी उसका मुकाबला करने योग्य होता उसे इस संसार से मिटा देना चाहते थे।

टिप्पणी– एकलव्य एक भील बालक था। उसने जब गुरु द्रोणाचार्य से शस्त्र-विद्या ग्रहण करने की अभिलाषा प्रकट की तो गुरु द्रोण ने यह कह कर उसकी माँग ठुकरा दी कि वह भिन्न जाति का है। तब एकलव्य ने गुरु द्रोण की मूर्ति के सामने स्वयं ही अभ्यास करते हुए धनुर्विधा में इतनी कुशलता प्राप्त कर ली कि अर्जुन से बढ़ गया। बाद में गुरु द्रोण ने अर्जुन की श्रेष्ठता की रक्षा के लिए एकलव्य से गुरु-दक्षिणा के रूप में उसके दायें हाथ का अँगूठा माँग लिया जिससे वह बाण चला ही न सके।

और दाय ..... पाँव (पृष्ठ 9)

प्रसंग– इन पंक्तियों में कुन्ती की विकलता का चित्रण किया गया है।

व्याख्या– रंगभूमि में धनुर्विद्या का प्रदर्शन समाप्त होने पर पर्दे के पीछे से देख रही रानियाँ राजभवन में वापस जाने लगीं। लेकिन सभी रानियों के पीछे विकल-हृदया कुन्ती धीरे-धीरे चली जा रही थी, क्योंकि कुन्ती ही कर्ण की वास्तविक माँ थी। कर्ण को अपमानित देखकर कुन्ती को ऐसा लगता था, मानो उसके सुनहरे सपनों का संसार ही उजड़ गया हो या वह जुए के दाव पर अपना सर्वस्व हार गयी हो। निराश कुन्ती के पाँव भी चल सकने के लिए उठ नहीं पा रहे थे, क्योंकि कर्ण के अपमान का कारण वह स्वयं को मान रही थी। कुन्ती अपने अन्दर ही अन्दर पड़पती पीछे-पीछे चली आ रही थी। वह इस कारण और भी दुखी थी कि उसका पुत्र कर्ण शत्रुओं के पक्ष में चला गया। वह भाग्य की कैसी चोट है कि अर्जुन और कर्ण भाई होकर एक-दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी हो रहे हैं। माँ को अपनी आँखों के सामने सब देखना पड़ रहा है।

कवि ने कुन्ती के आहत मातृत्व का मार्मिक चित्रण किया है।

द्वितीय सर्ग

शब्दार्थ-(पृ० 10-25)

पृ० 10–विरल=जो सघन न हो, पतला हो। अधित्यका=पहाड के ऊपर की समतल भूमि। उत्स-प्रस्रवण=सोते, झरने। शुभ्र=सफेद। पाहन=पत्थर। उटज=कुटिया। पावन=पवित्र। मूस=चूहा। शशक=खरगोश। तंद्रिल=अर्ध निद्रा की अवस्था। लेहन=चूमना-चाटना। तृष्ट=सन्तुष्ट। धूप-धूम वर्चित=धूप के धूएँ से सना हुआ। छदन=पत्ते। आतप=धूप। साकल्प=यज्ञ सामग्री (यहाँ उच्छिष्ट यज्ञ सामग्री)। रोमन्थन=पागुर करना। विवर=गुफा. बिल। विश्रब्ध=शान्त, जिसका विश्वास किया जाए। चीवर=मुनियों का वस्त्र। इंगुर=हिंगोट। लोचन=आँखें। रसाल=आम का वृक्ष।

पृ० 11–अजिन=बाघ का मृग का रोएँदार चमड़ा, जिसे साधारणतः मृगछाला कहते हैं। तूणीर=तरकस। दर्भ=दूब, कुश। पालाश=पालाश का दण्ड जो यज्ञ में काम आता है। स्रुवा=यज्ञीय पात्र, जिससे घृत की आहुति दी जाती है। परशु=कुल्हाड़ा। आभाशाली=चमकीला। लौहदण्ड=लोहे की छड़ी। अंशुमाली=सूर्य। मन से तन का सिद्ध यन्त्र ..... पाया है=मन की सिद्धि इन्द्रियों पर विजय पाने को कहते हैं। उसी प्रकार तन की सिद्धि शारीरिक विजय का नाम है। अस्त्र-शस्त्र, ये शारीरिक विजय के साधन हैं। युक्ति=साधन। क्लीव=नपुंसक, कायर। अर्ध=आधा। खड्ग=तलवार। षड्विकार=काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, अहंकार–छह विकार। यज्ञाग्नि=यज्ञ की आग। असि=तलवार। कुटिल=भयंकर। दैहिक=शरीर से सम्बन्धित। युक्ति=उपाय। तपोनिष्ठ=तप पर विश्वास करने वाला।

पृ० 12– कुठार=फरसा। विमल=स्वच्छ। संबल=सहारा। वंशधर=वंश में जन्मे। प्रणपाली का=प्रण का पालन करने वाले का। तरुवर=पेड़। किंचित्=थोड़ा। मुग्ध=मोहित। तृण-पात=घास-पत्ते। उचट=जागना। आयुद्ध संचालन=शस्त्र-चलाना। वत्स=बेटा। पुष्टिकर=स्वास्थ्यवर्धक। अनुगामी=पीछे चलने वाला। सजग=सावधान। कृश=कमजोर। काया=शरीर।

पृ० 13– भुजदंड=बाहु, भुजा। अभय=बिना डर के। विप्र=ब्राह्मण। वैश्य-वेश्य=वैश्य का घर। वय=अवस्था। असि विहीन=तलवार के बिना। शोषित=खून। लिप्सा=लालसा। उद्धत=उद्दंड। भूप=राजा। दुःख-दैन्य=दुःख-दीनता। परिशोषक=दूसरे का खून चूसने वाला। पथभ्रान्त=रास्ते से भटका हुआ। मनुज=मनुष्य। वय चतुर्थ=चौथी आयु, पचहतर वर्ष के बाद, संन्यास आश्रम की आयु। शीलोच्छवृत्ति=अनाज के दाने बीनकर रोजी चलाना।

प्र० 14– रण=युद्ध। कल्पित अभाव=जो अभाव वास्तव में नहीं है, केवल कल्पना में, भविष्य में होने वाला है। जनों=लोगों। अहं=घमण्ड। अविवेकी=जिसे ज्ञान हो। कुपथ=बुरा रास्ता। तत्क्षण=उसी समय। अनादर=अपमान। सत्ता=अधिकार। नरपति=राजा। जयी=जीतने वाला। सिर=सब का मुखिया। ज्वाला=आग।

पृ० 15– अशन-वसन=भोजन-वस्त्र। कनक=सोना। विभूतियाँ=मान व्यक्तित्व, ऐश्वर्य। अविचारी=बिना विचार के। ग्रीवाहार=गर्दन काटने वाला। निष्ठुर=कठोर। मदान्ध=मद से अन्धा। त्रास=भय। मनुजता=मनुष्यता। कोविद=विद्वान। विज्ञान-विशारद=विज्ञान में चतुर। आग में=दुख और जलने में। अकुलायेंगी=व्याकुल होगी। भयकारी=भयानक।

पृ० 16– दहक उठा=जल उठा। निर्झर=झरना। अनल=आग। खला=चुभा। शर=बाण। चाप=धनुष। अय वत्स=हे बेटा। जुगा=संभालकर। अक्षय=अमर।

पृ० 17– अधम=नीच। विधाता=ईश्वर। विविध=अनेक। आकस्मिक=अचानक। अक्षय=न मिटने वाला। अतल=भूमि, पाताल। भूमण्डल=भूमि। भूषिता=सजा हुआ। सुजाना=सज्जन। क्यारियाँ=वर्ग, जातियों के घेरे। अघात=प्रहार।

पृ० 18– विषकीट=जहरीला कीड़ा। वज्रदंष्ट्र=कठोर दाढ़ों वाला। नींद उचट जाती=नींद खुल जाती। विस्मित=हैरान। उरु=जांघ। मन्द-मन्द=धीरे-धीरे। विकल=व्याकुल। विह्वल=गद्‌गद्‌। अचल=बिना हिले-डुले। सहसा=अचानक। पैठा=घुस गया। शिला-सी=पत्थर के समान। इंगितों=इशारों। क्षत=घाव। वेदना=पीडा।

पृ० 19– वृथा=बेकार। नाहक=बेकार। विश्राम=आराम। हलाहल=जहर। बलिदान=त्याग। कसक=पीड़ा। निश्चल=स्थिर। सहसा=अचानक। अभिजन=विशेष व्यक्ति। निश्चल=स्थिर, चुपचाप।

पृ० 20– कोधाग्नि=क्रोध की अग्नि। तेजपुंज=प्रकाश-समूह। विवर्ण=जिसका रंग उड़ा हो। अन्तेवासी=गुरु के पास रहकर शिक्षा पाने वाला शिष्य। कार्त्तवीर्य=सहस्रार्जुन। एक बार परशुराम जी के पिता जमदग्नि ऋषि के आश्रम में आ कर सहस्रार्जुन ने बड़ा ऊधम मचाया। जब परशुराम जी को यह बात मालूम हुई, इन्होंने कार्त्तवीर्य से लड़ाई ठानी और उसे मार डाला। जेता=विजयी। तपोदीप्त=तप से उज्जवल। किल्विष=पाप। विद्या-संचय=विद्या ग्रहण करना। धर्म प्रणेता=धर्म की स्थापना करने वाला।

पृ० 21– जेता=विजयी। तृष्णा=तीव्र इच्छा। पाद पद्यों=चरण-कमलों। कणिकाएँ=ओस-बूंदें (अश्रु)। निश्छल=छल रहित। करतब=कर्त्तव्य। जिज्ञासु=जानने की इच्छा रखने वाला। कार्पण्य=कंजूसी दिखाना। व्रत=उद्देश्य। मदान्ध=अहंकारी। नामी=प्रसिद्ध। कामी=इच्छा करने वाला। अगणित=अनेक।

पृ० 22– मुनसत्तम=मुनिश्रेष्ठ। असमंजस=दुविधा। निष्फल=नाकामयाब। धनुर्वेद=धनुर्विद्या। प्रमुदित=प्रसन्न। विक्रमी=पराक्रमी। विप्रवंश=ब्राह्मणजाति। अनल=क्रोध की आग। प्रबल=बलवाल। पद=चरण।

पृ० 23– अन्तिम=आखिरी। निदारुण=कठोर। अटल=जो टल न सके। वहन=धारण। संचित=इकट्‌ठा करना। निखिल=सारा। नूतन=नया। स्वयं-दीप्त=अपने तेज से प्रकाशित होना। पौरुष=वीरता। सुभट=अच्छा योद्धा। हर लेता हूँ=वापस लेता हूँ। उमंग=उत्साह। धवल=उज्जवल। कीर्ति=यश।

पृ० 24-25– अभिशप्त=शापित। असंग=अकेला, एकाकी। सजन=अश्रुपूरित। आनन=मुख। अश्रु-गंगा=आँसू रूपी नदी। अनायास=अचानक। निहार=देखना। प्रस्थान=जाना। गिरिशृंग=पर्वत की चोटी। गगन=आकाश। जन=व्यक्ति। व्रत=नियम। सजल दृष्टि=आँसूभरी आँखें। जय=जीत। उगते आते हैं=प्रकट होते हैं। एकान्त कुंज=अकेले झुरमुट में। अर्ध्य भेंट।

कठिन स्थलों की व्याख्या (पृ० 10-15)

परसु और तप ..... करता है। (पृ० 11)

प्रसंग– कर्ण जब द्रोण से निराश होकर परशुराम के आश्रम में चले गये तब वहाँ ब्राह्मण-वेश में अस्त्र-विद्या सीखने लगे। एक दिन परशुराम उनकी जंघा पर सिर रखे निद्रा में मग्न थे कि कर्ण विचार-मग्न हो सोचने लगे–

व्याख्या– सच्चा वीर वही हो सकता है जो वीर होने के साथ-साथ तपस्वी भी हो। तलवार और तप–ये दोनों ही सच्चे वीरों के आभूषण हैं। कायर मनुष्य न तो तलवार ही उठा सकता है और न ही तप कर सकता है। तपस्या से ही मनुष्य छह विकारों पर विजय पा सका है और उसे मनुष्यता के ऊँचे गुणों की पहचान हो सकती है किन्तु युद्ध-भूमि में वह तलवार से ही अपने शरीर की रक्षा कर सकता है। अतएव तलवार और तपस्या दोनों ही वीर मनुष्य के लिए आवश्यक हैं।

टिप्पणी– काम, क्रोध, मद, मोह, अहंकार-षड्‌विकार है जो कि मनुष्य के छह शत्रु माने जाते हैं। इनके वशीभूत होकर मनुष्य अपना विवेक (सत्-असत् निर्णय करने की बुद्धि) गँवा बैठता है।

ब्राह्मण का है ..... क्षत्रिय कर में (पृ० 13)

प्रसंग–परशुराम समाज की रचना पर विचार करते हुए कहते हैं–

व्याख्या– समाज की रचना भी विचित्र है, जहाँ ब्राह्मण का धर्म त्याग है। किन्तु क्या बचपन से ही ब्राह्मण त्यागी बन जाये और शीलोच्छवृत्ति को जीविका का साधन बनाये? वर्णाश्रम व्यवस्था के विभाजन में ब्राह्मण के हिस्से ज्ञान, वैश्य के घर धन और क्षत्रिय के कर (हाथ) तलवार आयी है। परशुराम समाज के इस विचित्र विभाजन पर विस्मय प्रगट कर रहे हैं।

टिप्पणी– 'शीलोच्छवृत्ति' जीवनयापन करने की एक विधि का नाम है। प्राचीन काल में कुछ तपस्वी ब्राह्मण न तो खेती करते थे, न भिक्षाटन। किसान जब खेत काट कर फसल ले जाता था, तब वे ब्राह्मण पक्षी की तरह उस खेत में बिखरे दानों को चुन लेते थे। फिर उसका भी आधा भाग वे खेत के मालिक को दे आते थे और जो आधा बचता, उसी से अपनी जीविका चलाते थे। इस तरह जीविका चलाने का ही नाम है शीलोच्छवृत्ति।

हाय, कर्ण तू क्यों ..... सुजान (पृ० 17)

प्रसंग– गुरुदेव जब-जब 'ब्राह्मण कुमार' सम्बोधन द्वारा कर्ण को साधुवाद देते थे तब-तब वह पश्चात्ताप की ज्वाला में जलने लगता था। इसी दशा का वर्णन इस पंक्तियों में मिलता है।

व्याख्या– कर्ण सोचता है कि उसने संसार में जन्म क्यों लिया था। यदि जन्म भी लिया था तो उसमें ब्राह्मणोचित त्याग, तपस्या, संयम, करुणा, दया आदि सभी गुण क्यों विद्यमान थे? कवच, कुण्डल से युक्त होने पर भी उसका शरीर अपवित्र था। वह जन्मजात ब्राह्मण नहीं हुआ तो इसमें उस का क्या दोष? यह तो समाज का दोष है जो सच्चे गुणों का आदर न करके जाति के आधार पर उच्चता-नीचता का निर्धारण करता है। ऐसा देश पाताल में धँस जाने योग्य है, जो किसी मनुष्य के गुणों को नहीं पहचान सकता। यहाँ कवि ने जातिवाद और सामाजिक तिरस्कार की भावना पर व्यंग्य किया है।

छल से ..... छली होकर (पृ० 20)

प्रसंग– कर्ण ने अपनी जाति को प्रकट नहीं होने दिया, किन्तु चरित्र पर बल देने वाला कर्ण इस छल को सहन नहीं कर सकता। वह इन शब्दों में अपने किये का प्रायश्चित करता है।

व्याख्या– संसार में छल द्वारा मान प्राप्त करना पाप है। कर्ण अपनी जाति को छिपा कर गुरु के आगे बड़ा बना था, यह एक प्रकार का छल ही था। उस दिन तक गुरु कर्ण को दानी, व्रती, वीर आदि कह कर सम्मानित करते थे, किन्तु अब उसे समझेंगे। इसी बात को सोचकर कर्ण क्षुब्ध है कि अब छली बन कर वह संसार में कहाँ रह पाएगा?

रहा नहीं ..... नूतन (पृ० 23)

प्रसंग–परशुराम कर्ण को शाप देने के साथ-साथ वर भी देते हैं कि भारत का इतिहास उसके उज्जवल चरित्र से और भी उज्ज़वल हो जाएगा। वे कहते है।

व्याख्या– यदि कर्ण को ब्रह्मास्त्र की शिक्षा विस्मृत भी हो जाएगी तो इससे क्या होगा? केवल शस्त्रबल से ही कोई वीर नहीं बनता। वीर पुरूष तो स्वयं को नयी कला, नयी रचनाओं, नयी सूझ, नये भावों और नूतन उमंगों से ही नित्य नूतन रहता है।

जाओ, जाओ ..... उलट जाए (पृ० 24)

प्रसंग– परशुराम यह जान लेने पर कि उनका शिष्य और कोई नहीं, सूत-पुत्र कर्ण ही है, अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। पर जिसे पुत्रवत् स्नेह से शिक्षा दी उसके प्रति कठोर कैसे हों। इसलिए अन्य कोई शाप न देकर ब्रह्मास्त्र विद्या की स्मृति हर लेते हैं। इसका भी उन्हें बड़ा दुःख है इसलिए वे कहते हैं :

व्याख्या– कर्ण! तुम यहाँ से चले जाओ और मुझे अकेला ही रहने दो। वास्तव में परशुराम को भय है कि कर्ण उनके पास कुछ देर और खड़ा रहा तो उसे 'निराश देखकर कहीं उनकी छाती न फट जाए' या कहीं उनका वचन ही पिघल कर बदल न जाए। कर्ण पर कठोर होने और अपनी ही विद्या का हरण कर लेने का उन्हें दुःख है। इसीलिए वे चाहते हैं कि कर्ण उनके पास से शीघ्र चला जाए।

विशेष– 'कृपा करके' तथा 'जाओ जाओ कर्ण' आदि आदेश युक्त पद परशुराम की भावाकुल स्थिति के परिचायक हैं।

निराशा से विफल ..... गगन में (पृ० 25)

अर्थ–भक्तिभावनापूर्वक परशुराम के पाँव की धूलि लेकर कर्ण टूटे हुए हृदय से इस प्रकार चल पड़ा, जैसे पहाड़ की चोटी से कोई चीज लुढ़क रही हो और आकाश में चन्द्रमा धीर-धीरे चल रहा हो। भाव यह है कि कर्ण अत्यन्त दुःखी होकर परशुराम से विदाई लेता है।

'किसी गिरि-शृंग ..... हुआ-सा' और 'चला खोया ..... गगन में' में उपमा अलंकार द्रष्टव्य है। इनसे कर्ण के व्यक्तित्व का अत्यन्त मार्मिक एवं उज्जवल रूप उभरता है।

तृतीय सर्ग

शब्दार्थ-(पृ० 26-45)

पृ० 26– पूर्ण=पूरा। अज्ञातवास=छिपकर रहना। पावन=अग्नि। कनक सदृश=सोने के समान। प्रखर=तेज। तेज-प्रवाह=तेज की धारा। विपत्ति=कठिनाई। दहलाती=हिला देती। उद्योग-निरत=कार्य में लगा रहना। विचलित=स्थिर न रहना। धीरज=धैर्य। विघ्न=दुःख, कठिनाई। गहते=पकड़ते। मार्ग=रास्ता। शूलों=कांटों, विपत्तियाँ। मूल=जड़। नसाने=नष्ट करने।

पृ० 27– वर्तिका=दिये की बत्ती। झरती=बहती। अखंड=खंडरहित। प्रहार=चोट। ललना=स्त्री। वसुधा=धरती। इक्षु-दन्ड=गन्ना। भूखंड-विजेता=पृथ्वी के एक भाग को जीतने वाला। अतुलित=अत्यधिक। यशक्रेता=यश को खरीदने वाला। नव-धर्म-प्रणेता=नये धर्म का प्रवर्त्तक। झंझोरते=हिलाते। सत्यपथ=सत्य मार्ग। वाटिका=बगीचा। प्रचंड=तेज। प्रसून=फूल। आतप=धूल। पौरुष=शक्ति, परिश्रम। शाल=साल का वृक्ष, जो जंगलों में होता है।

पृ० 28– अम्बर=आकाश। लाक्षागृह=लाख का घर। ताजा=नया (यहाँ नवयुवक)। धूप-धाम=धूप और पसीना। भीषण=भयंकर। विध्वंस=नाश। तमाम=सारा। परिजन=कुटुम्बी। कंकड़ियाँ=कंकर-पत्थर। सुघड़=सुन्दर। असि=तलवार।

पृ० 29– आशिष=आशीर्वाद। असाध्य=कठिन। दिगज=दिशाओं को थामने वाले हाथी। साधने=सिद्ध करने। कुपित=क्रोधित। विलिन=खोकर। संहार=विनाश। दीप्तभाल=चकमता हुआ मस्तक। वक्षःस्थल=छाती। परिधिबन्ध=क्षितिज। मैनाक मेरु=मैनाक और सुमेरु (दो पौराणिक पर्वतों के नाम)। दिपते=चमकते। निकर=समूह। अकाण्ड=आकस्मिक। चर-अचर=जड़-चेतन। क्षर-अक्षर=नाशवान और शाश्वत। सुरजाति=देवजाति। सिंधु=समुद्र। मन्द्र=मन्द्राचल पर्वत। शत कोटि सरित=नौ करोड़ नदियाँ। हुंकार=गर्जना। साधन=वश में कर। लय=घुला-मिला हुआ। उदयाचल=जहाँ से सूर्य निकलता है।

पृ० 30– जिष्णु=इन्द्र। जलपति=वरुण। धनेश=कुबेर। लोकपाल=दिग्पाल। दंडधर=डंडे को धारण करने वाला, यमराज। सृजन=निर्माण। अम्बर=आकाश। मृतक=मरे हुए। कुन्तल जाल=केश समूह। विकराल=भयंकर। ज्वाल सघन=अग्नि समूह। पवन=वायु। अनन्त=जिसका अन्त न हो। रुद्र=शिवजी का प्रलय करने वाला रूप। गत=जो बीत चुका हो। पटी हुई=मरी हुई। कढ़ती=निकलती। लोचन=आँखें। गगन=आकाश।

पृ० 31– हित=भलाई। मैत्री=मित्रता। याचना=प्रार्थना। वह्नि=अग्नि। प्रखर=तेज। विषबाण=जहरीले बाण। वायस, शृंगाल=कौवा और सियार (गीदड़)। दायी=जिम्मेवार। सन्त=चुपचाप। धृतराष्ट्र विदुर सुख पाते थे=कथा है कि कृष्ण के विराट रूप को देखने के लिए कुछ काल को धृतराष्ट्र की दृष्टि वापिस आ गई थी। प्रमुदित=प्रसन्न। रण-गर्जन=युद्ध का शोर। सकुचाया=झिझक, झिझका। घोर=भयानक। चकित=हैरान। भरमाया सा=भ्रम और घबराहट में पड़ा। हरि=कृष्ण का। कर धर कर=हाथ पकड़कर।

पृ० 32– विष व्यंग्य=जहरीले टेढ़े वचन। मति=अकल। मूढ=बेवकूफ। बोधूँ=समझाऊँ। अवरोधूँ=रोकूँ। शोणित=खून। तप्त धार=गर्म धार। भीतर=अन्दर। निरशन=भोजन से हीन। शमदभ=शमन और दमन (शान्ति तथा संयम)। घात=दाव। शीत=शान्त। विवश=लाचार। अकाम=निष्पक्ष भाव से। विकट=भयानक। ओट=सहारे।

पृ० 33– विषण्ण=उदास, खिन्न। समराग्नि=युद्ध की अग्नि। अघटनीय=असम्भव। विकराल=भयंकर। पृथा=कुन्ती का अन्य नाम। बन्धु=भाई। तनय=पुत्र। ज्येष्ठ=बड़ा। समोद=प्रसन्नता से। टल=रुक। दल=पक्ष। शरचाप=धनुष-बाण। पर को=पराये को। सहोदर=भाई। परम=बहुत ही। अभिषेक=राजतिलक। पखारेंगे=धोएँगे। पद-त्राण=जूते। धर्माधिप=धर्मराज युधिष्ठिर। प्रवर=श्रेष्ठ।

पृ० 34– पांचाली=द्रोपही। आनन्द-चमत्कृत=प्रसन्नता से उल्लसित। साम्राज्य=राज्य। तल=छोड़ना। भावी=आने वाले। शोक=दुःख। दिनमणि=सूर्य। अनुचर=सेवक। उत्तरा=अभिमन्यु की पत्नी। सुभग=सुन्दर। मणि=पुत्र रूपी हीरा।

पृ० 35– उन्मन=उदास। कराल=भयंकर। उदर=पेट। रुधिर=खून। श्रवण=कान। कुलपाती=वंश को पालने वाली, कुलीन। हिय=हृदय। यशस्विनी=यश को प्राप्त करने वाली। पय=दूध। अपरिणीता=जिसका ब्याह न हुआ हो। दफनाती=गाड़ देती हैं। सेवती=पेट में पालती। उदर=पेट। अंश=भाग। अन्तर का=कलेजे का। रुधिर=खून।

पृ० 36– सम्मुख=सामने। अनादर=तिरस्कार। अनल=आग। वृथा=बेकार। गौरव=गर्व। अकुलाती=दुःखी। सदय=दयावान। गोत्र=वंश। मलीन=तुच्छ। कहीं-नहीं=दुःखी होकर बोली नहीं। तनय=बेटे। पतित=नीच। धनधाम=घरबार। तज=त्यागकर।

पृ० 37– सहसा=एकाएक, अचानक। अभिनन्दन=स्वागत। परिवर्तन=बदलना। किंचित्=तनिक। दर्शाता=दिखाता। सुअंक। स्नेहभरी गोदी। महिमावान=यशस्वी। निश्छल=छल रहित। समस्त=सारा। केशव=कृष्ण। धनुर्धर=धनुषधारी। नामी=प्रसिद्ध। गुनिए=सोचिए। निष्ठुर=कठोर। विष-व्यंग्य=जहर जैसा कठोर, चुभने वाली बातें लेती थी। हर=दूर कर देती थी।

पृ० 38– असल=वास्तविक। अटूट=न टूटने वाला। रंक=गरीब। सुरपुर=देवताओं का लोक (स्वर्ग)। कृतघ्न=अहसान न मानने वाला। सोदर भ्राता=सगा भाई। सोम=चन्द्रमा। आसा=भरोसा। अटूट=पक्का। महासमर=महायुद्ध।

पृ० 39– तनय=पुत्र। प्रत्यय=विश्वास। तुरन्त=शीघ्र। विषम=कठोर। अद्भुत=अनोखा। नौकी=नाव। ले लील=निगल ले (डुबा दे)। गही=अपनायी। चूकेगा=पीछे रहेगा। तट=किनारा। कूल-किनारा=लक्ष्य, यात्रा का अन्त।

पृ० 40– धर्माधिराज=युधिष्ठिर। सुयश=सुकीर्ति। विविध=अनेक। पुरुखों=पूर्वजों। रस=सत्य, आनन्द। कुलीनता=ऊँचा कुल। विक्रमी=पराक्रम वाले। गोत्र=जाति। विचलूँगा=डिग जाऊँगा। कुरपति=दुर्योधन। विजय-चरण=जीत पाना। मति=विचार। गति=दशा।

पृ० 41– तरुवर=पेड़। कुठार=परशु, फरसा। अनमोल=अमूल्य। विसात=महत्त्व, गिनती। न्यौछावर=अर्पण करना। स्कंध=कंधा। संग्राम=युद्ध। काया=शरीर। बाँह गही=सहारा लिया। गही=ग्रहण की। वज्र=इन्द्र का अस्त्र। ले लूँ=सहन कर लूँ।

पृ० 42– जोगना=जोड़ना। लक्ष्य=उद्देश्य। अगणित=जिसे गिना न जा सके। समृद्धि=ऐश्वर्य। निर्मल=स्वच्छ। करतल=हथेलियाँ। प्रभुता=बड़प्पन। अत्यल्प=बहुत कम। चाकचिक्य=चमक-दमक। कंचन=सोना। देव सरिता=गंगा। प्रभूत=बहुत अधिक। बिखराने को=दूसरों को देने को। जग=संसार।

पृ० 43– प्रासाद=महल। कनकाभ=सुनहरी चमक वाला। शैल=पर्वत। तपः क्षीण=तप से दुर्बल। अयन=घर। विभव-हेतु=धन के लिए। झंझावातों=आंधी के झोंके। वारि=जल। प्रतापों=झरनों। भुजंग=सांप। फणिबन्ध=नाग-पाश। विधि=तरीके। अहिपाश=सर्प बन्धन, नागपाश। सुमधुर=मीठे स्वभाव वाला। अमृत-क्लेश=कष्ट रूपी अमृत। आतप=धूप। विपद घोर=बड़ी मुसीबत। रण-खेत=युद्ध का मैदान। ताण्डवी तेज=शिवजी के ताण्डव नृत्य जैसा तेज। ज्योति=प्रकाश।

पृ० 44-45– संग्राम-सिंधु=युद्ध रूपी समुद्र। गोपन=छिपा हुआ। ताण्डव=भयंकर नृत्य (प्रलय काल मे शिव का नृत्य)। ज्योति=ज्वाला। विहरें=विहार करना। चरण-स्पर्श=चरणों का स्पर्श करना। राधेय=अधिरथ (सारथी) की पत्नी का नाम राधा था। इसी ने कर्ण का माता की तरह पालन किया था। कर्ण को इसलिए 'राधेय' कहते हैं। विस्मय=आश्चर्य। अनन्य=अभिन्न। नरता=नर जाति। दिनेश=सूर्य। भूषण=जेवर।

कठिन स्थलों की व्याख्या (पृष्ट 26-45)

सच है ..... बनाते हैं। (पृ० 26)

प्रसंग– जब पांडव तेरह वर्षो के वनवास को पूर्ण करके लौटते हैं तब उनमें कुछ नया ही उत्साह दिखाई देता है। यहाँ कवि ने पाण्डवों की शूरवीरता का वर्णन किया है।

व्याख्या– संकट के समय कायरों के हृदय ही विचलित होते हैं, किन्तु शूरवीर व्यक्ति सदा स्थिर रहते हैं। वे एक क्षण के लिए भी अपना धैर्य नहीं खोते। हँसते-हँसते बाधाओं का सामना करते हैं और कांटों में भी अपना रास्ता निकालते चलते हैं।

है कौन विघ्न ..... गले लगाते हैं (पृ० 26-27)

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने सच्चे वीर के गुणों पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या– कवि कहता है ऐसा कौन सा विघ्न है, जिसे वीर अपने साहस और बल से अपने से हटा नहीं सकता। जब वीर ताल ठोक कर आगे बढ़ता है तो पहाड़ के भी पाँव उखड़ जाते हैं अर्थात् बड़ी से बड़ी विपत्तियाँ भी टल जाती हैं। मनुष्य यदि सच्चे मन से विघ्नों के मुकाबिले में डट जाता है तो वह पहाड़ भी ढहा सकता है और पत्थरों को गला कर पानी बना सकता है। भाव यह है कि वीर मुसीबतों में भी अपना रास्ता निकाल लेते हैं।

मनुष्य के भीतर एक से एक बड़ा गुण इस प्रकार छिपा रहता है, जैसे मेंहदी में लाली छिपी रहती है या दीपक की बत्ती में प्रकाश छिपा रहता है। किन्तु जिस प्रकार मेंहदी को पीसे बिना लालिमा नहीं निरखती और बत्ती को जलाये बिना रोशनी नहीं होती उसी प्रकार मानवीय गुणों का उचित उपयोग किये बिना जीवन में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। जीवन से संघर्ष करने से ही मनुष्य की शक्तियाँ निखरती हैं।

इंख डंठल जब पेला जाता है तभी उससे रस की धारा निकलती है। मेंहदी को जब पीसा जाता है तभी उसकी लालिमा निखरती है और वह नारियों की शोभा बढ़ा सकती है। जब फूलों को धागों में पिरोया जाता है तभी उन्हें मालां की संज्ञा मिलती है। इसी प्रकार मनुष्य भी निरन्तर परिश्रम करके उन्नति प्राप्त कर सकता है।

टिप्पणी–'गुण बड़े ..... उजियाली हो' में उदाहरण अलंकार है।

कंकड़ियाँ जिनकी तेज ..... निकलते हैं। (पृ० 28)

प्रसंग– विपत्तियाँ ही मनुष्य की शक्तियों को जगाकर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने की प्रेरणा देती हैं– इन्हीं भावों को स्पष्ट करते हुए कवि कहता है–

व्याख्या– सच्चे वीरों का जन्म फूलों की शय्या पर नहीं, संकट और मुसीबतों से प्रेरणा पा कर ही होता है। शूरवीर वही व्यक्ति है, जिसकी सेज काँटों और पत्थरों की होती है; जिसे घर-बार की आवश्यकता नहीं होती, खुले आकाश के नीचे ही जिसका विकास होता है; विपत्तियाँ जिसे दूध पिलाती हैं अर्थात् पालती-पोसती हैं। आंधियों की लोरी सुन-सुन कर ही जो बड़ा होता है और जो पाण्डवों के समान लाख के घर में जलने के लिए तैयार रहता है। अर्थात् हर प्रकार की विपत्तियों को सहन करके ही मनुष्य महान् बनता है।

टिप्पणी– यहाँ 'लाक्षागृह' से सम्बन्धित एक कहानी की ओर संकेत किया गया है। दुर्योधन ने लाख का घर बनावा पर पाण्डवों को जला डालने का षड्यन्त्र किया था। लाख जरा भी आंच पकड़ने पर ही जल जाता है। लेकिन पाण्डवों को उस भीषण कुचक्र का पता चल गया था और वे उससे सकुशल बचकर निकल गये थे।

क्या अघटनीय सहोदर को। (पृ० 33)

प्रसंग– दुर्योधन को नीचा दिखाने के लिए कर्ण पर सब की दृष्टि जा टिकती थी। सन्धि-प्रस्ताव के विफल होने पर श्रीकृष्ण ने सोचा कि यदि कर्ण को अपनी ओर मिला लिया जाय तो दुर्योधन का सारा घमण्ड तत्काल धूल में मिल जाए। उन्होंने कर्ण को अपनी ओर मिलाने के लिए प्रस्तुत वचन कहे :–

व्याख्या– श्रीकृष्ण कर्ण से कह रहे हैं कि यह कितनी असम्भव और भयंकर घटना है कि जिस कर्ण ने सर्वप्रथम कुन्ती के पेट से जन्म लिया और जिसने सूतपुत्र कहला कर समाज का तिरस्कार सहन किया, वही कर्ण कौरवों के दल में रहकर आठ प्रहर धनुष-बाण उठाकर पाण्डवों से लड़ने के लिए तैयार रहता है। कर्ण किस्मत के चक्कर में पड़कर अपनी माँ का प्यार न पा सका और यह रहस्य भी वह न जान सका। इसी कारण वह आज दुश्मन के घर में रहता है। अपने सगे भाई पाण्डवों को तो गैर मानता है और पराई संतान को अर्थात् कौरवों को अपना समझ बैठा है। यह कितने दुःख की बात है कि कर्ण सगों को पराया तथा शत्रु को सगा मान रहा है।

मित्रता बड़ा ..... धर दूँ (पृ० 41)

प्रसंग– कृष्ण के प्रलोभनों को कर्ण मैत्री के सामने नगण्य समझता है। कुन्ती ने तो केवल उसे जन्म ही दिया था, राधा ने उसे मातृत्व प्रदान दिया, किंतु उसे वास्तविक जीवन-प्रदान दुर्योधन ने दिया था। अतः वह कर्ण के लिए सहोदर भ्राताओं से भी उच्च स्थान पाने का अधिकारी है।

व्याख्या– कर्ण श्रीकृष्ण से कहता है, मित्रता बड़ा अनमोल रत्न है, जिसे धन से नहीं तोला जा सकता। धरती तो क्या, स्वर्ग का सुख भी मैत्री के सम्मुख उसकी दृष्टि में हेय है। स्वर्ग के सुख को भी वह दुर्योधन की मैत्री पर न्यौछावर कर सकता है। ऐसे वरेण्य मित्र पर जब विपत्ति का पहाड़ टूटने को है, तब वह उसे छोड़कर मित्र के साथ प्रवंचना करके मानवता को कलंकित नहीं कर सकता।

टिप्पणी– यहाँ कवि का संदेश यह है कि मनुष्य को अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए तथा जिन्होंने हमें आश्रय दिया है एवं जो हमारी हित-कामना करते हैं, हमें उनके निमित सर्वस्व का बलिदान करने के लिए सन्नद्ध रहना चाहिए, चाहे कितने ही प्रलोभनों का आकर्षण हो और कितनी ही बाधाएँ मुँह खोले खड़ी हों।

प्रासादों के कनकाभ ..... दरारों में (पृ० 43)

प्रसंग–महान् व्यक्ति राजघरानों से दूर रहने की चेष्टा करते हैं। गरुड़ पक्षी का उदाहरण देते हुए कर्ण श्रीकृष्ण से कहता है।

व्याख्या– बड़े-बड़े महलों के स्वर्ग-शिखरों से मनुष्य को कोई लाभ नहीं होता। वहाँ तो डरपोक और दूसरों के टुकड़ों पर पलने वाले कबूतरों का ही आवास होता है। गरुड़ के समान तेज गति वाला और सांपों तक को खा सकने वाला पक्षी सोने के शिखरों पर बैठने के लिए लालायित नहीं होता। वह तो जंगलों तथा पहाड़ों पर अपना स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करता है। उसी प्रकार सच्ची वीरता भी सोने-चांदी से भरे महलों में नहीं मिलती, साधारण मनुष्यों में मिलती है।

टिप्पणी– भगवान श्रीकृष्ण ने कर्ण को प्रलोभन दिया था कि यदि दुर्योधन का साथ छोड़ देगा तो वह पाण्डवों की सम्पत्ति का स्वामी बना दिया जाएगा। किन्तु कर्ण ने श्रीकृष्ण के इस प्रलोभन को ठुकरा दिया।

वे ही फणिबन्ध ..... जुड़ाते हैं। (पृ० 43)

अर्थ– फणिबन्ध या नागपाश सांपों से बने जाल को कहा जाता था। इन जालों का प्रयोग पौराणिक युद्धों में मिलता है। पक्षीराज गरुड़ इन जालों को आकर काटा करता था। यहाँ कवि का अभिप्राय यह है कि गरुड़ के समान तेजस्वी वीर नागपाश (विपत्ति) को काट कर धरती के हृदय को शीतल कर सकते हैं।

चतुर्थ सर्ग

शब्दार्थ (पृ० 46-47)

पृष्ठ 46– अभियान=चढ़ाई। अजस्र=निरन्तर। प्रवाहित। अनल्प=अधिक। स्वत्व=स्वामित्व। वारि=जल। सुपूरित=भरा हुआ। ऋजु=सरल, सीधा-सादा, प्रत्यक्ष। देय=देने योग्य। आत्मघात=आत्म-हत्या। तरु=वृक्ष। कीट=कीड़ा। सरिता=नदी। मेघ=बादल। उदित=प्रकट। जगजीवन=संसार की जिन्दगी।

पृष्ठ 47– कार्पण्य=कंजूसी। रिक्त=खाली। एकाकार=एकरूप। जीवन-घट=जीवन रूपी घड़ा। सुपुनीपा=पवित्र। अस्थि=हड्डी। त्वचा=चमड़ी। नियति=भाग्य, प्रारब्ध। ठिठोली=मजाक। पूर्णकाम=सफल। आत्मदान=अपना बलिदान। समूचे=सारे। मरण ओठों पर=हंसते-हंसते मरना।

अन्तर्कथाएँ

राम द्वारा सीता का त्याग– एक दिन राम को उनके गुप्तचर ने आकर बताया कि एक धोबी अपनी पत्नी से कह रहा था कि मैं राम के समान नहीं, जो तुम्हें घर से बाहर रहने वाली सीता के समान दुबारा घर में रख लूँगा। राम इस बात से अत्यन्त दुःखी हुए और उन्होंने सीता को वनवास दे दिया।

दधीचि का शरीर-दान– देवताओं ने वृत्रासुर को मारने के लिए दधीचि से उनके मेरुदण्ड की हड्डी माँगी और दधीचि ने खुशी-खुशी उन्हें यह दान दे दिया। उसकी हड्डियों का वज्र बनाकर इन्द्र ने राक्षस को मारा था।

शिवि– शिवि अत्यन्त दानी था। उसकी परीक्षा लेने के लिए इन्द्र बाज का और अग्निदेव कबूतर का रूप धारण कर उसके दरबार में पहुँच गये। कबूतर ने राजा से कहा कि यह बाज मुझे खा जाना चाहता है, आप मेरी रक्षा कीजिए। कबूतर की जान बचाने के लिए राजा शिवि ने कबूतर के वजन के बराबर अपने शरीर का माँस काटकर बाज को देना शुरू किया किंतु कबूतर के बराबर मांस देने में उसे अपने पूरे शरीर का मांस कतर-कतर कर देना पड़ा था।

हरिचन्द्र–राजा हरिश्चन्द्र को सत्य की परीक्षा देते समय तक बार चाण्डाल के घर नौकरी करनी पड़ी। श्मशान घाट पर पहरा देते समय उनकी पत्नी अपने बेटे का शवदाह करने आई तो उन्होंने अपनी रानी से भी कर के रूप में कफन माँगा था।

सरमद– सरमद औरंगजेब के समय में हुए थे। वे सूफी कवि थे तथा 'अनलहक' अर्थात् 'वह ब्रह्मारिम' (मैं ही ब्रह्मा हूँ) के सिद्धान्त को मानते थे, किन्तु अपने को परमेश्वर मानने का भाव इस्लाम की मौलिक शिक्षा के विरुद्ध है। इसलिए औरंगजेब ने सरमद की खाल खिंचवा कर उन्हें मार डाला था।

सुकरात– यूनान का एक दार्शनिक था, जिसे अपने सिद्धान्त की रक्षा के लिए जहर का प्याला पीकर मरना पड़ा।

मंसूर– ये ईरान के सूफी संत थे। वे भी 'अनलहक' पुकारने के कारण मारे गये। किन्तु, उनके मृत शरीर से भी 'अनलहक' की पुकार आती रही। अत्याचारियों ने उनके शरीर की बोटी-बोटी करवा दी, फिर भी प्रत्येक बोटी से वही आवाज निकलती रही।

पृ० 48– व्रतधारी=व्रत को धारण करने वाला। रवि-पूजन=सूर्य की पूजा। याचक=भिंखारी। अनायास=स्वतः, सहज रूप से। पताका=झंडा। ज्ञापक=बताने वाला। अतुलनीय=जिसे तोला ना जा सके। प्रत्यक्ष=सामने। पुण्य-विवर=पुण्य रूपी गुफा। निकष=कसौटी। दिनमणि=सूर्य। मुद्रित=बन्द। सलिल=जल। रत-सानि=मग्न। अम्बुधि=समुद्र। आकटक=पर्वत का कटि भाग। निमज्जित=डूबा हुआ। कनक खजित=सोने से जड़ित। अमोघ=अटल। भाग्यसत=अभागे। काया=शरीर। जाहवी तीर=गंगा के किनारे।

पृ० 49– रश्मियाँ=सूर्य की किरणें। स्वर्ण=सोना। किरण-सुधा=किरणों रूपी अमृत। दमक=चमक। कदली=केला। पारद=पारा। विहग=पक्षी। वीरुध=लता, झाड़ी। अनुचर=दास। तत्पर=तैयार। वसन=वस्त्र। धाम=स्थान। क्षणिक=अस्थाई। उपकृत=जिसके साथ उपकार किया गया हो। संचित=इकट्ठा किया हुआ। वितान=कुंज या झुरमुट। खरपात=घास-पात। आदेश=आज्ञा। क्षुद्र=तुच्छ। याचक=माँगने वाला। परका=दूसरे का। न्यास=धरोहर। तृप्त भाव=सन्तुष्ट भाव। दीनों=गरीबों। गद्‌गद् वाणी=प्रसन्न वाणी। गिरागहन=गम्भीर वचन।

पृ० 50– नानाविधि=अनेक प्रकार। कोर=कोना। लबालब=ऊपर तक भरा हुआ। आशीर्वचन=आशीर्वाद वचन। त्रिलोक=तीनों लोक। प्रणपालन=प्राण का पालन करना। आश्वासन=विश्वास दिलाना। अभीत बिना डर के। सर्वत्र=प्रत्येक स्थान पर। कार्य वाचक=कर्म का प्रतीक।

पृ० 51– मनुज-लोक=पृथ्वी लोक। ललाट=मस्तक। उद्यम=परिश्रम। कूप=कुआँ। चंचल=अस्थिर। अभिलाषाएँ=आकांक्षाएँ। दिव्य=अलौकिक। शत-शत=सैंकड़ों। प्रमाण=सबूत। निष्ठा=दृढ़ता। कोटि में=श्रेणी में। क्षुद्र-पात्र=छोटा बर्तन। मग्न=डूब कर।

पृ० 52– मही=पृथ्वी। डोलती=हिलती। औदार्य=उदारता से परिपूर्ण। द्विधा=संशय। कीर्ति चाँदनी=यश रूपी चाँदनी। निष्कलंक=बिना कलंक के। विधु=चंद्रमा। उपचार=बनावट। देव निलय=देवताओं का घर। क्रियावाचक=कार्य रूप में परिणत होने वाला। मनस्वी=पक्के मन वाला व्यक्ति।

पृ० 53– अभंगप्रण=न टूटने वाली, प्रतिज्ञा। इतर=दूसरा। हरि के मायाचार=विष्णु के भेजे हुए मायावी गुप्तचर। नश्वर=नाशवान। द्रोही=विश्वासघाती। साकल्य=हवन सामग्री, समय वस्तु। सुकर्म=अच्छा कार्य। यक्ष=देवताओं की एक जाति। सदेह=शरीर के साथ। विप्रदेव=ब्राह्मण देवता। अयश=निंद। शपथ=कसम। भिक्षु=माँगने वाला।

पृ० 54– विद्युत=बिजली। सुरपति=इन्द्र। केवल गंध जिन्हें प्रिय=कहा जाता है कि देवता केवल गंध सूंघते हैं: जिह्वा से स्वाद नहीं लेते। व्योमवासी=आकाश में रहने वाले। प्रगति=विकास। मही=पृथ्वी। अन्यथा=नहीं तो। अशुभ=बुरा।

पृ० 55– निष्प्राण=प्राणहीन। अमोघ=न चूकने वाला। समर=युद्ध। निहत शरभ=मारे हुए सिंह जाति का एक जन्तु। आखेट=शिकारी। शर=बाण। अभय=निडर। अपर को=दूसरे को। मृगपति=शेर। पौरुष=शक्ति। भीत=डर कर। विमुख=मुंह मोड़ना। रिपु=शत्रु।

पृ० 56– तमुत्र-देवी=दैवी शरीर। अवहेलना=उपेक्षा। आपत्ति-गर्त=संकट रूपी गर्ड्डा। परिभव=अपमान। पद दलित=पैरों के नीचे रौंदा हुआ। विधि=ढंग। विभेद=अन्तर। समतल=समानता पर। विफल=बेकार। प्रोत्साहन=बढ़ावा। भृगुपति=परशुराम। धाया=दौड़ा।

पृ० 57– ख्यात=प्रसिद्ध। विपदाएँ=कठिनाइयाँ। विरंची=ब्रह्मा। जटिल=कठिन। विधि ने=विधाता ने। सुगत=अच्छी गति देने वाला। आगार=भण्डार। धृति=धीरज।

पृ० 58– विश्व=संसार। स्यात्=शायद। अंधड़=आंधी। कुपन्थ=बुरा रास्ता। पद दलित=पैरों तले रौंदा हुआ। अवलंब=सहारा। नियति भाल पर=भाग्य के मस्तक पर। वक्ष=हृदय। पुथुल=पुष्ट, उन्नत। सत्पथ=सच्चाई का रास्ता। ताड़ेगा=फटकारेगा। विषय=कठोर। वहि=अग्नि। निःसीम=अत्यधिक।

पृ० 59– नीच-वंश जन्मा=नीच वंश में जन्म लेने वाला। विषय वहि=वासनाओं रूपी आग। निःसिम=जिसका अन्त न हो। व्यथा=दुःख। निखिल=सारा। विशिष्ट=विशेष। धर्म-हेतु=धर्म के लिए। विमुख=मुँह मोड़ना। चिरकाल=हमेशा। नत होगा=झुक जाएगा। व्रत=प्रण। सन्धि=मेल। बलि से=बलिदानों से। अप्रतिम=अद्‌भुत। संबल=आश्रय।

पृ० 60– कनक रचित निश्रेणि=सोने से बनी हुई सीढ़ी (नसैनी)। अनुपम=अनोखा। दारुण=भयंकर। पूर्णाहुति=अन्तिम आहुति। वृथा=खाली। अमरभुवन=स्वर्ग लोक। उद्वेलित=व्यय, व्याकुल। निमित्त=लिए। निपटारा=फैसला। कर में=हाथ में।

पृ० 61– चकित=हैरानी। विहग=पक्षी। भीति=भय। घन बादल। गगन=आकाश। निराला=अद्‌भुत। क्लिन्न=दुःखी, उदास। प्रदाह=जला हुआ। विशिख=बाण, आग की लपट। शीश=सिर। निवेदित=निवेदन करना। प्रणति=झुकना। मन्द्र=गम्भीर। कृत्य=कार्य। पगे हुए=डूबे हुए। मूक=चुप। बलि=बलिदान। सुरत्व=देवत्व। प्रबोध=समझाना।

पृ० 62– पदधूलि=पाँव की धूली। भँवर=चक्कर काटती जल-राशि। मति=अक्ल। छद्‌म=छल। हृदय-विदारक=हृदय को भेदने वाला। वज्र=कठोर। लघुता=छोटा। विवस=विवश, मजबूर। संहारक=नाश करने वाला। धूम=धुआँ। भेदकर=काटकर। मलिन=मैला। क्षुद्र=तुच्छ। खली थी=बुरी लगी थी। दिव्य=सुन्दर। तृण सा=तिनके के समान। शील सिन्धु=सुशीलता रूपी समुद्र। सुर=देवता। विप्र=ब्राह्मण। वन्दनीय=पूजा के योग्य। कोटि-कोटि=करोड़ों। संचित=कमाये गये।

पृ० 63– तिग्म=प्रखर। उज्जवल=स्वच्छ। शैल=पर्वत। अचल=न हिलने वाला। जगन्नियंता=जगत का नियमन करने वाली शक्ति, ईश्वर। आलिंगन=भुजाओं में लेना। अगणित=जो गिना न जा सके। मही=पृथ्वी। अंक=गोद। प्रवंचक=छली। बर्बर=असभ्य। चतुर्दिक=चारों ओर। त्रिभुवन=तीनों लोक। अमित=अपार। पूँजीभूत=एकत्रित। ज्योतिर्मय=प्रकाशवान्। पगता है=रमता है।

पृ० 64– दुर्धर्ष तेज=अप्रतिहत तेज। निष्ठुर=कठोर। त्राण=रक्षा। निष्ठुर=कठोर। अचल=दृढ़। स्वेच्छा=अपनी इच्छा।

पृ० 65– अमोघ=अचूक। ले अमोघ यह अस्त्र=एकघ्नी से तात्पर्य है। यह जिस पर भी चलाया जाता था, वह अवश्य ही मारा जाता था। कर्ण ने यह अस्त्र अर्जुन पर चलाने के लिए रखा हुआ था, किन्तु कृष्ण की चाल के कारण कर्ण ने भीम के बेटे घटोत्कच पर ही इसे चला दिया और फिर यह अस्त्र इन्द्र के पास वापिस चला गया।

काल=मृत्यु। विफल=बेकार। वत्स=बेटा। वृथा चंचल हो=बेकार जोश में आकर। सिधारे=चले गये। अम्बर=आकाश।

कठिन स्थलों की व्याख्या (पृ० 46-65)

व्रत का ..... अड़कर। (पृ० 47)

प्रसंग– कवि ने इन पंक्तियों द्वारा स्पष्ट किया है कि आत्मदान से जीवन-घट भरने वाला व्यक्ति अमर हो जाता है।

व्याख्या– कवि का कथन है कि राम ने अपनी जीवन-संगिनी सीता को त्यागकर अपने व्रत की अंतिम कीमत चुकायी थी। देवताओं ने एक असुर को मारने के लिए दधीचि से अनके मेरुदण्ड की हड्डी माँगी और दधीचि ने खुशी-खुशी उन्हें यह दान दे दिया। राजा शिवि ने एक कबूतर की जान बचाने के लिए अपने शरीर का माँस एक बाज को अर्पित कर दिया। हरिश्चन्द्र ने भी सत्य पर अड़ कर अपना सर्वस्व दान कर दिया था।

कवि का भाव यह है कि अपने धर्म-गुरुओं ने भी विश्व में राष्ट्रीय जीवन को संवारने का सदा प्रयास किया और वे अमर हो गये।

माँगो माँगो ..... घर से। (पृ० 49)

प्रसंग–कर्ण एक महान् दानी था, उसका आख्यान दान की महिमा से वंचित नहीं रह सकता। यही कारण है कि 'रश्मिरथी' में भी उसके जीवन द्वारा दान का माहात्म्य प्रदर्शित किया गया है। कर्ण असहायों को शरण प्रदान करने वाला मानों पृथ्वी का कल्पवृक्ष है। इसलिए इन्द्र याचक का रूप धारण करके भिक्षा लेने उसके पास आते हैं, तो कर्ण उन्हें ये शब्द कहता है:

व्याख्या– हे भिक्षुक! बोलो तुम्हें क्या चाहिए? दान में तुम्हें अन्न, वस्त्र, धन, राज्य आदि जो भी चाहिए, कर्ण सहर्ष दे सकता है। यहाँ तक कि वह अपना जीवन-दान देने को भी तैयार है। कर्ण कहता है कि सागर मेघों को जल देने में कृपणता (कंजूस) दिखा सकता है; किन्तु मेरे द्वार से कोई भी याचक निराश होकर नहीं लौट सकता।

वह करतब यह कि युद्ध में ..... लगाओ। (पृ० 58)

प्रंसग–प्रस्तुत पंक्तियों में कर्ण के क्षत्रियोचित उद्‌गार कवि के स्वर में व्यक्त हुए हैं।

व्याख्या– क्षत्रिय का यह कर्त्तव्य है कि युद्ध में मरे या मारे। किन्तु बुरे मार्ग से अथवा कायरता से यदि उसकी जीत भी हो रही हो तो भी उस मार्ग पर न चले। सत्य-पथ के लिए यदि उसे अपने प्राण-न्यौछावर करने पड़ें तो भी करे। किन्तु विजय के प्रलोभन के लिए अपने हाथों में कालिख न लगावे।

यहाँ कवि ने वस्तुतः भाग्यवाद पर आधारित, समाज की मान्यताओं पर पुरुषार्थ की विजय का कर्ण द्वारा ओजपूर्ण अनुमोदन किया।

मैं उनका आदर्श, जिन्हें कुल ..... चलेंगे। (पृ० 59)

प्रंसग–समाज में असहाय और अनाथ समझे जाने वाले वर्ग के लिए प्रस्तुत पंक्तियों में कर्ण का कथन नई आशाओं का संचार करता है।

व्याख्या– कर्ण अपने को उन व्यक्तियों का आदर्श बताते हैं जिन्हें उच्च कुल में उत्पन्न होने वाले, नीच वंश में जन्मा हुआ कह कर ताड़ेंगे और धिक्कारेंगे तथा जो समाज की विषयवासनाओं रूपी आग में सदा जलते रहेंगे और पग-पग पर अपार बाधाएँ झेलते रहेंगे।

यहाँ कवि का भाव यह है कि जन्म तो आकस्मिक है अतः छोटे कुल पर आघात नहीं होना चाहिए।

विशेष– विषय-वहि में रूपक अलंकार है।

तृण-सा विवश ..... सुर हारा। (पृ० 62)

प्रसंग–जब कर्ण इन्द्र को कवच-कुण्डल उतार कर दे देता है तो (छद्‌मवेशधारी) इन्द्र को यह महसूस होता है मानो उन का छल उन्हीं पर वज्र बनकर आ गिरा हो। इसी पश्चाताप के भाव को कवि ने यहाँ स्पष्ट किया है।

व्याख्या– इन्द्र कर्ण के शील रूपी समुद्र में तिनके के समान डूबने-बहने लगे। जिस प्रकार तुच्छ तिनका पानी की गहराई में कभी रुक जाता है और कभी बहने लगता है किन्तु पानी की गहराई–तक तक नहीं पहुँच पाता उसी प्रकार इन्द्र भी कर्ण की थाह पाने में असमर्थ थे। इन्द्र मन ही मन उधेड़-बुन कर रहे थे किन्तु उन्हें किनारा नहीं मिल रहा था। इन्द्र कर्ण से कहने लगे कि आज देवत्व के आगे मानव ही विजयी हुआ है। इन्द्र अपने दुष्कर्म के कारण कर्ण के सम्मुख हीन बन कर रह गये।

विशेष– तृण-सा विवश ..... में उपमा तथा शील-सिन्धु में रूपक अलंकार है।

दानवीर ..... निज घर को। (पृ० 65)

प्रसंग– कर्ण की दानवीरता की ओर इंगित करके कवि उसके चरित्र को अपनाने का संदेश दे रहा है।

व्याख्या– कवि कहता है कि कर्ण की दानवीरता की महिमा का आख्यान सभी नर-नारियों को गाना चाहिए। मनुष्य और देवता दोनों को उसके चरित्र का अनुसरण करना चाहिए। इन्द्र, कर्ण को एक न चूकने वाला बाण अर्थात् एकघ्नी देकर आकाश में चले गये और कर्ण भी अपने दानरूपी व्रत की अन्तिम कीमत चुका कर अपने घर चला गया।

पंचम सर्ग

शब्दार्थ (पृ० 68-85)

पृ० 66– काल=समय। विकराल=भयानक। क्षय=नाश, हानि। निर्दिष्ट लग्न=निश्चित समय। नियति=भाग्य। समर=संग्राम, युद्ध। मरीचि=किरण। शर=बाण। संहार=नाश। तिमिर=अँधेरा। दृग-वंचित=आँखों से हीन, अंधा। स्वजन=सम्बन्धी। परिजन=कुटुम्बी। कृतान्तसम=यमराज के समान। हरेंगे=मार डालेंगे। शोणित=खून। सुध-बुध खो=होश गंवाकर। समर-चिन्तन=युद्ध के विषय में सोचना। संयोग=अवसर। खण्ड प्रलय=पृथ्वी के एक भाग का विनाश।

पृ० 67– कोख के भाई=सगे भाई। अनुजों=छोटे भाइयों। उर=हृदय। पार्थ=अर्जुन। चिन्ताकुल=चिन्ता से दुःखी। कढ़=निकलता। तपन=सूर्य। सुधियों=स्मृतियों। भरमायी=भ्रम में पड़ी हुई। जाह्नवी-तीर=गंगातट। दिनमणि=सूर्य। क्षितिज=वह स्थान जहाँ धरती और आकाश मिलते हुए प्रतीत होते हैं। घट=घड़ा। कनक=स्वर्ण, सोना। लालिमा=लाली। अग-जग=सारा संसार (जड़-चेतन)। चंग=पतंग। सकुचाकर=लजाकर।

पृ० 68– राधेय=कर्ण। सांध्य-पूजन=संध्य समय की पूजा। विमल=निर्मल, साफ। युगबाहु=दो बाँहें। अप्रतिम=अनुपम, अनोखा। दीपित-ललाट=चमकता हुआ मस्तक। अपरार्क (अपर+अर्क)=अन्य सूर्य। युग-स्वर्णिम-शिखर-मूल=दो सुनहरी चोटियों की तलहटी में। विभाकर=सूर्य। अरुण=सूर्य का सारथी। अर्चियों=ज्वालाएँ, शिखाएँ। अगाध=गहरा। मैनाक-शैल=मैनाक नाम का पर्वत। सुत=बेटा। मोद=प्रसन्नता। ममता=माँ का शिशु के प्रति भेदभाव। निष्पलक=टकटकी लगाकर देखना, अपलक। सम्मुख=सामने। विनत=झुककर, विनम्र। अन्तर=हृदय। नयन=नमस्कार।

पृ० 69– निमित्त=लिए, वास्ते। आदेश=आज्ञा। स्थल=स्थान। अस्तमित=अस्त होते हुए। विभामंडल=सूर्य। औघट=सुनमान। प्रवया=वयोवृद्ध। विगलित=गला हुआ। निदारुण=निष्ठुर। तनय=पुत्र। धर्मराज=युधिष्ठिर के लिए सम्बोधन। कुधि=कोख। पृथा=कुन्ती। अंशी=अंश, वंश से सम्बन्धित।

पृ० 70– कुमारिका=कुँआरी। असमय=जो समय उपयुक्त न हो। अबला=बलहीन। योषिता=युवती। कुमारी=अविवाहित। पतिता=गिरी हुई। बाल-अबोध=नासमझ। शोध=खोज, उपाय। मंजूषा=पिटारी, पेटिका। संयोग=मौका। दयामयी=दया से भरी हुई। कसाना=दुःख। अग्रजा=बड़ी बहन। सादर=आदर सहित। अंक भरूँगी=गले से लगाऊँगी। वज्र=पत्थर। प्रलय=विनाश।

पृ० 71– प्रतिशोध=बदला। विकट=भयंकर। मूक=मौन, चुप। समग्र=सम्पूर्ण, सारा। भुवन=संसार, लोक। हेरा=देखा। संशय=शंका। विरंचि=ब्रह्मा। निर्मोही=निष्ठुर। गोपन=छिपा हुआ। विध्वंस=नाश। रहस्य=भेद।

पृ० 72– द्वेष=शत्रुता। अग्रज=बड़ा भाई। सूत्र=डोरी। आयोजन=योजना। कथन=कहना। शपथ=सौगंध, कसम। प्रमाण=सबूत। दीपते=चमकते। कनकाभ=सोने की आभा वाले, सुनहरी। वसन=वस्त्र। अंशुधर=सूर्य। अंचल=दुपट्टे का छोर। गिरा=वाणी, (यहाँ ध्वनी)। सम्पदा=सम्पत्ति, राज्य। छल=कपट, धोखा। अजय=जिसे कोई न जीत सके।

पृ० 73– दिनेश=सूर्य। अम्बर=आकाश। तिरोहित=छिपना, अस्त। दायित्व=जिम्मेदारी। नमन निवेदन करके=नमस्कार-निवेदन करके। मलअपूत=अपत्रि गन्दगी। कुरु-कुल=कुरु-वंश। उकसाओ=बढ़ाओ। जना=जन्म देना। दुर्भार=असहनीय बोझ। सारथी पुत्र =रथवान का बेटा।

पृ० 74– विविध=अनेक प्रकार। यातना=कष्ट। मनुज=मनुष्य। सहज=स्वभाविक। प्रेरित=प्रेरणा पाकर। अकुलाकर=स्नेह से व्याकुल होकर। पय-पान=दूध पिलाना। क्लांति=थकान, खेद। हरण=दूर। निहार=देख कर। आहार=भोजन। असहाय=बेसहारा। आयुर्बल=आयु की शक्ति। काल-कवल=मौत का ग्रास। कोर-कसर=कमी। पत्थर का किया कलेजा=हृदय को कठोर बना लिया। पट=वस्त्र। निधि=खजाना, धन। मरघट=श्मशान। दृग=आँखें। अंक=गोदी।

पृ० 75– स्वत्व=अधिकार। सुकीर्ति=प्रशंसा, यश। स्नेह=प्रेम। धार=धारा। सूख गयी=भय से–बहुत अधिक घबरा गई। निज=अपना। वृथा=बेकार, व्यर्थ। काढ़-कर=निकालकर, जन्म देकर। सेंक=पाला।

पृ० 76– कलंकमयी=निन्दा से भरी हुई। वियुक्त=बिछड़े हुए। कुलजन=वंश का व्यकित, सम्बन्धी। परिणाम=नतीजा। कुरुपति=दुर्योधन। वेगमयी=तेज। कारा=बन्धन। हेरा=देखा। अभय=निडर।

पृ० 77– केशव पर चिन्ता डाल=अपनी चिन्ताओं को बोझ कृष्ण पर डालकर स्वयं निश्चित हो रहना। जनक=पिता। जननी=माता। कुंठित=असहज, अस्वाभाविक। रिपु-दल=शत्रु का समूह। न्यौछावर=बलिदान। नैवेद्य=पूजा की सामग्री। अर्पित=चढ़ाया हुआ। प्रसून=फूल। राधेय=राधा का पुत्र अर्थात् कर्ण। मौन=चुप। व्यथा=पीड़ा। अश्रु=आँसू।

पृ० 78– चिकुर=केश, बाल। अंजन=काजल, यहाँ कालिमा। अनन्त=अन्तहीन, अपार। तिमिरांचल=अंधेरे का आँचल। निशा=रात। पसारे=फैलाये। स्तब्ध=शान्त। नीरव=बिना शोर के, शान्त। खग=पक्षी। झिल्ली=झींगुर। सरिता=नदी। शिलावत्=चट्टान की तरह। विषकुटिलवचन=जहर बुझी बातें, कठोर वचन। कुत्सा=घृणा। पर के=दूसरे के, पराये। आन=आकर। मोती=गुंथे=तारे रूपी मोतियों से जड़े। दो जन=दो व्यक्ति।

पृ० 79– दारुण=कठोर। अभिलाषा=कामना, इच्छा। अमोघ=अचूक, अव्यर्थ। रिक्त=खाली। अपयश=निन्दा। आलिंगन=गले लगाना। कंटकित=रोमांचित। पुलक=आनन्द। काया=शरीर। संजीवनी=वह बूटी जिसके द्वारा नया जीवन मिलता है। स्निग्ध=मधुर। प्रस्रवण=प्रवाह, द्रवण। प्रसून=फूल। अंक=गोद।

पृ० 80– मही=पृथ्वी। न्यास अंचल का=यहाँ माता के प्रेम से अभिप्राय है। न्यास=आश्रय, धरोहर, अवलम्ब। निमित्त=बहाना, साधना। सुयोग=सुअवसर। प्रतिष्ठा=सम्मान। संगर=युद्ध।

पृ० 81– दाता=देने वाला। पुरातन=पुराना। प्राण=प्रतिज्ञा। वाम-विधाता=भाग्य का विपरीत (उलटा) होना। अतएव=इसलिए। हर्षित-हृदय=प्रसन्न मन से। मोद में फूलो=प्रसन्न हो जाओ।

पृ० 82– वीरगति=युद्ध में वीरतापूर्वक मरना। पुत्रिणी=पुत्रों वाली। कोप=क्रोध। निर्दत्रित=रौंदे हुए। प्रताड़ित=सताए हुए। जन=लोग। विहीन=रहित। निन्दित=तिरस्कृत। सखा=मित्र।

पृ० 83– हतप्रभ=निस्तेज। सह-जेता=जीत का साथी। निःस्व=जिसके पास अपनी कोई सम्पत्ति न हो। दलित=कुचले हुए। उदय का लग्न=उन्नति का शुभ समय। प्रखर=तेज। अभयदान=भय से मुक्त। हरिभव=हार। प्रदाह=जलन। भुज भरने=बाँहों में भरने। रक्षिका=रक्षा करने वाली। अच्युत=अटल, ईश्वर। क्षार=राख। त्रास=डर। पुन=फिर। दलितों=पीड़ितों, दुखियों। आभा=नई ज्योति।

पृ० 84– क्लिन्न=सनी। निर्बाध=रुकावट के बिना। तिमिर=अंधेरा। शत-पाश=सौ बंधन। पटह=नगाड़ा। छाती के पूरे=साहसी, वीर। सत्त्व=सार। महामरण=भयानक=मौत। शोणित=खून। रिपु का दल=शत्रु सेना। काल का पटह=मृत्यु का नगाड़ा।

पृ० 85– पंथ=रास्ता, मार्ग। निस्सार=सार रहित, बेकार। द्रोह की क्रिया=शत्रुता का कार्य, लड़ाई। अन्वेषी=खोज करने वाले। धूमकेतु=पुच्छल तारा, जिसका निकलना अशुभ-सूचक माना जाता है। अकुलाते हैं=बेचैन होते हैं। मरघट=श्मशान घाट। दृगों=आँखों।

कठिन स्थलों की व्याख्या (पृ० 66-85)

आ गया काल ..... समर अति भारी। (पृ० 66)

प्रसंग–प्रस्तुत पद्यांश श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' रचित 'रश्मिरथी' के पंचम सर्ग से उद्धत किया गया है। यहाँ कवि ने महाभारत-युद्ध के प्रारम्भ होने से पहले की संध्या का वर्णन किया है।

व्याख्या–इस पृथ्वी पर युद्ध का अवसर निश्चित समय पर आने वाला है, जिसे कोई भी रोक नहीं सकता। यह समय अत्यन्त भयंकर होगा क्योंकि इससे शान्ति का नाश और अशान्ति छा जाएगी। कौरवों और पाण्डवों के इस युद्ध में भयानक संहार होगा जिससे पृथ्वी पर आंशिक-प्रलय का विकराल दृश्य उपस्थित होगा। विधाता ने विनाश की जो भयंकर योजना बन रखी है, वह कल महाभारत के भीषण संग्राम के रूप में पूर्ण होगी।

उड़ती वितर्क-धागे ..... जाह्वी-तीर पर आई। (पृ० 67)

प्रसंग– श्रीकृष्ण के समझाने पर जब कर्ण पाण्डवों के पक्ष में आने के लिए तैयार नहीं हुआ, तब कुन्ती व्याकुल एवं चिन्तित होकर युद्धारम्भ के एक दिन पूर्व कर्ण के पास एक प्रस्ताव लेकर गई। प्रस्तुत पंक्तियों में कर्ण के पास जाती हुई कुन्ती की मनःस्थिति का वर्णन है।

व्याख्या– जिस प्रकार पतंग डोर के सहारे पवन के तेज थपेड़े सहती हुई आकाश में इधर-उधर उड़ती है, उसी प्रकार कुन्ती के हृदय में उठते हुए विभिन्न विचार उसे अस्थिर बना रहे हैं। पुरानी स्मृतियों की तीक्ष्ण चोट सहते हुए वह कर्ण के पास जा रही है। ऐसी स्थिति में कभी उसका हृदय कर्ण को अपने पक्ष में करने की सफल आशा से परिपूर्ण हो जाता है, तो कभी निराशा के काण भयभीत हो जाता है। इस प्रकार विभिन्न आशा-आकांक्षाओं से युक्त कुन्ती डरती हुई, भ्रमित होती हुई जैसे-तैसे कर्ण से भेंट करने गंगा तट पर पहुँची।

विशेष– यहाँ 'वितर्क-धागे' में रूपक तथा 'चंग-सरीखी' में उपमा अलंकार है।

मानो युग, स्वर्णिम-शिखर ..... खोले। (पृ० 68)

प्रसंग– जब कुन्ती सन्ध्या समय गंगा तट कर्ण के पास पहुँची तो वह सूर्योपासना कर रहे थे। प्रस्तुत अवतरण में दोनों भुजाओं को ऊपर उठाकर संध्या-पूजा करते हुए कर्ण के तेजस्वी रूप का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– कर्ण ने हाथ जोड़े हुए अपनी दोनों भुजाओं को ऊपर उठा रखा है, जो दो सुनहरी चोटियों के समान लग रही हैं। उन भुजाओं के नीचे दीप्तिमान मस्तक ऐसा लग रहा है मानो दो कनक-शिखरों अर्थात् सुनहरी चोटियों के मूल में आकर वास्तव में सूर्य ही विराजमान हो गया हो। अथवा पूजा-लीन कर्ण ऐसा लग रहा है मानो गरुड़ पंख खोलकर अपने मस्तक पर अरुण देवता को धारण किये खड़ा है। कर्ण ने सिर से ऊपर दोनों हाथ जोड़ कर रखे हुए हैं, जो गरुड़ की चोंच की संदेह उत्पन्न कर रहे हैं, मुख से इधर-उधर बाँहों की कुहनियाँ गरुड़ के पंख के समान लग रही हैं।

विशेष– (क) 'मानो ..... सिमट विभाकर' इन प्रथम दो चरणों में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

(ख) 'अथवा ..... निज खोले' में संदेह अलंकार है।

या दो अर्चियाँ ..... बाहु फैलाकर। (पृ० 67)

प्रसंग– पूर्वानुसार।

व्याख्या– संध्या-वंदन करते हुए कर्ण की तेजोदीप्त भुजाएँ ऐजी लग रही हैं मानो अग्नि की दो पवित्र शिखाएँ सूर्य की आरती सजा रही हों। अथवा ऐसा प्रतीत होता है कि मानो सोने के गहरे सागर में स्नान करके मैनाक पर्वत अपनी भुजाएँ फैलाकर खड़ा हो।

विशेष– प्रथम दो चरणों में 'उत्प्रेक्षा' एवं तीसरे तथा चौथे चरण में 'संदेह' अलंकार द्वारा पद्यांश में चमत्कार उत्पन्न किया गया है।

बेटा धरती पर ..... निज सुख को। (पृ० 70)

प्रसंग– ये पंक्तियाँ 'दिनकर' विरचित 'रश्मिरथी' के पंचम सर्ग से उद्धत की गई हैं। कौमार्यावस्था की संतान होने के कारण कर्ण को कुन्ती ने पैदा होते ही लोक-लाज के भय से गंगा में बहा दिया है। कर्ण अपने इस जीवन वृत्तान्त को जानकर कुन्ती को दोषी मानता है। इन पंक्तियों में कुन्ती कर्ण के सम्मुख समाज में नारी की स्थिति स्पष्ट करते हुए, अपने को निर्दोष सिद्ध करने का प्रयास करती है।

व्याख्या– वह कर्ण से कहती है कि इस पृथ्वी पर नारी-मात्र की दशा बहुत दयनीय है, विशेष रूप से अविवाहिता युवती की, क्योंकि वह विवश, अशक्त होती है। एक नारी के लिए समाज चर्चा का विरोध करना बहुत कठिन है, फिर एक पतिता स्त्री तो कभी भी समाज में सिर ऊँचा उठा ही नहीं सकती। एक बार यदि गलती से उसका पैर फिसल गया, तो समाज उसे कभी क्षमा नहीं करता, जीवन में कभी वह गौरव के साथ सुखी नहीं रह सकती।

हो चुका धर्म ..... मत बढ़ाओ। (पृ० 77)

प्रसंग– कुन्ती की इच्छा के अनुकूल कर्ण दुर्योधन का साथ छोड़ने को तैयार नहीं होता। दुर्योधन के साथ मैत्री निभाने का अपना दृढ़-संकल्प वह कुन्ती को बताता है।

व्याख्या– कर्ण कुन्ती से कहता है, मैं तो मित्रता के धर्म पर बलिदान हो चुका हूँ। जिस प्रकार भगवान की पूजा में नैवेद्य चढ़ाया जाता है उसी प्रकार मैं भी मैत्री की भेंट चढ चुका हूँ। मेरी स्थिति पूजा के फूल की-भी है जो देवता को चढ़ाया जा चुका हो। देवार्पित पुष्प के लिए तुम्हारा ललचाना अनुचित है, तुम उस पूजा वेदी की ओर अपना हाथ न बढ़ाओ, वही ठीक है।

विशेष– "मैं चढ़ा हुआ नैवेद्य' में रूपक तथा 'देवता' (दुर्योधन), 'अर्पित प्रसून' (कर्ण) एवं 'पूजा की वेदी' (पवित्र मित्रता) में रूपकातिश्योक्ति का चमत्कार है।

जग में निर्दलित ..... अमर है। (पृ० 82)

प्रसंग– इन पंक्तियों में कर्ण कुन्ती को अपने जीवन का उद्देश्य बतला रहा है।

व्याख्या– वह कुन्ती को समझाता हुआ कहता है कि अगर पाण्डव-पक्ष हार जायेगा तो वह कौरव पक्ष को त्यागकर पाण्डवों से जा मिलेगा, क्योंकि संसार में जितने भी लोग समाज-दलित एवं शोषित हैं, जिन्हें पग-पग पर ठोकरों का सामना

करना पड़ता है, जो अपनी निर्धनावस्था के कारण सुख-सुविधाओं से वंचित रहते हैं, कर्ण उन्हीं का मित्र, भाई और साथी है। विधाता और उसके विधान के विरुद्ध वह सदा लड़ता है।

है अभी उदय ..... अंधेरी होगी। (पृ० 82)

प्रसंग– कर्ण कुन्ती को आश्वस्त करते हुए कहता है कि अगर पाण्डव-पक्ष सबल न रहा तो वह दुर्योधन की विजय को भी छोड़कर, पाण्डवों से जा मिलेगा। इन पंक्तियों में कर्ण कुन्ती को समझाते हैं कि इस समय उसके द्वारा पाण्डवों का नेतृत्व करना उचित नहीं।

व्याख्या– कर्ण कुन्ती से कहता है–अभी पाण्डवों से मिलने का अवसर नहीं आया है; क्योंकि वह समय तो उनकी उन्नति का है, उनके यश की तेज किरणें चारों ओर फैल रही हैं। इस अभ्युदय काल में मैं उनसे नहीं मिलना चाहता। लेकिन अगर कभी स्थिति विपरीत हुई, उन पर आपदाओं का अन्धकार छा गया, मुसीबतों से घिर गये, तब मैं उनके पक्ष में जाऊँगा।

विशेष– 'ज्योति की घड़ी' और 'रात अंधेरी' में प्रतीकात्मक सौंदर्य है वे क्रमशः आशामयी सुख-समृद्धि एवं गम्भीर निराशा-दुख का ज्ञान कराते हैं।

चंद्रमा ..... फैलाता है। (पृ० 85)

प्रसंग– अन्यायी पक्ष का पलड़ा जब भारी हो जाता है, तब युद्ध करना अनिवार्य हो जाता है। इन्हीं भावों को स्पष्ट करते हुए लेखक कहता है–

व्याख्या– जब चांद और सूर्य अंधेरे में छिप जाते हैं और प्रकाश की किरणों को खोजने वाले अपनी हार मान लेते हैं, तब विनाश का प्रतीक धूमकेतू (पुच्छल तारा) आकाश मे उग आता है और उसकी रोशनी शमशान घाट में फैलती है अर्थात् दुनिया का विनाश हो जाता है। इसी प्रकार जब जीवन को विनाश से बचाने की आकांक्षा समाप्त हो जाती है और मनुष्य अपनी हार मान लेता है तब उसके भाग्यरूपी आकाश पर धूमकेतू के समान युद्ध उभर आता है– अर्थात् जब वह अन्याय को नहीं सह सकता तो युद्ध करना उसके लिए आवश्यक हो जाता है।

षष्ठ सर्ग

शब्दार्थ (पृ० 86-100)

पृष्ठ 86– उदग्र=उन्नत, ऊँचा। शृंग=शिखर, चोटी। महाकार=बड़े आकार वाला। भासमान=प्रकाशमान। आलोकवरण=प्रकाश के पुंज, तेजोमय। बूढ़ा बाज=यहाँ भीष्म से अभिप्राय है। भूलुंठित=पृथ्वी पर गिरे हुए। विलोक=देखकर। महाशोक=अत्यधिक दुःख। दुर्जेय=जिसे जीतना कठिन हो। सबके रक्षक..... हुए=द्रोणाचार्य सेनापति बने। तेजहरण=तेज हरने वाला। कौरव कुल=कौरव-वंश। दीपित=जगमगाता। आचार्य=द्रोणाचार्य।

पृष्ठ 87– सद्धर्म=अच्छा धर्म। शर-शय्या=बाणों की शय्या। विनय-विभोर=नम्रता से परिपूर्ण। प्रोत्साहन=बढ़ावा। अनुचर=सेवक। वरदपाणि=वर देने वाला हाथ, आशीर्वाद देना। पदधूलि=चरणों की धूल। सजल नयन=अश्रु भरी आँखें। आर्द्र-लोचन=गीली आँखें। मद=अहंकार। शुभ आशिष=शुभ आशीर्वाद। चरणयुगल=दोनों पाँव। हे तात=पूज्य। लांछित=कलंकित।

पृष्ठ 88– अंकुश=नियंत्रण, दाव। विवेक=ज्ञान। क्रोधान्ध=कोध के कारण अन्धा। भ्रान्त=भ्रम में पड़ा हुआ। पद में विभोर=घमंड से भरा। संग्राम घोर=भयंकर युद्ध। सिंगार=शृंगार, शोभा। द्रोह-दव=द्रोह रूपी जंगली आग। पावक=आग। सुहाग=सौभाग्य। जाती डकार=खाकर पचा लेना। कुलवासी=वंश के लोग। अलभ=न मिलने वाला। सिद्धि=सफलता। प्रतिद्वन्द्वी=मुकाबला करने वाला। मानी=घमण्डी। निश्छल=छल के बिना। परुष वचन=कठोर बातें। मलिन=दुःखी। अवशंसी=निन्दक, निन्दा करने वाला। प्रशंसी=बढ़ाई करने वाला।

पृष्ठ 89– आश्वासन=तसल्ली, भरोसा। प्रवर=श्रेष्ठ। पार्थोपमरथी=अर्जुन के समान वीर योद्धा। धनुर्धारी=धनुष धारण करने वाला। रण-भट=युद्ध वीर। धर्मज्ञ=धर्म को जानने वाला। धीर=धैर्यवान। विहित=सोच-समझकर किया हुआ। संबल=सहारा। धनु=धनुष। शांति हेतु=शांति के लिए। शुचि=पवित्र। श्रम=परिश्रम। द्वेष-विष=शत्रुता रूपी जहर। परम=क्षेष्ठ। सुयोधन=दुर्योधन। त्राता=रक्षा करने वाला।

पृष्ठ 90– सन्धि=सुलह, समझौता। संकटापन्न=मुसीबत से भरा। महायान=बड़ा जहाज। भव्य=सुन्दर। जलयान=जल मे चलने वाला जहाज। तार सकूं=पार कर सकूं। सुगम=सरल। दुर्गम=जहाँ पहुँचना कठिन हो। अरि-दल=शत्रु का समूह। महाभागा=पुण्यात्मा। स्व-व्रत=अपनी प्रतिज्ञा। पुरुषसिंह=शेर के समान वीर पुरुष।

पृष्ठ 91– गांगेय=भीष्म (गंगा का पुत्र)। शमित=शान्त। तूर्ण्य=शीघ्र। देवता वज्र-धनुर्धारी-सा=वज्र को धारण करने वाले देवता (इन्द्र) के समान। केसरी=शेर। अभय=निडर। मगचारी=मार्ग में चलने वाला। नवल=नयी। तरंग=लहर। शयन=सोना। उल्लास=प्रसन्नता। मुक्त=स्वच्छन्द, स्वतन्त्र। समर-भेरी=युद्ध का डंका। रण-जलधि=युद्ध रूपी सागर। गहन=गहरा। क्षुभित=क्रोधित। विकराल=भयंकार। दण्डधर-सा=यमराज के समान। धनु=धनुष। गंगानन्दन=भीष्म। हुंकार=गर्जन। अरिदल=शत्रुओं की सेना। कुपित=क्रोधित।

पृष्ठ 92– झंझा=आंधी। प्रचण्ड=भयंकर। प्लावन=प्रलय। दुर्जय=जिसे जीतना कठिन हो, अजेय। प्रहार=चोट। कगार=किनारा। चक्रवात=चक्र के रूप में हवा, भंवरदार हवा, बगूला। यथा=जैसे। कीर्ण=बिखरे हुए। विशीर्ण=सूखे हुए। भीषण=भयानक। व्यग्र=व्याकुल। बेहाल=बुरी दशा। मधुसूदन=श्रीकृष्ण (मधु नामक असुर को मारने वाले)। निगूढ़=गम्भीर एवं रहस्यपूर्ण। अभयदान=भयरहित करना। अचिर=शीघ्र। दाहक=जलाने वाला। कोप=क्रोध। उच्छिष्ट=जूठा, अवशिष्ट। प्रचंड=बहुत भयानक।

पृष्ठ 93– यह महामत्त मानव-कुंजर=यहाँ कर्ण के अतुल बल का वर्णन करने के लिए 'कुंजर' (हाथी) का रूपक दिया गया है। कर्ण मदमस्त हाथी की तरह युद्ध में अशंक (निडर) होकर घूम रहा है। कर=हाथ (हाथी के अर्थ में सूंड)। शरासन=धनुष। विलम्ब=देर। पातक=पाप। शैथिल्य=शिथिलता, असावधानी। प्राण घातक=प्राण ले लेने वाला। उच्छिष्ट=जूठा। अशंक=निडर। अंकुश=नियंत्रण।

मूढ़ता=मूर्खता, जड़ता। केशव का सिंह=यहाँ अभिप्राय अर्जुन से है। दहाड़=सिंह की बोली को दहाड़ कहते हैं। चुक जायेगा=समाप्त हो जायेगा।

कौन्तेय=अर्जुन, कुन्ती का पुत्र। सुपर्ण=गरुड़। वृंत=पौधा। कुधि=कोख, उदर। कुड्मल=मुकूल कली। विभ्राट=तेजस्वी, महान्। पर्वतकार=पहाड़ की-सी शक्ल वाला। सोदर=सहोदर, भाई। किंशुक=टेसू का फूल। उन्माद=पागलपन। दिशि=दिशा। क्षिप्र=शीघ्र। रुण्ड=धड़। मुंड=सिर। पावक=आग। बेधने=मारने। प्रखर=तेज। शोणित=खून। पग=पैर।

पृष्ठ 94– दहलता=विचलित, घबराता। क्या कहें.... विरुद्ध चला–पुस्तक के पीछे देखिये पृ० 134। छल-छद्मों=छल-कपट। हत हुआ=मारा गया। अर्जुन कुमार=अर्जुन का पुत्र। कुरुबुद्ध=कुरु वंश के बुद्ध (बूढ़ा)। युग-पक्षों=दोनों ओर। अंतक=मृत्यु काल, यमराज। ज्यायान=बूढ़ा, बड़ा। युवा=युवक। शोकार्त्त=दुःख से व्याकुल। क्रुद्ध=क्रोधित। लोम-हर्षक=रोंगटे खड़े कर देने वाला। विपर्यस्त=उलट-पुलट, अस्त-व्यस्त। दारुण=भयानक। दहक उठा=जल उठा। असमय=समय से पहले। दिनेश=सूर्य। शर=बाण। अनशन=भूख हड़ताल, अनाहार।

पृष्ठ 95– अनाहूत=अचानक, बिना बुलाए हुए। स्निग्ध ज्योति=कोमल प्रकाश। पर-तापी=दूसरों को कष्ट देने वाला। दारा=स्त्री। ध्येय=उद्देश्य। निहित=छिपा हुआ। प्रधन-कर्म=विपनाशकृत्य, युद्ध। तत्प=तपा हुआ। वासना-वह्नि=लालसा की आग। संयुम=युद्ध। मांड़ी=पर्दा। दुश्चिन्त्य=चिन्ता के योग्य। कृत्य=कार्य, कर्म। विग्रह=युद्ध। ग्रथन=गूंथना। बढ़ता=जन्म लेता। विमल=पवित्र। मलिन=पापपूर्ण।

पृ० 96– कालिख=कालिमा, कलाँच (यहाँ कलंक की कालिमा)। सत्पथ=अच्छा रास्ता। विजय-बिन्दु=जीत रूपी लक्ष्य। विजय-द्वन्द्व=विजय के लिए किया जाने वाला युद्ध। कराल=भयंकर। रण-कला=युद्ध का कौशल। द्वैरण-रथ=ऐसा युद्ध जो रथ पर सवार दो योद्धा करते हैं। व्यूह=सेना को खड़ा करने का विशेष ढंग। दाहक=नाशकारी। पार्थ=अर्जुन। राधेय=कर्ण।

एकघ्नी–कर्ण को इन्द्र ने कवच-कुण्डल का दान लेने के बाद एक शस्त्र दिया जो केवल एक व्यक्ति को मारने की अव्यर्थ शक्ति रखता था।

पृ० 97– एकघ्निहव्य=एकघ्नी शस्त्र का भोजन। विशिख-वृष्टि=बाणों की वर्षा। सुस्थिर=शान्त, स्थिर। विपद=संकट। वह्निमुखी=ज्वालामुखी। महाघोर-गर्जन=बहुत जोर की गर्जना, हुंकार। किमाकार=भयानक आकार वाला। अनी=सेना। दानव=राक्षस। असुर=राक्षस। (यहाँ घटोत्कच)। कर में=हाथ में। अगम=जिस तक पहुँच न हो।

पृ० 98– अजस्र शर-वृष्टि-निरत=निरन्तर वाणों की वर्षा करने में लगा हुआ। अनवरत युद्धरत=लगातार युद्ध में लगा हुआ। विवर्ण=रंग उड़ना, पीला पड़ना। अबिद्ध=घायल हुए बिना, बिना घाव का। रुद्ध=रोका हुआ। वस्तु=राक्षस। विलपते=रोते, व्याकुल। विधि=ढंग, तरीका। त्राण=उद्धार। संधार करो=निशाला लगाओ, चलाओ। मरण पाश=मृत्यु का बन्धन, फंदा। आनन=मुख। अजेय सम्बल=वह सहारा जिसे जीता न जा सकता हो–यहाँ एकघ्नी से तात्पर्य है। जुगाये चलता था=संभाल कर रखे हुए था। महादानव=महाबलवान राक्षस, घटोत्कच। अन्य गति=दुसरी दिशा। निज चकित नयन=अपनी हैरान आँखें।

पृ० 99– काल सर्पिणी=मृत्यु रूपी नागिन। सगी स्वसा=बहिन। घातकता की वाहिनी=नाश की साथिन। अनल-रसा=ज्वाला की जीभ वाली। तूणीर=तरकश। चाँदनी मन्द पड़ गयी=घटोत्कच का युद्ध रात में हुआ था, इस कारण यहाँ चाँदनी के मन्द पड़ने का वर्णन किया गया है। उद्भासित=प्रकाशित। नरवीर=मनुष्यों में श्रेष्ठ। क्रन्दन=दुःखी होकर रोना, विलाप।

विगत-संशय=जिसको कोई शंका न हो। वाहिनी=सेना। वलयित=घिरा हुआ। दाहक=जलाने वाली। विलोक=देखकर। वेध=नष्ट। त्रासित कर=डराकर। धधक=ज्वाला, लपट। धरा=पृथ्वी। दस्यु=दानव, घटोत्कच।

पृ० 100– पांडव-चमू=पाण्डव सेना। घात=चोट, बार। उच्चार=स्वर। इंगित=संकेत, इशारा। शृंखला=जंजीर, बन्धन। पर्वताकार=पहाड़ के समान आकार वाला। कातर=घबरा कर। विगत संशय=संदेह-रहित। नटनागर=कृष्ण। संग्रह=युद्ध। जयघोष=जयनाद। छलछद्म=छल-कपट। कौशल=चतुराई। घृणा=बेकार।

कठिन स्थलों की व्याख्या (पृ० 86-100)

गिरि का उदग्र ..... आलोकवरण (पृ० 86)

प्रसंग– यह पद्यांश श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' लिखित 'रश्मिरथी' काव्य के षष्ठ सर्ग से उद्धत है। इन पंक्तियों में महाभारत के युद्ध में भीष्मपितामह के घायल होकर गिर जाने का वर्णन है।

व्याख्या– रणभूमि में घायल होकर गिरते हुए भीष्म पितामह ऐसे प्रतीत हुए मानो किसी पर्वत पर्वत के गौरव का आधार, उसका उन्नत शिखर ही टूट कर गिर गया हो अथवा आकाश को सूना करते हुए प्रकाशमान सूर्य आकाश से नीचे गिर पड़ा हो। उनके धराशायी होते ही कौरव-सेना जैसे अपना समस्त तेज खो कर उत्साहहीन हो गई।

विशेष– भीष्म के लिए 'शृंग', 'रवि' का प्रयोग होने से उपमालंकार का सौन्दर्य है।

पर हाय! वीरता का संबल ..... ही मर जायेंगे ? (पृ० 89)

प्रसंग–महाभारत के संग्राम में भीष्मपितामह शर-शय्या पर लेटे हुए कर्ण को परिश्रम और शान्ति से युद्ध को रोकने का आदेश देते हुए कहते हैं।

व्याख्या– हे कर्ण! क्या वीरता का आधार केवल धनुष ही है? क्या वीर सदा युद्ध करने में ही लीन रहेगा? क्या कर्ण जैसे वीर भी शान्ति के लिए पवित्र प्रयास नहीं करेंगे। वे कभी युद्ध की आग को बुझाने को प्रयास भी करेंगे या यों ही लड़ कर मर जायेंगे। भीष्म का कर्ण से कहने का भाव यही है कि संसार को सच्ची वीरता की और शान्ति की आवश्यकता है। सच्ची वीरता भयंकर युद्ध में निहित नहीं है, बल्कि युद्ध की भीष्म अग्नि को शान्त करके बुझा देने में है। युद्ध का नाश करके शान्ति स्थापित करना ही सच्ची वीरता है।

झंझा का झकोर ..... प्राण उठा (पृ० 92)

प्रसंग– इन पंक्तियों में कवि ने बताया है कि महाभारत-युद्ध में कर्ण ने किस प्रकार पाण्डव सेना में भयानक तबाही मचा दी।

व्याख्या– जिस प्रकार भयानक झंझावात के प्रभाव स्वरूप पेड़ों की टहनियाँ टूट जाती हैं, कभी-कभी बड़े-बड़े वृक्ष मूल से ही टूट जाते हैं, दृढ़ पर्वत भी अपने स्थान से हिल जाते हैं, उसी प्रकार कर्ण ने पाण्डव-सेना में इतनी भयंकर बाण-वर्षा की जिससे योद्धागण हतोत्साहित हो गए। वे वीर, जो युद्ध स्थल में अडिग रह कर शत्रु प्रहारों का सामना करते थे, उनके भी प्राण कांप गये।

विशेष– (1) 'पर्वत का भी हिल उठा प्राण' में लाक्षणिकता है। पर्वत कभी नहीं हिलता। लक्ष्यार्थ यह है कि कर्ण की बाण-वर्षा से वीरों के हृदय दहल गये।

(2) प्रसतुत अवतरण की पंक्तियाँ ओजगुण से युक्त हैं।

प्लावन का पा..... भीषण हलचल। (पृ० 92)

प्रसंग– पूर्वानुसार।

व्याख्या–जिस तरह बाढ़ के जल के दुर्दमनीय प्रहारों से नदियों के किनारे काँपने लगते हैं अथवा हवा के बगूलों की तेजी के कारण वृक्षों के पत्ते टूट-टूट कर इधर-इधर गिरने लगते हैं, उसी तरह कर्ण के भयानक प्रहारों से पाण्डव योद्धा भयभीत होकर कांपने लगे, सेना अस्त-व्यस्त होकर इधर-उधर भाग गई।

बड़वानल ..... मानेगा। (पृ० 92-93)

प्रंसग–कर्ण की युद्ध करने की भयानक शक्ति का वर्णन करते हुए कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं–

व्याख्या– समुद्र की आग, यमराज और प्रलय के समान चलने वाली वायु आदि क्रुद्ध हो जाते हैं तो फिर वे संसार को नष्ट नहीं कर देते, बल्कि जूठन रूप में कुछ न कुछ बाकी भी रहने देते हैं। अर्थात् इनके भयंकर कोप से मनुष्य

फिर भी बच सकता है, किन्तु जब कर्ण को क्रोध आ जाता है तब किसी का बचना सम्भव नहीं है। मद-मस्त हाथी के समान यह मनुष्य कर्ण युद्ध-भूमि में निडर और मस्त होकर घूम रहा है। जिधर भी जाता है, शत्रु स्वयं ही भाग जाते हैं। केवल अर्जुन ही इस पर काबू पा सकता है। इसलिए हे अर्जुन अब तुम ही धनुष-बाण उठाओ और वीरता से कर्ण का सामना करो।

टिप्पणी– 'मानव-कुंजर' में रूपक अलंकार है।

तब कहते हैं..... चूर्ण हुआ। (पृ० 94)

प्रसंग– महाभारत युद्ध में घटने वाली एक घटना की ओर संकेत करते हुए कवि कहता है–

व्याख्या– महाभारत के युद्ध में अभिमन्यु की हत्या हो जाने पर अर्जुन या प्रतिज्ञा करता है कि अगले दिन सूर्य डूबने से पहले जयद्रथ को मार देगा या स्वयं जलकर मर जायेगा। ऐसा कहा जाता है कि अर्जुन का प्रण पूरा करने के लिए प्रकृति के सारे नियम उलट-पलट हो गये। भगवान की माया से अचानक शाम हो गई और सूर्य असमय ही अस्त हो गया। यह देखकर छिपा हुआ जयद्रथ बाहर आ गया और छल-कपट से अर्जुन ने उसका वध कर दिया। जयद्रथ का सिर तो कटा ही इसके साथ-साथ जयद्रथ के निर्दोष पिता के सिर के भी सौ टुकड़े हो गये।

टिप्पणी– 'सिर काटा..... चूर्ण हुआ' में कवि ने एक अन्तर्कथा की ओर संकेत किया है। जयद्रथ कौरव पक्ष का वीर था। उसके पिता ने शंकर से वह वरदान ले रखा था कि जिसके द्वारा मेरे पुत्र का मस्तक पृथ्वी पर गिरे उसके अपने मस्तक के सौ टुकड़े हो जायें। भगवान कृष्ण को यह रहस्य ज्ञात था। जिस समय अर्जुन ने जयद्रथ का वध किया, उस समय जयद्रथ का पिता कुरुक्षेत्र से दूर किसी पवित्र स्थान में तप कर रहा था। अर्जुन ने जयद्रथ का मस्तक काटकर इस प्रकार उड़ा दिया कि वह तप करते हुए उसके पिता की गोद में जा गिरा। जयद्रथ का पिता स्वभावतः ही इस आकस्मिक बात से घबरा कर आसन छोड़ कर खड़ा हो गया। फिर क्या था? जयद्रथ का मस्तक उसके पिता की गोद से भूमि पर गिर गया और बेचारे तपस्वी के मस्तक के सौ टुकड़े हो गये।

हाँ यह भी ..... योग-निरत। (पृ० 95)

प्रसंग– पूर्ववत्.....।

व्याख्या– महाभारत के युद्ध में पाण्डवों के पक्ष के सात्यकि और कौरवों के पक्ष के भूरिश्रवा नामक योद्धा आपस में लड़ रहे थे तो कृष्ण के इशारे से अर्जुन ने धोखे से सूरिश्रवा की दाहिनी बांह बाण से काट दी थी। युद्ध में धर्म के नियम का पालन न देखकर भूरिश्रवा को बहुत क्रोध आया और वह मुनियों की तरह आमरण अनशन करने बैठ गया। भूरिश्रवा जब अपनी तपस्या में लीन था तो उसे निश्चेष्ट पाकर सात्यकि ने धर्माधर्म का विचार किये बिना ध्यानस्थ भूरिश्रवा की गरदन काट ली।

जीवन का परम ..... जाता है। (पृ० 95)

अर्थ– प्रत्येक व्यक्ति के जीन का सबसे बड़ा लक्ष्य सुख होता है। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति अपने ध्येय की प्राप्ति भिन्न-भिन्न तरीकों से करता है। सुख की प्राप्ति अधर्म से भी हो सकती है, किन्तु अधर्म त्याज्य है। अतएव धर्म के भीतर प्रधानता सुख की नहीं, उस साधन की मानी जाती चाहिए, जिसके द्वारा मनुष्य सुख प्राप्त करता है अथवा सुख प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है।

है धर्म पहुँचना ..... पापी को भी। (पृ० 95)

प्रसंग– इन पंक्तियों में कवि ने अधर्म तथा नाश द्वारा प्राप्त की गई विजय का विरोध किया है।

व्याख्या– कवि का कथन है कि मनुष्य के जीवन का उद्देश्य केवल लक्ष्य को प्राप्त करके ही सन्तुष्ट हो जाना नहीं है, बल्कि उसका कार्य जीवन-भर कर्म-शील रहना है। उसका कर्त्तव्य है कि वह दीपक के समान अपने जीवन को प्रदीप्त करता हुआ जीवन-मार्ग पर मधुर प्रकाश फैला दे। अगर यह कहें कि मनुष्य के जीवन का ध्येय शत्रु पर विजय प्राप्त करना है तो सही न होगा, क्योंकि विजय तो ऐसे पुरुष को भी प्राप्त हो जाती है, जो धर्म-भ्रष्ट है और जो दूसरों पर अत्याचार करके विजय हो जाता है। जीवन में पुत्र, स्त्री और धन-जन आदि वस्तुएँ तो पापी मनुष्य को भी उपलब्ध हो जाती हैं। अतः वास्तविक महत्त्व साध्य का नहीं, अपितु उसे प्राप्त करने के लिए अपनाए गए साधन का है। साधन श्रेष्ठ हो, तभी साध्य की श्रेष्ठता मानी जा सकती है। विजय धर्म से मिलती हो, तभी श्रेष्ठ है।

तब भी ..... अंगारों को (पृ० 95)

अर्थ– प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने युद्ध सम्बन्धी दो विचार-धाराओं पर प्रकाश डाला है। एक के अनुसार युद्ध प्रत्येक अवस्था में निन्दनीय है। यह सिद्धान्त बुद्ध, अशोक, ईसामसीह और गाँधी की शिक्षा से निकलता है। इनके उपदेशों से यह बात निकलती है कि युद्ध मनुष्य का नहीं, पशु का स्वभाव है, अतएव मनुष्य को चाहिए कि अपने सवाल का हल वह शान्तिमय उपायों से निकाले। दूसरी विचारधारा यह है कि यदि उद्देश्य अच्छे हैं और उनकी प्राप्ति शान्ति से संभव न हो तो युद्ध से भी उन्हें प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए। इसके समर्थक किव्यावेली (आस्ट्रिया के दार्शनिक मंत्री), जर्मन दार्शनिक नीत्के और मुस्लिम कवि इकबाल हैं। भारत में भी सनातनकाल से, विशेष रूप से राम, कृष्ण आदि महापुरुषों की जीवन-गाथाओं में यह सत्य दिखाई देता है। संसार में समता लाने के लिए जो लोग हिंसक क्रांति को ठीक बतलाते हैं, वे भी इसी कोटि में आयेंगे। प्रस्तुत पंक्तियों का भाव यह है कि युद्ध यानी, संहार का कृत्य किसी भी अवस्था में धर्म नहीं बन सकता। धर्म फूल और युद्ध अंगार। दोनों को एक ही माला में गूँथना संभव नहीं है।

वासना वहि ..... निकला। (पृ० 95)

अर्थ– मनुष्य का विवेक यह कहता है कि प्रत्येक कार्य को शांतिप्रिय उपायों से पूरा करना चाहिए। किन्तु उसके लिए धीरज की आवश्यकता है। जब मनुष्य का वह धैर्य टूट जाता है, तभी वह युद्ध में प्रवृत्त होता है, अर्थात् युद्ध की प्ररेणा वासना की विजय है।

फूटे ज्यों ..... छूटने लगा। (पृ० 97)

प्रसंग– इन पंक्तियों में भीम के पुत्र घटोत्कच द्वारा कौरव सेना के संहार का चित्रांकन किया है।

व्याख्या– कवि का कथन है कि भयानक आकृति वाला घटोत्कच जोर से गर्जना करता हुआ कौरव सेना पर इस प्रकार टूट पड़ा जैसे ज्वालामुखी पर्वत फट गया हो अथवा प्रलय-कालीन समुद्र में ऊँची-ऊँची लहरें गर्जना कर रही हों। घटोत्कच के युद्ध-स्थल में आते ही पाण्डव-सेना के पैर जमने लगे और भय के कारण कौरव सेना के पैर उखड़ने लगे। वह राक्षस का सामना न कर सकी और निरुत्साहित हो गई।

टिप्पणी– भीम ने हिडिम्बा नामक राक्षसी से विवाह किया था। घटोत्कच उसी का पुत्र था।

सप्तम सर्ग

शब्दार्थ (पृ० 101-127)

पृ० 101– भेरियाँ=युद्ध के बाजे। गहगहा उठा=गूंज उठा। स्वन्दन=रथ। रोर=शोर, आवाज। हूह=हुंकार। उच्छल=उमड़ता हुआ। क्रोधान्ध काल=क्रोध से पागल मृत्यु। पटह-कम्बु=युद्ध के नगाड़े और शंख। उल्लसित वीर=उत्साह से भरे वीर। क्षुब्ध=क्रोध से भरा।

पृ० 102– अंगार-वृष्टि=अंगारों की वर्षा। शुष्क=सूखा हुआ। कानन=वन, जंगल। तृण=तिनका। शस्त्र=हथियार। गति=चाल, रफ्तार। पुंजित=इकट्ठा किया हुआ। नवनीत=मक्खन। मसृण=चिकना। बद्ध=बँधा। लवा=पक्षी विशेष, बटेर। रोषण=क्रुद्ध, गुस्से में। सुपर्ण=गरुड़। रण-विपिन=युद्ध रूपी वन। निनाद=शोर की आवाज। क्षुब्ध=क्रोधित। लरजता=डगमगाता। समुत्साह=जोश सहित। समुद्वेलित=हलचल से पूर्ण। अथाह=बहुत गहरा, जिसकी थाह न पाई जा सके। सुयोधन=दुर्योधन। दुन्दुभि=नगाड़ा। नियति-प्रेरित=भाग्य की प्रेरणा से। कृतान्त=यमराज। कोक=चकवा। मुनि-कल्प=मुनियों के समान। काया=शरीर। शस्त्री=शस्त्रास्य से सज्जित। बिद्ध=छलनी होना।

पृ० 103– गहा=पकड़ा। ग्रीवा=गरदन। कौतुक=आश्चर्य, मजाक से। अतीव=अधिक। भीरु=डरपोक। युक्ति=उपाय। विप्र=ब्राह्मण। तरु-तले=वृक्ष के नीचे। निर्जन=जनशून्य, सुनसान स्थान। क्षात्रता=क्षत्रिय होना। प्रदाह=जलन, गर्मी। विपन्न=दुखी। ग्लानि=अपने से घृणा, पछतावा। निमज्जित=डूबे हुए। आमरण=जीवन रहने तक, जीवन भर। ग्रास=कौर। कुटिल=कठोर। शील=चरित्र। चेतनामयी=प्राण देने वाली। प्रतिमा=मूर्ति। इंगिन संकेत।

पृ० 104– पवि-तन=भीम का नाम, वज्र के समान शरीर वाला। काल-पृष्ठ=जिसकी पीठ पर काल विराजमान हो। रे सूतपुत्र !.... डरता है– पुस्तक के पीछे देखिये पृ० 138। भीति=भय। क्षयमान=क्षय, नष्ट होता हुआ। क्षणिक=थोड़ी देर रहने वाला। भंगुर=नश्वर, नाशवान। मृषा=झूठी। अतिशय=बहुत अधिक। बुभुक्षा=भूखा। वर सामन=वरदान सदृश। जूझता=लड़ता। सद्धर्भ=अच्छा धर्म। पंकिल=कीचड़ युक्त। सर=सरोवर। लोभ=लालच। मृत्तिका-मय=मिट्टी का बना, तुच्छ। हरेंगे=दूर करेंगे। पुरुष=कठोर। अन्तःपुर=रनिवास।

पृ० 105– खमंडल=आकाश लोक, सूर्य लोक। सोपान=सीढ़ी। ये चार..... सजाने को=पुस्तक के पीछे पृष्ठ 138 देखिये। कातर=दुखी। प्रच्छन्न=गुप्त, छिपा हुआ। महाबल=अत्यधिक शक्ति वाला। मकसद=उद्देश्य। सुरा=शराब, मदिरा। प्रलाप=व्यर्थ

की बातें। बानरी ध्वजा=अर्जुन के रथ पर हनुमान जी विराजते थे। इस कारण अर्जुन का नाम कपिंध्वज भी है। विद्युत=बिजली। शायक=बाण। सन्धानित=सन्धान करना, चढ़ाना, लक्ष्य किया हुआ। तूर्ण करो=जल्दी करो। लालसा=इच्छा।

पृ० 106– उच्छल=उछलता हुआ। पूरित=पूर्ण। उर-पारावार=हृदय-रूपी सागर। दंभोलि-नाद=इन्द्र के वज्र की कड़क के समान आवाज। विधि=विधाता। प्रकृति के अनल तत्त्व=क्रोध, युद्ध-भावना। पान=पीना। अथक=थकावट रहित। निर्धारित=निश्चित। विशिख-वहि-पूजित=बाणों की अग्नि द्वारा पूजा करना। मर्मच्छेदन=हृदय को छेदना। अतिकाल=बहुत समय। दर्ष=घमण्ड। मूढ़=मूर्ख। दिशाकाश=दिशा एवं आकाश।

पृ० 107– साधना-दीप्त वक्षःस्थल=कठिन तपस्या के तेज के कारण चमकता हुआ सोना। दुर्भेद्य=जिसे भेदना कठिन हो। अचल=दृढ़। अधर=ओठ। रौद्रता=भयंकरता। किंचित्=तनिक, थोड़ा। पृथानन्दन=पृथा अर्थात् कुन्ती का पुत्र, अर्जुन। शौर्य=वीरता, पराक्रम। प्रबुद्ध=यहाँ इसका अर्थ 'सचेत' होगा। प्रावृट् से=वर्षा ऋतु के मेघों के समान। तुलामध्य=तराजू के बीच। संतुलित=किसी एक ओर न झुकी हुई (Balanced)। मार्त्तण्ड-सदृश=सूर्य के समान। अन्तक=यमराज। मिस=बहाना। स्वतः=अपने आप। अपलक=टकटकी लगाकर देखना। शितिकंठों=दो शिवाजी। सरण का तट छूकर=मृत्यु के करीब पहुँच कर भी।

पृ० 108– निषंग=तरकस। विषधर भुजंग=जरीला साँप। विश्रुत=प्रसिद्ध। 'जन्म से पार्थ का शत्रु परम'–अर्जुन ने जब खांडव वन को जलाया था, तब अश्वसेन नामक सर्प की माता अपने बेटे को निगल कर आकाश में उड़ गयी, किन्तु अर्जुन ने उसका मस्तक बाण से काट डाला। सर्पिणी तो मर गयी, लेकिन अश्वसेन बचकर भाग निकला। अर्जुन से उसी बैर का बदला लेने के लिए अश्वसेन कुरुक्षेत्र की रण भूमि में आया था। बहुविध=अनेक प्रकार। हितकामी=भलाई चाहने वाला। शख्य=तीर का निशाना। वमन=उगलना। गरल=विष। संचित=इकट्ठा। प्रतिशोध=बदला। निष्ठा=विश्वास। अनायास=अचानक। सुकृत=अच्छे कार्य। साहाय्य=सहायता। स्यन्दन=रथ। कुटिल=जहरीले। क्षार=नष्ट।

पृ० 109– नर-भुजंग=मनुष्य रूपी सर्प। सनातन=सदैव रहने वाला। द्वेषान्ध=शत्रुता के कारण अन्धा। काकोदर=सांप (अश्वसेन)। अनन्त=अन्तहीन, असीम। निर्जरों=देवताओं, जो जरा (बुढ़ापा) से रहित हैं। विमान=जहाज, यान। आश=आशा। हताश=निराश। सीमित=घेरे में। पुर=नगर। सजह शत्रु=स्वाभाविक या पैदायशी दुश्मन। प्लावन=बाढ़। किंतिच भी=जरा भी।

पृ० 110– पौरुष=शक्ति। द्विरद=हाथी। बिहार=घूमना। कुंजर=हाथी। चिर=देर। अतुल=जिसकी तुलना न हो। गाण्डीव=अर्जुन के धनुष का नाम। अन्तर्नभ=हृदय का आकाश। विवस्वान=सूर्य। जाज्वल्यमान=चमकीला। तपोनिष्ठ=तपस्या में विश्वास रखने वाला। व्रतधारी=व्रत (प्रतिज्ञा) धारण करने वाला। मृत्तिका पुंज..... अधिकारी है–यद्यपि कर्ण का शरीर सभी मनुष्यों की तरह मिट्टी से बना है तथापि वह ज्योतिर्मय लोक का अधिकारी है। ज्योतियों के जग का=प्रकाशवान लोक का, स्वर्ग का। घोर समर=भयानक युद्ध।

पृ० 111– निर्भय=निडर। दिव्य=अलोकिक। समस्त=सारा। विक्रम-बल=पराक्रम, शक्ति। आह्वान=बुलाना। अर्जित=इकट्ठा किया हुआ। असंख्य=अगणित। सजग=जागृत, सावधान। चरम=बहुत अधिक। चमत्कार=हैरान कर देने वाला कार्य। दिनमणि=सूर्य। स्वच्छन्द=मुक्त, स्वतन्त्र। दंतावल=हाथी। घोषित=स्पष्ट रूप से कहा गया। समर शूर=युद्ध में वीरता दिखाने वाले, युद्धवीर। अगणित=असंख्य, जिनकी गणना न की जा सके। रुण्ड और मुण्ड=धड़ और सिर। आर्त्तनाद=दुःखी स्वर, चीत्कार। तिग्म=तीक्ष्ण, तेज। विशिख=बाण। गोविन्द-पार्थ=श्रीकृष्ण और अर्जुन।

पृ० 112– पैंजनी=पायजेब। रोर=शोर। ताँडव=शिवजी का प्रलयंकर नृत्य। व्यौम=आकाश। साकार=आकार सहित। पैठ=प्रवेश। हयों=घोड़ों। अबाधित=निर्बाध, बिना रुकावट के। धरित्री=पृथ्वी। शृंगार=सिंगार, शोभा। क्षुधा=भूख। भू=पृथ्वी। मेदिनी=पृथ्वी। मानव-प्रसू=मनुष्य को जन्म देने वाली। रुधिर=रक्त। पंक=कीचड़।

पृ० 113– अश्वों=घोड़ों। मही=पृथ्वी। चक्र=पहिया। दुःशक्ति=बुरी ताकत। विलक्षण=अनोखा। धरा=धरती, पृथ्वी। रथी से=महारथी कर्ण से। घात=चोट। कीच=कीचड़। भुवन=संसार। ग्रसे=पकड़ ले। पौरुष प्रबल=बलवती शक्ति।

पृ० 114– सलिल-आगार=जल का भंडार अर्थात् सागर। ग्रस्त=फँसा हुआ। अस्त-वयस्त=बिखरा हुआ। श्रवणकर=सुनकर। विश्व गुरु=संसार का गुरु। देशनन=उपदेश। एषणा=इच्छा। विनय=नम्रता। अकिंचन=तुच्छ, क्षुद्र। भुज बीच=बाँहों के बीच। शरासन=धनुष। अवसर=समय।

पृ० 115– नरोचित=मनुष्य के योग्य। हनन=मारना। कालाहार=मृत्यु का आहार अर्थात् भोजन। चिन्तना=सोचना। सभी दायित्व हरि पर डाल करके=शुभाशुभ कर्मो को कृष्ण के प्रति समर्पित करके। शिष्टी=आज्ञा। निःशस्त्र=शस्त्र के बिना। विशिख-संधान=बाण चलाना। निरत=लगा हुआ। निःसंबल=बेसहारा। विरथ=रथ के बिना। निर्वात्=शान्त, चुप। श्रवण कर=सुनकर।

पृ० 116– टुक=तनिक, थोड़ा। प्रहरण=शस्त्र-प्रहार। समर्पित=जिसके लिए अनुकूल सहमति प्राप्त हो (यहाँ 'धर्म के अनुसार' अर्थ होगा)। दमक=चमक। उजागर=उज्जवल, प्रकाशमान। पतन=गिरावट। नरोचित=मनुष्य के लिए उचित। रथचक्र=रथ का पहिया। भुवन=संसार। सत्कर्म=श्रेष्ठ कर्म।

पृ० 117– न्यायार्थ=न्याय के लिए। खिन्न=उदास। कुपित=क्रोधित। हलाहल=भयानक विष। लाक्षाभवन=लाख का भवन। सूवामा=नारी। वज्र=कठोर। शीलभूषित=शील की शोभा से युक्त। यती=सन्यासी। निष्काम=इच्छा के बिना। अरि को=शत्रु को। निहारा=देखा। हरि को=कृष्ण को। किंचित्=जरा भी। कुपित हो=गुस्से में आकर। प्रलापी=बकवासी।

पृ० 118– शकुनि=कौरवों का मामा, जिसने छल से जुए में पाण्डवों को हराया था। अपकर्म=बुरा काम, पाप। अवधि=तेरह वर्ष की अवधि। अधी=पापी। अर्धार्थ=धर्म के लिए। तजेंगे=छोड़ेंगे। यातना=कष्ट। निर्धिन=घिनौने, नीच। दुरित=छिपा हुआ। किल्विष=पाप, दोष। अन्य=दूसरे और। दहते=जलते। संबल=साधन, सहायक। मृषा=झूठे।

पृ० 119– भीरू=डरपोक, कायर। शायक=बाण। सुशोभन कर्म=अच्छे कार्य। अवसेर=देर। अपधर्म=बुरा धर्म। कुत्सित=घृणित। शिथिल=कमजोर, ढीला। किंचित=जरा भी। संहार=मार डाल।

पृ० 120– कृत्य=काम, कार्य। नरता=मनुष्यता। विरतकर=हटाकर। निहत कर=मार कर। चतुर्गुन=चौगुना। बलि=कुर्बानी। शिखंडी=एक नपुंसक या हिजड़ा। ढाल=रक्षा। ऋण=रक्ष। कृत्य=कार्य। महाभट=महान् योद्धा।

पृ० 120-121– गरल का कोष=जहर का खजाना। हलाहल=जहर। सुयोधन=दुर्योधन। कुटिल=बुरा। विकट=बुरी तरह। कीच=कीचड़। कलुष=पाप। अहं=अहंकार। द्रोहानल=युद्ध की आग। पातक=पाप। पूत=पवित्र। अन्तर्जगत=हृदय का संसार। शुभ्र=स्वच्छ, साफ। चेतना=विचार। वेदना=पीड़ा। मलिन=गन्दा। कनक=सोना। शुभ्र=उज्जवल। उर=हृदय।

पृ० 122– वधूजन=बहुएँ, छोटे भाई की पत्नी। रक्षण=रक्षा करना। निष्कृति=मुक्ति, छुटकारा। द्विधा=उलझन, दुविधा। लील=निगल। निर्वाण=मोक्ष। आलोक-स्यन्दन=प्रकाश का रथ, रश्मिरथ। बाजि=घोड़े। राजि=समूह। पद्=कमल। याग=यज्ञ। तंत्र=ढांचा, कल-पुर्जे। स्वजन=अपने रिश्तेदार। अभय=निडर। बेधता=काटता।

पृ० 123– विभाओं सूर्य की=सूर्य की किरणों का प्रकाश। प्रभा-मंडल=सूर्य। रोचि-भूषित=प्रभासज्जित। रश्मि-रथ=किरणों के प्रकाश का रथ–यहाँ कर्ण के पुण्य कार्यों की ओर संकेत है। सूर्यस्थ=सूर्य में स्थित। ग्रीवा=गरदन। एकात्म=एकाकार, लीन। बद्ध कर=अटका कर। शर=बाण। छिन्न=कटकर। आलोक=प्रकाश। तपन=सूर्य।

पृ० 124– सुर-यान=देवताओं के विमान। नतानन=मुँह को झुकाए। आदित्य=सूर्य। आर्त्त=दुःखी, लाल। निस्तार=छुटकारा, मुक्ति। प्रफुल्लित=प्रसन्न। दृगों=आँखों। मोद=खुशी। त्रास=भय। मुषल=लोहे के पैने अस्त्र। निर्मोध=अभेद्य, अचुक। पगा था=भरा था। शिला=पत्थर।

पृ० 125– निर्भीत=भय के बिना। गहन=गम्भीर। अवधानता=मन में धारण करना, ध्यान में लाना। हुंकार=गर्जना। तजता=छोड़ता।

पृ० 126– सुवरिष्ट=श्रेष्ठ। धर्मिष्ठ=धर्म में निष्ठा रखने वाला, धर्मात्मा। सत्यवादी=सच बोलने वाला। ब्रह्मण्य=ब्राह्मणों में आस्था रखने वाला। निष्कपट=निश्छल, छल कपट से रहित। दलित-तारक=दीनों को पार लगाने वाला। समुद्धारक=उद्धार करने वाला। त्रिया=स्त्री। सदय=दयालु। निःस्व=सर्वस्व हीन, चुपचाप। नर-कल्याण=मनुष्य मात्र की भलाई के लिए। त्राण=रक्षा। भू=धरती। मनुज-कुल=मानव वंश। विकराल=डरावना।

पृ० 127– विपक्षी=दूसरे पक्ष का शत्रु। विनत=विनम्र। निरत=लीन। जेता=जीतने वाला, विजयी।

कठिन स्थलों की व्याख्या (पृ० 101-127)

काटता ..... सागर अथाह। (पृ० 102)

प्रसंग– इन पंक्तियों में कर्ण के भयंकर शस्त्र-प्रहार द्वारा पाण्डव-सेना की होना वाली दुर्दशा का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– कर्ण क्रोधित होकर युद्ध-क्षेत्र में मानो शत्रुओं के सैन्य-रूपी वन को काटता हुआ आगे बढ़ने लगा। उसकी भयंकर गर्जना को सुनकर शत्रुओं की सेना प्रतिक्षण कांप उठती थी। शत्रु-सेना को व्याकुल एवं हतोत्साहित देखकर कर्ण को प्रोत्साहन मिला। उसके भुज-बल रूपी समुद्र में तरंगें उठने लगीं– अर्थात् कर्ण और अधिक वेग से शत्रु सेना का संहार करने लगा।

विशेष– 'रण-विपिन' और 'भुज-सागर' में रूपक अलंकार है।

इतने ..... मृदुल काया (पृ० 102)

प्रंसग– इन पंक्तियों में कर्ण और युधिष्ठिर के युद्ध का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– रण-भूमि में भयानक युद्ध करते हुए अचानक कर्ण के सामने भाग्य की कुटिल प्रेरणा से युधिष्ठिर आ गये। वह धर्मराज युधिष्ठिर पर यमराज के समान इस प्रकार टूट पड़ा, जिस प्रकार निरीह चकवे पर बाज टूट पड़ता है। कर्ण का सामना युधिष्ठिर क्षण भर भी नहीं कर सके। उसके भयानक प्रहारों से युधिष्ठिर के शरीर पर जो आघात हुए, उन्हें युधिष्ठिर का मुनियों जैसा कोमल शरीर सहन न कर सका।

विशेष– 'टूटा कृतान्त-सा' में उपमा अलंकार, 'कोक पर टूटे पड़े जिस तरह बाज'- में उदाहरण अलंकार और 'मुनि-कल्प मृदुल काया' में उपमा अलंकार है।

टिप्पणी– इस काव्य में कवि ने अनेक स्थलों पर कर्ण के लिए 'राधेय' शब्द का प्रयोग किया है। कुन्ती ने जब लोक-लाज के भय से नवजात शिशु का परित्याग कर दिया जब अधिरथ नामक सूत की पत्नी राधा ने उसका पालन-पोषण किया। इस कारण कर्ण के लिए 'राधेय' शब्द का प्रयोग किया गया है।

इस ओर कर्ण ..... विकट युद्ध (पृ० 107)

प्रसंग– कर्ण और अर्जुन के भयंकर युद्ध का वर्णन प्रस्तुत पंक्तियों में किया गया है।

व्याख्या– एक ओर सूर्य के समान तेजस्वी कर्ण है और दूसरी ओर यमराज के समान भयानक अर्जुन। ये दोनों परस्पर संग्राम में ऐसे जूझ रहे हैं मानो युद्ध के बहाने स्वयं प्रलय ही युद्धभूमि में साकार हो गयी हो। इन दोनों के भयानक संग्राम को देखकर कौरव और पांडव सेनाएँ आश्चर्यचकित हो गई। वे आपस में लड़ना भूलकर अर्जुन और कर्ण का युद्ध निष्पलक दृष्टि से देखने लगीं। इस समय ऐसा लगने लगा मानो दो शंकर आपस में भयंकर युद्ध कर रहे हों।

विशेष–'मार्त्तण्ड सदृश' और 'अन्तक समान' में उपमा अलंकार है।

अन्तिम चरण में 'कर्ण और अर्जुन' (उपमेय) में शिव (उपमान) का आरोप होने से रूपक अलंकार है।

काकोदर ..... सामने के जल को (पृ० 109)

प्रसंग– कर्ण ने अश्वसेन नामक सर्प की सहायता लेकर अर्जुन को मारने से इन्कार कर दिया। इन पंक्तियों में कर्ण द्वारा सर्प को दुत्कार देने के उपरान्त, उसके भयानक युद्ध एवं शत्रु सेना के नाश का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– अश्वसेन नामक सर्प को विदा करने के बाद कर्ण भीषण गर्जना करते हुए युद्ध-स्थल में आगे बढ़ा। उस वीर की भयंकर गर्जना से असीम आकाश गुंजरित हो गया और देवताओं के यान डगमगा गए। भयानक तूफान के समान कर्ण शत्रु-समूह को अपने बल से पीछे की ओर ढकेलता हुआ आगे बढ़ने लगा। जैसे प्रलय के जल की वेगवती धारा प्रवाह के साथ सामने के जल को बहा ले जाती है, उसी प्रकार कर्ण अपने अपार-बल से शत्रु सेना को खदेड़ता प्रतीत हो रहा था।

विशेष– कर्ण के पराक्रम-वर्णन में अतिशेयोक्ति है– 'अंबर..... विमान।' उसके अप्रतिहत वेग को बतलाने के लिए 'प्लावन' का उपमान-रूप में विधान बड़ा सार्थक है।

रहा दीपित ..... शृंगार था जो (पृ० 112)

प्रसंग– प्रस्तुत पद्यांश में कर्ण की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या– कर्ण को जब अपना अन्तिम समय आ जाने का आभास हुआ तो उसने सारथी शल्य से रथ को अर्जुन के रथ के सामने ले जाने के लिए कहा। भाग्य की कुटिल गति के विषय में क्या कहा जा सकता है? कर्ण का जीवन धर्म की ज्योति से सदा चमकता रहा था। उसके कर्म सूर्य की प्रभा के समान उज्जवल एवं निष्पाप थे। वह आजीवन निर्बाध दान देता रहा था। अपने उदात्त चरित्र के कारण उसने पृथ्वी की शोभा को बढ़ाया, लेकिन आज वही कर्ण उसी पृथ्वी द्वारा काल का ग्रास बनने जा रहा है।

विशेष– इन पंक्तियों में एक ही उपमेय (कर्ण) का अनेक प्रकार से वर्णन होने के कारण 'उल्लेख' अलंकार है।

महानिर्वाण ..... जो फूलता है (पृ० 112)

प्रसंग– जब कर्ण को जीवन के अन्तिम क्षणों का आभास हुआ तो उसने अपने तेजस्वी शरीर को आकाश में भेजने का निश्चय किया। प्रस्तुत पंक्तियों में उसके इसी संकल्प का वर्णन है।

व्याख्या– कर्ण कहता है– अब मोक्ष का क्षण निकट आ गया है। मुझे सूर्यलोक ले जाने के लिए प्रकाश का रथ आ रहा है। यह रथ मेरी तपस्या के यन्त्रों से बना हुआ है, जप-यज्ञ आदि उसके कल-पुर्जे हैं। इसमें मेरे यश के घोड़े जुते हैं तथा पुण्य-चरित्र की जो उज्जवल किरणें निकल रही हैं वे मानो लगाम हैं। जीवन भर जो शुभ कार्य मैंने किए हैं, वही उसमें कमल के फूल के समान चमकते हुए लटक रहे हैं।

विशेष– प्रस्तुत अवतरण में कर्ण को पुण्य रूपी किरणों के रथ पर सूर्यलोक की ओर गमन करते दिखाया गया है अतः 'सांग रुपक' अलंकार। इस काव्य का नाम 'रश्मिरंथी' भी इसी कारण रखा गया है।

हृदय का ..... हृदय था। (पृ. 126)

प्रसंग– कर्ण के जीवन-बलिदान के उपरांत श्रीकृष्ण युधिष्ठिर से उसके चारित्रिक गुणों की प्रशंसा करते हैं।

व्याख्या– श्रीकृष्ण कह रहे हैं– हे युधिष्ठिर ! कर्ण का हृदय छल-कपट से रहित था। आजन्म उसने पुण्य कार्य किए वह दीन-दुखियों के कष्ट दूर करने वाला तथा नारी जाति का रक्षक था। उसके समान कोई भी दानी नहीं हुआ। उस दयावान का हृदय वास्तव में अनोखा था।

विशेष– यहाँ 'उल्लेख' अलंकार द्रष्टव्य है।

संभावित प्रश्न

1. ''कर्ण-चरित्र का उद्धार एक तरह से नई मानवता की स्थापना का ही प्रयास है'' इस कथन का 'रश्मिरथी' काव्य के आधार पर मूल्यांकन कीजिए।
2. 'रश्मिरथी' काव्य के कथानक का सार एवं समीक्षा लिखिए।
3. निम्नलिखित की सप्रसंग व्याख्या कीजिये–

   उड़ती वितर्क-धागे पर चंग-सरीखी,
   सुधियों को सहती चोट प्राण पर तीखी,
   आशा-अभिलाषा-भरी, डरी भरमायी,
   कुन्ती ज्यों त्यों जाहवी तीर पर आई।
4. 'रश्मिरथी' के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।

(2) उपन्यास : महाभोज (मन्नू भंडारी)

डॉ. हर्षबाला शर्मा
वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी-विभाग,
इन्द्रप्रस्थ कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय

लेखिका का परिचय

मन्नू भंडारी हिन्दी कथा साहित्य की अग्रणी रचनाकार हैं। भाव बोध से लेकर पात्रों के चरित्र के अनेक आयाम इनकी रचनाओं में मिलते हैं। अपने पात्रों के साथ-साथ चलने वाली व उनके व्यक्तित्व के बारीक पहलुओं को उजागर करती, विश्लेषित करती "मन्नू" की अधिकांश रचनाएँ अपने भीतर से पाठक के भीतर तक एक नया रचना संसार रचने में सक्षम हैं।

कथा साहित्य की इस विशिष्ट लेखिका का जन्म 3 अप्रैल 1931 में मध्यप्रदेश के भानपुरा नगर में हुआ था। कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्नातक (1949) करने के पश्चात् इन्होंने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से 1952 में एम.ए. किया तथा 1952 में ही 'बालीगंज शिक्षा सदन' को अपने कर्मक्षेत्र के रूप में चुन लिया। 1961 तक वहाँ पढ़ाने के पश्चात् इन्होंने रानी बिड़ला कॉलेज में तीन वर्ष अध्यापन कार्य किया और अन्ततः 1964 में दिल्ली विश्वविद्यालय के मिरांडा हाउस (कॉलेज) को अपनी कर्म-स्थली के रूप में चयनित किया। 1991 तक अवकाश प्राप्त करने तक मन्नू भंडारी अपने अनुभवों और सृजनात्मक संभावनाओं को इसी स्थान पर रूपाकार देती रहीं। 1992-1994 तक वे दो वर्ष उज्जैन में प्रेमचंद सृजनपीठ की निदेशिका भी रहीं।

रचनात्मकता की धनी मन्नू भंडारी ने अपने अधिकांश पात्रों का चयन अपने आस-पास देखे चरित्रों में से किया है। उनके घर में यद्यपि समाज सुधार से जुड़े घटनाक्रम चलते रहते थे, जीवन्तता की भी कमी नहीं थी परन्तु साहित्यिक आबोहवा का नितान्त अभाव था। परन्तु फिर भी मन्नू भंडारी ने बिना किसी प्रेरणा या प्रोत्साहन के अपनी पहली कहानी लिखी– 'मैं हार गई' जिसे आज भी उनकी श्रेष्ठ कहानी माना जाता है। उनका रचनात्मक लेखन इस प्रकार है:

कहानी संग्रह : एक प्लेट सैलाब (1962)
मैं हार गई (1957)
तीन निगाहों की एक तस्वीर
यही सच है (1966)
त्रिशंकु,
आँखों देखा झूठ,
नायक खलनायक विदूषक (2002)

उपन्यास : आपका बंटी (1971)
महाभोज (1979)

नाट्य रूपान्तर : बिना दीवारों का घर

प्रयोगात्मक उपन्यास : एक इंच मुस्कान (1962) जिसे 'मन्नू' ने राजेन्द्र यादव के साथ लिखा था और जिसे सफलता भी बहुत अधिक मिली।

आत्मकथ्य : एक कहानी यह भी।

आज भी यद्यपि मन्नू भंडारी का 'आत्मकथ्य' पढ़ने से ज्ञात होता है कि पिछले कुछ वर्षों से नया न लिख पाने की बेचैनी उनके भीतर की छटपटाहट को बढ़ा देती है परन्तु रचनाकार की यह छटपटाहट ही उसकी प्रसव-पीड़ा है जो हर बार कुछ बेहतर को जन्म देने की ख्वाहिश रखती है।

महाभोज :

महाभोज उपन्यास आज के राजनीतिक परिवेश और उसमें बदलती आस्थाओं का एक प्रामाणिक दस्तावेज है। राजनीति आजकल विषमनीति बन गई है जिसने शब्दों के अर्थ ही नहीं बदले, संभावनाएँ भी बदल दी हैं। आस्थाओं का क्षय, टूटता जीवन, बिखरती मानवीयता और इन सबके ऊपर केवल राजनीति जो अब स्वार्थनीति का पर्याय बन चुकी है – दिखाई

देती है। आज के इस राजनीतिक माहौल में केवल उनके हक सुरक्षित है जो स्वयं आतंक फैलाते हैं अन्यथा बाकी किसी वर्ग के जीने के अधिकार भी मुहैय्या नहीं। **यह उपन्यास ऐसे ही लोगों के आंतक के खिलाफ खड़े होने की जमीन तैयार करता है।** महाभोज उपन्यास आरम्भ करने से पूर्व मन्नू भंडारी द्वारा ही लिखी पंक्तियाँ हैं–

''.....अपने व्यक्तिगत दुख-दर्द, अंतर्द्वन्द्व या आंतरिक 'नाटक' को देखना बहुत महत्त्वपूर्ण, सुखद और आश्वस्तिदायक तो मुझे भी लगता है पर जब घर में आग लगी हो तो सिर्फ अपने अंतर्जगत में बने रहना या उसी का प्रकाशन करना क्या खुद ही अप्रासंगिक, हास्यास्पद और किसी हद तक अश्लील नहीं लगने लगता? संभवतः इस उपन्यास की रचना के पीछे यही प्रश्न रहा हो। इसे मैं अपने व्यक्तित्व और नियति को निर्धारित करने वाले परिवेश के प्रति ऋण-शोध के रूप में ही देखती हूँ।''

लेखिका ने किसी अन्तःजगत में लीन होने के स्थान पर अपने घर, अपने समाज में लगातार बढ़ रही अनैतिकता, राजनीति के नाम पर आतंकनीति पर ध्यान केन्द्रित किया और इस उपन्यास की रचना की। लेखिका सामाजिक सरोकरों से परे होकर अपनी कलम को व्यक्तिगत थाती नहीं बनाना चाहती थी इसलिए उन्होंने इस उपन्यास को रूपाकार दिया।

लेखिका ने स्वयं अपने आत्मकथ्य में इस रचना की पृष्ठभूमि पर विस्तार से चर्चा की। 1977 में घटी अमानुषिक घटना का उल्लेख करते हुए वह बताती हैं कि उन्होंने किसी पत्रिका में पढ़ा कि कई हरिजनों को पेड़ों से बांधकर जिंदा जला दिया गया था। यह घटना अत्यन्त लोमहर्षक और क्रूरता में भी क्रूरतम थी– ''इस घटना की क्रूरता की और बर्बरता की ..... गाँव के कण-कण में व्याप्त उस दहशत की जिसने सबके मुँह पर ताले जड़ दिए थे ..... रोम-रोम को दहला देने वाला वर्णन पढ़ा तो मैं ऊपर से नीचे तक थरथरा गई.....।''

उन्होंने अपनी डायरी में इस प्रसंग को लिखा और भावुक मन ने बार-बार इस पर अपना प्रतिरोध जताने के लिए प्रेरित भी किया परन्तु मन्नू भंडारी बिना वैचारिक आधार के रचना लिखना नहीं चाहती थीं। परन्तु जब उन्हें ज्ञात हुआ कि उस हत्यारे को सजा भी हुई और पैरोल पर छूटकर उसने चुनाव भी भारी बहुमत से जीता तब लेखिका को साधारण मनुष्य की भाँति राजनीतिक व्यवस्था से विश्वास उठता हुआ-सा प्रतीत हुआ। वे लिखती हैं– ''साठ-गाँठ, छक्के-पंजे, धन-बल, बाहुबल पर टिकी हमारी इस चुनाव प्रक्रिया के चलते यदि ऐसे लोग अमानवीय बर्बरताओं के कारण सत्तासीन हों तो आश्चर्य क्या?''

वैचारिक प्रक्रिया का आधार मिलने पर ही लेखिका ने इस उपन्यास को रचा तथा अन्त तक अपने आशावाद को बचाए रखा। 'महाभोज' उपन्यास के रूप में तो सफल रहा ही, आज भी यह टूट जाने की हद तक पतनशील राजनैतिक माहौल में भी आशावाद का एक संकेत देता ही है। हिंदी रंगमंच की प्रसिद्ध निर्देशिका अमाल अल्लाना ने इसके प्रकाशन के कुछ समय बाद इसका मंचन भी किया जो अत्यन्त सफल भी रहा।

सारांश

'महाभोज' राजनीतिक गिद्धों द्वारा किया जाने वाला एक ऐसा भोज है जिसमें हाल-फिलहाल मृत हुए व्यक्तियों की लाशों को नोंचकर उन्हें परम तृप्ति मिलती है। उपन्यास का आरम्भ बिसेसर की लाश मिलने की घटना से होता है। बिसेसर कोई महत्त्वपूर्ण राजनीतिक नाम वाला व्यक्ति नहीं बल्कि अनाम से लगने वाले 'सरोहा' नाम के गाँव का एक मामूली-सा आदमी है **जो अपनी मामूलियत को भूलकर गैर-मामूली हरकत करने लगा था अर्थात पढ़कर-लिखकर गाँव वालों को जगाना चाहता था। उनके भाग्य बदलने के सपने देखा करता था।**

यूँ तो गाँव में कहे-अनकहे कोई-न-कोई घटना होती ही रहती थी। कुछ दिन पहले हरिजन-टोले के सभी लोगों को किसी ने जलाकर मार दिया पर फिर सब कुछ शान्त हो गया। बिसेसर की मौत से भी कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता पर चूँकि विधानसभा का उपचुनाव शीघ्र ही होने वाला था और चुनाव के दिनों में घटी ऐसी घटनाएँ सत्तारूढ़ पार्टी का सिरदर्द बन जाती हैं जबकि विपक्ष के लिए यह ऐसा हाथ आया अवसर होता है जिसे भुनाने का मौका वह चूकना नहीं चाहता। बिसेसर की मौत (हत्या) ऐसी ही एक घटना है।

इस उपन्यास में सतारूढ़ दल के मुख्यमंत्री हैं– **दा साहब** जिनका परिचय उनके व्यक्तित्व की भव्यता से ही प्राप्त हो जाता है। शरीर पर फालतू चर्बी नहीं है। दीखती है तो केवल गरिमा। तड़क-भड़क, ताम-झाम न तो व्यक्तित्व में है न ही निजी कमरे में। दूसरी ओर विपक्ष के नेता है– **सुकुल बाबू** जो लगभग दस वर्ष तक सत्तासीन रहे परन्तु अब सत्ता ने उनसे ऐसा मुख मोड़ा कि उसे वापस पाने के लिए वे कोई भी उपाय करने के लिए तैयार हैं। देखने में ऐसे कुछ खास नहीं। साँवला रंग, नाटा कद, थुलथुल शरीर। न सौम्य न संयत। सुरा-सुन्दरी में रत। **पर रूप रंग से कोई अन्तर नहीं पड़ता राजनीतिक क्षेत्र में। जोड़-तोड़, साठ-गाँठ में माहिर।**

इन दोनों व्यक्तित्वों के बीच अनेक राजनीतिक चालें हैं, गठजोड़ हैं। दा साहब चाहते हैं कि उनका जीवन भर का सेवक उपचुनाव जीते वहीं दूसरी ओर सुकुल बाबू स्वयं इस चुनाव में खड़े हो रहे हैं। यह जीत तय करेगी कि अगली बार मुख्यमंत्री का पद किसे प्राप्त होगा।

प्रत्येक दल में असंतुष्टों की संख्या अवश्य होती है। ऐसे ही असंतुष्ट हैं– **लोचन भैया**। वास्तविक नाम है त्रिलोचनसिंह रावत। परन्तु प्रेम से सभी लोचन भैया ही कहते हैं। पार्टी के भीतर भी कभी-कभी कोई पात्र चरित्र को इस हद तक पतनशील नहीं कर पाता कि वह सत्य-न्याय के सभी पक्ष भूल जाए। ऐसे पात्र यदा-कदा ही होते हैं पर भाग्य अथवा दुर्भाग्य से लोचन भैया एक ईमानदार प्रतीत होते पात्र हैं पर इसका परिणाम उन्हें शीघ्र ही प्राप्त होता है। दा साहब उन्हें बर्खास्त करके पार्टी से निष्कासित करते हैं व शिक्षा मंत्री का पद चंद रुपयों के लिए बिकने वाले **राव** को दे दिया जाता है।

मीडिया की भूमिका पर भी लेखिका विचार करती हैं। मीडिया का निष्पक्ष होकर पक्ष–विपक्ष की तस्वीर जनता के सम्मुख प्रस्तुत करने का कार्य होता है परन्तु जंगलराज में मीडिया भी उसी के साथ होता है जिसके पास शक्ति है। यही कारण है कि **दत्ता बाबू** के 'मशाल' पत्र के लिए दा साहब कागज के कोटे को डबल करवा देते हैं और 'मशाल' से आग के बजाय फूल बरसने लगते हैं। दा साहब का स्तुतिगान करता यह पत्र बिसेसर की हत्या को भी दा साहब के कहे अनुसार आत्महत्या बना देता है।

देश और जनता की रक्षक (!) पुलिस भी मंत्री जी के कहे अनुरूप चलती है। डी०आई०जी० को प्रमोशन चाहिए। हर व्यक्ति परम स्वार्थ में रत होकर शीघ्रातिशीघ्र आगे बढ़ना चाहता है चाहे इसके लिए उसे नैतिक मूल्यों की हत्या किसी भी सीमा तक करनी पड़ी। ऐसा नहीं है कि ईमानदार व्यक्तियों की संख्या नहीं परन्तु या तो वे न्यूनतम हैं अथवा व्यवस्था उन्हें समाप्त कर देती है। यहाँ भी सक्सेना जो एस०पी० के पद पर तैनात हैं आरम्भ में तो अपनी अन्तरात्मा की बात अनसुनी करते हैं पर धीरे-धीरे व्यवस्था से समझौता करने से इन्कार कर देते हैं और सही रिपोर्ट बनाते हैं जिसमें दा साहब का पाला हुआ **जोरावर ही** विसेसर का हत्यारा ठहरता है। परिणामस्वरूप उनका तबादला कर दिया जाता है। सक्सेना निर्णय लेते हैं कि वे सच का साथ देंगे पर अंत तक कोई सुखद परिणाम दिखाई नहीं देता।

इस बीच में सुकुल बाबू अपनी पार्टी की ओर से एक जबर्दस्त भाषण और रैली की तैयारी करते हैं जिससे वे बिसेसर की हत्या को भुना सकें और **'हीरा'** को सांत्वना देकर समस्त गाँव की सहानुभूति अपनी ओर करके उसका राजनीतिक लाभ उठा सकें। दा साहब और भी अधिक कुशल राजनीतिज्ञ हैं। सुकुल बाबू के भाषण के पश्चात् वे स्वयं **हीरा** (बिसेसर का पिता) को लेकर मंच पर आते हैं और उसी के हाथ से घरेलू-उद्योग-योजना का शुभारम्भ करवाते हैं और स्वयं मंच पर से बिसेसर की हत्या को आत्महत्या सिद्ध कर देते हैं। विरोध की भाषा दा साहब को स्वीकार नहीं। जोरावर उनका अपना व्यक्ति है उसे बचाना वह अपना फर्ज मानते हैं पर जोरावर भी यदि उनके खिलाफ सोचने की हिम्मत भी करे तो वह उसे भी समाप्त करवा सकते हैं। उनकी ताकत के सामने खड़े होने की शक्ति किसी में नहीं। **लखन** जैसे अपढ़ को वह सरोहा से खड़ा करते हैं। **विरोध करने पर लोचन को बर्खास्त करते हैं, राव को खरीदते हैं और सक्सेना का ट्रांसफर करवाते हैं और सबसे बड़ी बात पहले बिसेसर की हत्या को आत्महत्या सिद्ध करते हैं और बाद में उसी के परम मित्र, एकमात्र आवाज उठा सकने वाले बिंदा को ही हत्यारा सिद्ध कर देते हैं।**

कानून, व्यवस्था, प्रशासन की धज्जियाँ उड़ाते हुए वह बिंदा जैसे सशक्त चरित्र की आवाज कुचलते हैं। बिंदा बिसेसर का मित्र भी था और उसकी बचपन की दोस्त रुक्मा का पति भी। बड़ी सरलता से रुक्मा को बिसेसर की प्रेमिका सिद्ध कर दिया जाता है और अपनी पत्नी के प्रेमी की हत्या करने के वाजिब कारण के आधार पर बिंदा को हत्यारा घोषित किया जाता है। बिंदा अंत तक लड़ता है पर इस व्यवस्था में किसी की कोई सुनवाई नहीं।

उपन्यास के इस अंत में भी लेखिका ने कुछ सकारात्मक संकेत दिए है यथा–लोचन, बिंदा और सक्सेना का चरित्र। **एक-एक करके व्यवस्था से लड़ने पर व्यक्ति तो हार सकता है पर ईमानदार मानसिकता नहीं। यह संकेत इस उपन्यास के आशावादी अन्त को पाठक के भीतर भी उतार देता है।**

उपन्यास का नामकरण

उपन्यास का शीर्षक है– **महाभोज**। एक ऐसा महाभोज जिसमें सबका अपना-अपना हिस्सा है। अपने-अपने हिस्से की सुविधाएँ लेने के लिए साधारण व्यक्ति का सर्वस्व भी हड़पना पड़े तो कोई संकोच नहीं। **राजनीति व्यक्ति को या तो अत्यन्त साधारण बना देती है या असाधारण। असाधारण लगने वाले व्यक्तित्वों पर किसी चीज का कोई प्रभाव नहीं होता क्योंकि उनकी खाल गेंडे जैसी सख्त हो चुकी होती है।** ऐसे ही अनेक पक्ष-विपक्ष के असाधारण प्रतीत होते और बिसू

की मौत को भुनाने के लिए तैयार बैठे राजनेताओं को अपनी विजय पर अडिग विश्वास होता है। **इस विश्वास के आधार पर ही महाभोज की तैयारी होती है।**

'महाभोज' व्यंग्यात्मक शीर्षक है जो अपने भीतर अर्थ की अनेक गहरी परतें छिपाए हुए है। 'भोज' किसी खुशी के अवसर पर दिया जाता है। ऐसे अवसर पर महाभोज होता है जब अनेकानेक कामनाओं की पूर्ति हुई है। यह पूर्ति साधारणतया अपने साथ सभी के सुख का भाव लेकर आती है परन्तु उपन्यास का महाभोज स्वार्थी, शातिर और धूर्त लोगों का महाभोज है जो इस भोज में स्वादिष्ट व्यंजनों का नहीं बल्कि जनता के लहू का स्वाद लेने में लगे हैं। यह महाभोज कई स्तरों पर है यथा-

दा साहब सुरुचि सम्पन्न राजनेता है। सबको धराशायी करके भी वह मुख पर गर्व का भाव नहीं लाते। केस का निर्णय कर देने के पश्चात् 'भाप स्नान' करके पत्नी के साथ लंगड़ा आम और केसर का संदेश खाकर परम तृप्त होने व प्रसन्न भाव के साथ वे अपने महाभोज को मना रहे हैं **वहीं** सरोहा गाँव में जोरावर की चौपाल पर दस बारह लोगों का जमावड़ा है। स्कॉच की बोतल, सींक कबाब और पनीर मंगाया गया है और लखन की होने वाली विजय का उत्सव मन रहा है। **तीसरी** ओर श्री और श्रीमती सिन्हा अपने घर पर कनात और शामियाने लगाकर श्री सिन्हा के आई०जी० बनने के अवसर पर दावत का आयोजन कर रहे हैं। ड्रिंक पर ड्रिंक, कम से कम बीस पच्चीस हजार का हार पहनी मिसेज सिन्हा, सामिष निरामिष भोजन का आन्नद सभी ले रहे हैं **चौथी** ओर दत्ता बाबू को दा साहब की कृपा से कागज के डबल कोटे का परमिट मिल गया है और इसी खुशी में वे प्रेस में मिठाई बाँट रहे हैं। वहीं **पाँचवी** ओर सुकुल बाबू की शानदार रैली के उपलक्ष्य में और इसे भविष्य की जीत का संकेत मानकर विपक्ष भी अपनी आगामी जीत का उत्सव मना रहा है।

रह गए हैं तो केवल साधारण ग्राम वासी, उनके बीच पसरा, अनकहा क्रोध, गिरफ्तार बिंदा, सस्पेण्ड सक्सेना, आँसू बहाता हीरा और गर्भवती रुक्मा..... जिसके आँसू रह–रहकर आँखों से बाहर आ जाते हैं। ये सब 'महाभोज' के सहभागी नहीं हैं। न ही इनका कोई अस्तित्व है. **पर यही हैं वे जिनका सब-कुछ छीनकर ही इस 'महाभोज' का आयोजन हो रहा है।**

नामकरण पूर्णतया सार्थक है, व्यंग्यात्मक तीक्ष्ण धार और मार से युक्त और सम्प्रेषण में पूर्ण सक्षम।

समस्याएँ

महाभोज उपन्यास आपात्काल की पृष्ठभूमि पर लिखा गया हैं। आपात्काल में तानाशाही का क्रूर चेहरा सभी ने देखा। अभिव्यक्ति की मनाही, स्वातन्त्र्य का हनन, मानवीय मूल्यों पर प्रश्नचिह्न लगाने वाले अनेक निर्णय उस काल में पारित किए गए। विरोध करने वालों को जेलों में भर दिया। जयप्रकाश नारायण ने इन्दिरा गाँधी के निर्णयों का विरोध किया परिणाम स्वरूप उन्हें भी जेल जाना पड़ा। बुद्धिजीवियों, पत्रकारों और स्वतंत्र चिंतको के लिए यह मरण काल था। महाभोज में इस स्थिति से उत्पन्न राजनीतिक, मानवीय, सामाजिक त्रासदी का जिक्र मिलता है। संविधान के साथ खिलवाड़ करने वाले ही राजनीतिक प्रभुता के अधिकारी बन गए थे। लोकतान्त्रिक व्यवस्था का ऐसा अवमूल्यन और वह भी तानाशाही तरीके से बहुत बड़ा उदाहरण है– आपात्काल।

पश्चिम के प्रसिद्ध दार्शनिक और राजनीतिज्ञ प्लेटो ने लोकतंत्र को मूर्खो का तंत्र माना है परन्तु यह मूर्खो का तंत्र तब बनता है जब चारों ओर अशिक्षा, गरीबी, भुखमरी फैली हो और सरकार अपने खिलाफ आवाज उठाने वालों को कुचल देती हो। आपात्काल की यह समस्त झलकियाँ इस उपन्यास की प्रासंगिकता को तय करती हैं।

यह उपन्यास दो छोरों पर अवस्थित है– एक छोर पर दा साहब, सुकुल जी, बिहारी भाई, पांडे जी, लखन, जोरावर जैसे लोग हैं जो हरिजनों, श्रमिकों और गरीबों का' हक छीन रहे हैं और वह भी डंके की चोट पर। दूसरी ओर हैं– बिंदा और बिसेसर जैसे लोग जो स्वयं गरीब होते हुए भी परिवर्तन के लिए शिक्षा के महत्त्व का अनुभव करते हैं। हरिजनों-दलितों के हालात बदलने के लिए उन्हें शिक्षित करना चाहते हैं पर सदियों से 'राज' करने वाली मानसिकता को यह स्वीकार नहीं। परिणाम बिसेसर को मार दिया जाता है और बिंदा को उसकी हत्या के लिए जेल हो जाती है।

जोरावर गुंडा है–बाहुबली, लठैत जिसका प्रयोग दा साहब आतंक फैलाने या जातिवाद का डंका पिटवाने के लिए करते हैं **लेकिन यहाँ लेखिका एक सत्य का उद्घाटन करती हैं कि दा साहब जैसे राजनीतिज्ञ इन गुंडों का इस्तेमाल तो करते हैं पर इन्हें भी अपने बराबर अपने समान जगह नहीं देते।** जोराबर चुनाव लड़ना चाहता है पर दा साहब उसे उसी के हथियारों से समझाकर शान्त कर देते हैं।

राजनीतिक अवसरवादिता और राजनीतिज्ञों की अन्तरात्मा के खोखलेपन को यह उपन्यास बखूबी उभारता है। प्रत्येक राजनेता का उद्देश्य अपनी कुर्सी बचाए रखना है। इसके लिए वह चरित्र-पतन की किसी भी सीमा तक जा सकता है।

आपात्काल का एक मात्र उद्देश्य था– अपनी गद्दी बचाए रखना जिसकी कीमत जनता को चुकानी पड़ी। यहाँ दा साहब को अपनी गद्दी भी बचानी है, विधानसभा उपचुनाव में अपनी साख भी कायम करनी है, सुकुल बाबू को भी नीचा दिखाना है और बिगड़ती परिस्थितियों को भी काबू करना है। अवसरवादिता के सिद्धान्त की बखूबी पहचान करने वाले दा साहब जनता के बीच जाते हैं, हीरा के हाथों घरेलू-उद्योग-योजना का आरम्भ कराते है, बिसेसर के हत्यारे को पकड़वाने का दावा करते हैं और इस बीच में जातिगत आधार पर मिलने वाले वोटों को भी अपने पक्ष में जुटा लेते हैं।

प्रत्येक राजनेता अवसरवादिता की घुट्टी पीकर ही मानो 'राज' 'नीति' में प्रवेश करता है। सुकुल बाबू जनता को अपने पक्ष में करने के लिए जोरदार भाषण देते हैं। राव साहब, चौधरी साहब दा साहब से सीट का मोलभाव करते हैं। 'राव' की उपयोगिता को समझते हुए दा साहब उसे शिक्षा मंत्री का पद देते हैं जबकि चौधरी को समझा-बुझाकर शान्त कर दिया जाता है। लोचन बाबू अवसरवादी राजनीति से परहेज करते हैं तो उन्हें मंत्री पद से बर्खास्त कर दिया जाता है।

अवसरवाद का यही रूप मीडिया, पुलिस, प्रशासन में भी देखा जा सकता है। आपात्काल में पत्रों (समाचार) पर पाबंदी लगा दी गई थी ताकि व्यवस्था के खिलाफ कुछ भी कहा न जा सके। यहाँ दा साहब दत्ता बाबू को अपने कर्तव्यों की पहचान कराते हैं और दत्ता बाबू भी अपना लाभ देखकर दा साहब का ही स्तुतिगान करने लगते हैं। **मीडिया जब-जब अपने कर्तव्य की अनदेखी करता है, तब-तब जनता को ही उसकी भरपाई करनी पड़ती है। मीडिया उसी का मुँह देखता है जिसके हाथ में सत्ता होती है। यहाँ इसी प्रवृत्ति की ओर संकेत किया गया है।**

दलितों-श्रमिकों की स्थिति हमारे समाज में सदा से ही दयनीय रही है। दलितों के विकास के लिए आज भी उच्च वर्ग प्रतिबद्ध नहीं है। दलितों की बढ़ती शक्ति उन्हें अपनी आँखों में किरकिरी के समान प्रतीत होती है। यहाँ भी अनेक संघर्ष को कुचलने के लिए जोरावार जैसी पेशेवर ताकतों का प्रयोग दिखाया गया है। जोरावर दलितों को अधिकार दिए जाने की चर्चा भी स्वीकार नहीं कर सकता। वह दा साहब की 'घरेलू' उद्योग-योजना-को स्वीकार नहीं कर पाता और कहता है

"इन हरिजनों के बाप-दादे हमारे बाप-दादों के सामने सिर झुकाकर रहते थे। झुके-झुके पीठ कमान की तरह ढेढ़ी हो जाती थी और ये ससुरे सीना तानकर आँख में आँख गड़ाकर बात करते हैं– बरदास्त नहीं होता यह सब हमसे।"

बर्दाश्त तो दा साहब भी नहीं कर पाते पर राजनीतिज्ञ वही कुशल है जो समय और अवसर का सही लाभ उठाए, इसलिए वे चुनाव से ठीक पूर्व घरेलू-उद्योग-योजना का प्रचार करते हैं। ग्द्यपि वे भी आगे इस योजना को बढ़ाऐंगे नहीं यह तय है परन्तु क्षण विशेष में उससे किस प्रकार लाभ लिया जाए, यह उनके समक्ष स्पष्ट है। इसीलिए वह मुख्यमंत्री हैं और जोरावर मात्र एक गुंडा। गिरगिट की भाँति अपना स्वरूप बदलने में वह माहिर हैं। दलितों के सामने दलित वर्ग के हिमायती बनकर उनका विनाश करने वाले ऐसे राजनेताओं के कारण ही उनका विकास नहीं हो सका है।

मानवीय त्रासदी का अन्यतम रूप यहाँ मिलता है। हरिजनों की पूरी बस्ती जला दी जाती है पर उसकी कोई सुनवाई नहीं। झोपड़ियाँ राख में बदल जाती है आदमी कबाब की भाँति भुन जाते हैं पर थानेदार साहब छुट्टी पर हैं अतः कोई कार्यवाही नहीं होती। लेखिका इस घटना का वर्णन अत्यन्त व्यंग्यात्मक ढंग से करती है कि लोगों ने इतनी भयानक घटना को भी अत्यन्त तटस्थता से समाचारपत्र में पढ़ा और पृष्ठ पलट दिया। जिंदगी की इतनी महत्त्वपूर्ण, भयावह और दुखदायक घटनाओं को भी रद्दी में फेंकने की प्रवृत्ति जब तक बनी रहेगी जब तक संगठन का अभाव रहेगा जब तक संगठन तब तक राजनीतिक दासता से मुक्ति प्राप्त नहीं होगी।

भाषा

राजनीतिक प्रपंचों, छल-छद्म, अनैतिकता, भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करते इस उपन्यास की भाषा अत्यन्त रोचक व व्यंग्यात्मक है। चुटीले हास्य और गम्भीर व्यंग्य से युक्त मन्नू भंडारी की लेखनी इस उपन्यास में भाषा के अनेक आयाम खोलती है। 'आपका बंटी' में जहाँ मन्नू जी पारिवारिक जिम्मेदारियों से लैस और स्वतन्त्रता के लिए छटपटाती **शकुन** से बात करती हैं, वहाँ **भाषा की जैसी आत्मीयता और द्वन्द्वात्मकता** है उसके भिन्न पूर्णतया व्यंग्यात्मक, पात्रों की पृष्ठभूमि से उपजी हर मिजाज़ की भाषा यहाँ दिखाई देती है। लखन की अक्खड़ता, दा साहब की **निगाहों की भाषा**, सुकुल बाबू की निजी सम्बन्धों में उभरती **फक्कड़ भाषा**, जोरावर की उग्रता और बिंदा की क्रोध व विवशता से उपजी, प्रत्येक पर संदेह करती भाषा यहाँ दिखाई देती है। पात्रों के परिवेश से लेकर राजनीतिक उतार-चढ़ाव को ये भाषिक स्थितियाँ मूर्त करने में सक्षम हैं ही बहुत कुछ जो अनछूटा छूट गया है, उसे भी सम्प्रेषित करने में सक्षम हैं ।

मन्नू भंडारी **भाषा की अनिवार्य शर्त-सम्प्रेषणीयता को मानती हैं।** भाषा ऐसी हो जो कथ्य के विस्तार को समेटते हुए पाठक तक पहुँच सके। महाभोज में कहीं भी सम्प्रेषण में दिक्कत नहीं हुई है। **ठंडी क्रूरता** से लेकर **अवश क्रोध** तक की स्थितियों को उनकी लेखनी ने प्रेषित किया है और वह भी अत्यन्त सफलता से।

कुछ महत्त्वपूर्ण स्थलों की व्याख्याएँ

1. पर बिसेसर लावारिस नहीं। उसकी लाश सड़क के किनारे पुलिस को पड़ी मिली, शायद इसीलिए लावारिस लाश का ख्याल आ गया। वरना उसके तो माँ भी है, बाप भी। गरीब भले ही हों, पर हैं तो विश्वास नहीं होता था कि वह मरा हुआ पड़ा है। लगता था जैसे चलते-चलते थक गया हो और आराम करने के लिए लेट गया हो। मरे आदमी और सोए आदमी में अंतर ही कितना होता है भला! बस, एक साँस की डोरी! वह टूटी और आदमी गया! देखते ही देखते सारा गाँव जमा हो गया।"

प्रसंगः यह गद्य-अंश मन्नू भंडारी के उपन्यास 'महाभोज' से लिया गया है। महाभोज व्यंग्यात्मक शिल्प में लिखा गया राजनैतिक उपन्यास है। राजनीतिक जीवन में चलने वाले छल-छद्म, प्रपंच, धोखाधड़ी के साथ वर्तमान राजनीति में चल रहे हत्याओं के दौर की ओर भी इंगित किया गया है।

संदर्भः यह प्रसंग उपन्यास के आरम्भिक अंश से लिया गया है। बिसेसर की लाश उपन्यास के आरम्भ में ही मिली है। बिसेसर कौन है, अभी कोई नहीं जानता पर इस लाश ने समस्त गाँव को सिरे से शान्त कर दिया है। एक अनचाही चुप्पी या सन्नाटा पूरे गाँव में पसर गया है।

व्याख्याः बिसेसर गाँव में रहने वाला एक ऐसा युवक था जिसने न केवल स्वयं शिक्षा प्राप्त की बल्कि उसने गाँव वालों को भी भ्रष्टाचार, अनैतिकता से लड़ने का साहस प्रदान करने का प्रयास किया परन्तु सत्ताधारी वर्ग को यह स्वीकार न हो सका और उन्होंने उसकी हत्या करवा दी। लेखिका व्यंग्य करते हुए कहती है कि लावारिस लाश के टुकड़े करवा कर न जाने उसे कहाँ फेंक दिया जाता पर बिसेसर के साथ यदि ऐसा नहीं किया गया तो उसके पीछे भी कई कारण थे। **एक** वह जिस गाँव का था उस गाँव का प्रत्येक व्यक्ति उसके साथ खड़ा था। यूँ ही उसे मारकार छिपा देना संभव न था **दूसरा** बिसेसर की हत्या उन समस्त गाँव वालों के लिए एक सबक भी थी जो बिसेसर के समान गाँव को सत्ताधारियों के आतंक से मुक्त कराना चाहते थे। लेखिका लाश को देखकर मानो दार्शनिक दृष्टि का सहारा लेते हुए कहती हैं कि यदि विचार करके देखा जाए तो दूर से देखने पर सोए और मरे आदमी में कोई अन्तर महसूस नहीं होता। परन्तु यदि सचमुच समझा जाए तो मात्र साँसों का आना या न आना बहुत बड़ा अन्तर पैदा कर देता है। साँस की डोरी का टूटना अर्थात सारे सम्बन्धों, विधि-विधानों, नियमों, प्रेम, क्रोध, समस्त भावनाओं से टूटकर मृत्यु की गोद में चले जाना। बिसेसर अपने गाँव की मुक्ति चाहता था और सत्ताधारियों के प्रति क्रोध से भरा हुआ था परन्तु ज्यों ही उसकी मृत्यु हुई, समस्त सद्-इच्छाएँ, मन की वृत्तियाँ भी साथ ही समाप्त हो गईं।

विशेषः

1. व्यंग्यात्मक भाषा-शिल्प का प्रयोग है।
2. बिसेसर प्रत्यक्ष रूप से उपन्यास में कहीं नहीं है परन्तु अप्रत्यक्ष रुप से प्रत्येक घटना में मौजूद है।
3. पूरे उपन्यास का ताना-बाना बिसेसर को केन्द्र में रखकर ही बुना गया है।
4. मृत्यु का दार्शनिक भाव से विवेचन है।
5. 'साँस की डोरी का टूटना' - मुहावरे का बहुत सार्थक प्रयोग है।

2. दूसरे दिन 'मशाल' का अंक आया, बिल्कुल नए तेवर के साथ। हेड्लाइन। बिसेसर की मौत की खबर की ही थी। साथ लम्बा वक्तव्य दिया गया था, जिससे पुलिस की अभी तक की तहकीकात के आधार पर यह संकेत दिया गया था कि यह हादसा हत्या का नहीं, आत्महत्या का है। साथ ही दा साहब के सख्ती से दिए गए उस आदेश का हवाला भी था जिसमें उन्होंने पुलिस को गहरी छानबीन करके एक बेबाक रिपोर्ट तैयार करने की ताकीद की थी।

प्रसंगः यह अंश 'महाभोज' उपन्यास से लिया गया है। कथानुसार बिसेसर की मृत्यु उपन्यास के आरम्भ में ही हो चुकी है। विपक्ष इसे सत्तापक्ष द्वारा करवाई गई हत्या सिद्ध करके लोगों की सहानुभूति अपने पक्ष में करवाना चाहता है वहीं सत्तापक्ष लोकतंत्र के सभी स्तम्भों का लाभ उठाते हुए इस सत्य को झुठलाकर बिसेसर की हत्या को आत्महत्या सिद्ध करना चाहता है। दा साहब वर्तमान मुख्यमंत्री है और समस्त व्यवस्थाओं को अपने हाथ में करने का गुर वह बखूबी जानते हैं–

व्याख्याः लोकतन्त्र की सच्चाई का सबसे बड़ा रक्षक है – **मीडिया**, जिसे लोकतन्त्र का चौथा स्तम्भ भी कहा जाता है। दा साहब मुख्य मंत्री हैं और वह स्पष्ट रूप से जानते हैं कि उनके अपने खास व्यक्ति ने ही बिसेसर की हत्या की है। वह यह भी जानते हैं कि इस सत्य को पलटने के लिए उन्हें कौन-सी बिसात किस प्रकार बिछानी होगी। इसीलिए वह अपने शहर से निकलने वाले प्रमुख समाचार-पत्र 'मशाल' के संपादक दत्ता बाबू को अपने घर अपना साक्षात्कार लेने के लिए आमंत्रित करते हैं। साक्षात्कार तो नहीं हो पाता परन्तु कागज का कोटा डबल करने का परमिट देने का आश्वासन अवश्य दे दिया जाता है। साथ ही दा साहब, ठंडे और कड़े शब्दों में दत्ता बाबू को सत्ता के प्रति अपनी जिम्मेदारी निबाहने का तरीका भी सिखाते हैं। दत्ता बाबू जो अभी तक इस बात पर पूर्ण विश्वास करते थे कि बिसेसर की हत्या करवाई गई है, सहसा सत्ता पक्ष के गुलाम बन जाते हैं, उनकी बोली बोलने लगते हैं। रातों-रात 'मशाल' बुझती प्रतीत होती है, अंक बदल दिया जाता है। बिसेसर की हत्या को मीडिया द्वारा आत्महत्या सिद्ध कर दिया जाता है। यही नहीं दा साहब की निष्पक्षता और तटस्थता का गुणगान भी किया जाता है ताकि जनता इसे ही सत्य मानकर सत्ता पक्ष के प्रति सदा की भाँति श्रद्धानत रहे और मुँह खोलने का साहस न कर सके।

विशेषः 1. 'मशाल' नाम अत्यन्त व्यंग्यात्मक है। जिस 'मशाल' का कर्तव्य है सत्य के लिए जलना वह 'मशाल' सत्ताधारियों के चूल्हे जलाने का कार्य करने लगी है।

2. मीडिया और सत्ताधारियों के सम्बन्ध पर व्यंग्य किया गया है।

3. भाषा दिखने में अत्यन्त सीधी-सपाट है पर अपने भीतर व्यंजनात्मक अर्थों को छिपाए हुए है।

4. मीडिया और सत्ता ही नहीं बल्कि पुलिस भी अनुचित कार्यों में सहयोगी बनकर किस प्रकार जन-भक्षक बन जाती है, इस ओर भी अनुच्छेद में संकेत किया गया है।

3. "इसके बाद तीसरी प्रमुख खबर : दोस्ती की आड़ में बिसू की हत्या करने वाला बिंदा गिरफ़्तार! फिर बड़े सनसनीखेज और रोचक ढंग से विस्तृत वर्णन दिया गया था कि किस प्रकार नए सिरे से बयान लेने और गहरी छानबीन करने पर कुछ ऐसे विस्मयकारी तथ्य सामने आए जिन्होंने सारी घटना की दिशा ही बदल दी। डी.आई.जी. ने जिस सूझ-बूझ का प्रमाण दिया इस सारे मामले में उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा थी। साथ ही एक छोटे से बॉक्स में बधाई देते हुए यह सूचना भी थी कि आई.जी. के रिक्त स्थान को डी.आई.जी. सिन्हा ने संभाल लिया है।

संदर्भः यह प्रसंग मन्नू भंडारी द्वारा लिखित उपन्यास 'महाभोज' से लिया गया है। महाभोज ऐसी राजनैतिक स्थितियों का पर्दाफाश करता है जिसमें लोकतन्त्र की धज्जियाँ उड़ा दी गई हैं। दा साहब मुख्यमंत्री हैं। उन्हीं के एक प्रमुख सहायक जोरावर ने बिसेसर नामक युवक की हत्या की है जो जनता को जागृत करने का प्रयास कर रहा था बिना किसी राजनैतिक लाभ की इच्छा के। दा साहब व्यवस्था के प्रमुख हैं अतः व्यवस्था को तोड़-मरोड़कर समस्त स्थितियों को अपनी ओर करने के तौर-तरीकों से पूरी तरह वाकिफ हैं। एक बार फिर सत्य को दबा दिया जाता है और असत्य, अन्याय, अनाचार की विजय हो जाती है।

व्याख्याः- बिंदा बिसेसर अर्थात 'बिसू' का सबसे अच्छा मित्र है। शहर में रहा है पर बिंदा बिसेसर की बातों के प्रभाव को समझकर, उसकी सच्चाई की ताकत को पहचानकर यहाँ सरोहा गाँव में ही रह गया और जनजागरण में बिसू का साथ देने लगा। बिसेसर को चार वर्ष पूर्व बिना बताए जेल में डाल दिया गया। बिंदा छटपटाकर रह गया, कुछ कर न सका। बिसेसर को बाद में मार दिया गया। बिंदा ने समस्त प्रमाण जुटाए और अंतिम लड़ाई लड़ने के लिए तैयार हो गया परन्तु सत्ता पक्ष कभी सत्य और ईमानदार के पक्ष में खड़ा नहीं होता क्योंकि उसकी अपनी नींव असत्य और अन्याय पर टिकी है। इसीलिए बिंदा के सबूतों की अनदेखी करके सत्तापक्ष सिद्ध कर देता है कि बेसेसर बिंदा की पत्नी रुक्मा का प्रेमी था और इसीलिए बिंदा ने बिसेसर की हत्या कर दी। लोकतंत्र की चरमराती व्यवस्था पर यह सबसे बड़ा आघात था। इंस्पेक्टर सक्सेना ने पुलिस की भ्रष्ट व्यवस्था में रहते हुए भी अपनी अंतरात्मा की आवाज को पहचानने का प्रयास किया तो उसकी रिपोर्ट बदल दी गई और प्रमोशन के बदले उसका तबादला कर दिया गया। भ्रष्ट डी.आई.जी. ने दा साहब के पक्ष में अपनी रिपोर्ट तैयार की अतः न केवल उसकी प्रशंसा की गई बल्कि उसे जिले का आई.जी. भी बना दिया गया। 'हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे' कहावत को चरितार्थ करते हुए बिंदा और सक्सेना को मिली जीवन भर की प्रताड़ना और डी.आई.जी. को प्रमोशन। यह अनुच्छेद दागी व्यवस्था के कुछ और दागों के स्याह होते जाने की तस्वीर प्रस्तुत करता है।

विशेषः– 1. भाषा व्यंग्यात्मक, मारक, तीखी व पैनी है जो अपने भीतर उनके अर्थों को ढूंढने का अवसर देती है।

2. व्यवस्था जिस प्रकार व्यक्ति की अस्मिता का हरण करती है– इसे दर्शाने का सजग प्रयास है।

3. व्यवस्था के समस्त स्तम्भों में व्याप्त भ्रष्टाचार दर्शाया गया है।

4. सबसे महत्त्वपूर्ण तथा यह उभरकर आया कि जिस मीडिया द्वारा भ्रष्ट व्यवस्था के विरोध की उम्मीद की जाती है, वही मीडिया आजकल ऐसी व्यवस्था का गुणगान करता दिखाई देता है।

अभ्यास के लिए अन्य महत्त्वपूर्ण स्थलः-

1. सच पूछा जाए ..... अंग बन जाते हैं। पृष्ठ (9)
2. दा साहब का पूरा व्यक्तित्व ..... उनका व्यक्तित्व। पृष्ठ (10)
3. बहाकर ले जाने का मतलब ..... बाएँ हाथ का खेल है यह उनके लिए। पृष्ठ (25)
4. बयान लेने का नाटक ..... कौन आएगा। पृष्ठ (29)
5. सुकुल बाबू की मीटिंग ..... मुक्ति पा जाएगा। पृष्ठ (61)
6. मालूम हुआ कि बिसेसर ..... बात बहुत साफ है। पृष्ठ (64)
7. बहुत क्रोध और साहस है ..... पूरा आप कीजिए। पृष्ठ (68)
8. आज सवेरे से ही ..... सब एकदम लकदक, चुस्त, दुरुस्त। पृष्ठ (80)
9. थाने के सामने जो कच्चा ..... कौन इतना सोचता है। पृष्ठ (80)
10. इस पृष्ठ के एक-एक ..... डूब गया। पृष्ठ (145)

उपन्यास का प्रतिपाद्य/उद्देश्य

महाभोज राजनैतिक जीवन पर दृष्टिपात करने वाला ऐसा उपन्यास है जो लोकतांत्रिक व्यवस्था के विविध स्तम्भों में फैले भ्रष्टाचार को उजागर करता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था जहाँ जनता के समक्ष चयन का विकल्प प्रस्तुत करती है वहीं इस व्यवस्था के भीतर बैठे समस्त विकल्पों के सारहीन होते जाने की कहानी भी सुनाती है। लेखिका इस उपन्यास के माध्यम से अनेकानेक प्रश्न हमारे समक्ष- उपस्थित करती है। इन प्रश्नों को पढ़ने के तरीके भिन्न-भिन्न हो सकते हैं पर हर प्रश्न हमारे भीतर बेचैनी पैदा करता है और सोचने के लिए विवश करता है। **बिसेसर-बिंदा की यह मात्र एक कहानी नहीं है जहाँ बिसेसर को मार दिया जाता है और बिंदा को जेल भेजा जाता है बल्कि आशावादिता का इस हद तक तिरस्कार है कि उसके सम्मान के लिए खड़े होने के लिए बेचैनी पैदा होने लगती है।** लेखिका ने अपने दूसरे उपन्यास 'आपका बेटी' में लिखा है कि यदि इसे पढ़कर आपके आँसू बहने लगें तो मैं समझूंगी कि बंटी का पत्र सही जगह नहीं पहुँचा है। गलदश्रु भावुकता की उम्मीद में 'महाभोज' भी नहीं लिखा गया। **हम दुखी हों, व्यवस्था को कोसें और किसी तारनहार की उम्मीद में पलक-पाँवड़े बिछा कर बैठे रहें - लेखिका यह नहीं चाहती बल्कि** हम सबके भीतर से एक-एक बिंदा उत्पन्न **हो जो सही को सही और गलत को गलत कह सके, तभी उपन्यास का उद्देश्य पूरा होगा।**

'महाभोज' 'सरोहा' नामक एक छोटे से गाँव में हल्की-सी बदलती तस्वीरों की झांकी प्रस्तुत करता है। आजादी से पहले उम्मीद की गई थी कि गाँव की तस्वीर बदलेगी, तदबीर बदलेगी। गाँव पहले के समाज विपन्न नहीं रहेंगे बल्कि आर्थिक-सामाजिक उन्नति की सही तस्वीर गाँव ही प्रस्तुत करेंगे परन्तु भारत जैसे कृषिप्रधान देश में कब गाँवों की तस्वीर और स्याह होती चली गई, कब और कैसे गाँव राजनेताओं के हथकंडों की जीती जागती तस्वीर बनते चले गए और क्यों गाँव के पढ़े-लिखे नौजवान गाँव को छोड़कर शहर की ओर पलायन करते गए। कुछ पता ही न चला। यह उपन्यास एक ऐसे ही उजड़े गाँव के और उजड़ते जाने की कहानी सुनाता है। बिसेसर इस गाँव में फैले राजनैतिक दुष्चक्र के बारे में लोगों को सचेत करना चाहता था तथा उन्हें नीति-अनीति के सही रूप से परिचित कराना चाहता था परन्तु वास्तव में यह कार्य इतना सरल न था। ऊपर से समतल दिखाई देने वाली धरती अपने भीतर कितने ही ज्वालामुखी छिपाए रहती है, इसका ज्ञान सहज नहीं होता। भ्रष्ट समझे और स्वीकारे जाने वाले नेता अपने भीतर कितना भ्रष्टाचार सहेजे रखते हैं, इसका ज्ञान तो सर्वथा असंभव है। **उपन्यास का उद्देश्य है - ऐसे ही लोगों की एक तस्वीर प्रस्तुत करना जो सत्ता में ऊँचा उठते जाने के लिए कितनी ही लाशों पर पैर रखकर ऊपर चढ़ने के लिए तैयार रहते हैं। परन्तु इसी के साथ-साथ उपन्यास परिवर्तन की उम्मीद को भी स्वर देता है।** लखन के भीतर घबराहट अथवा सक्सेना के भीतर से बिंदा की आवाज का सुनाई देना ऐसे ही आशावादी चिह्न हैं जो बदलाव की हल्की-सी उम्मीद जगाते हैं।

उपन्यास राजनेताओं द्वारा विविध योजनाओं का स्वार्थ के लिए उपयोग, धर्म और जाति के नाम पर बँटवारा, मृत्यु को भी अपने पक्ष में राजनीति करने के लिए उपयोग में लाने की प्रवृत्ति को दर्शाता। ईमानदार व्यक्ति के लिए आज भी व्यवस्था में कहीं कोई स्थान नहीं है। या तो उसके विद्रोह को कुचल दिया जाता है या उसे बगावत के जुर्म में जेल भेज दिया जाता है। बिंदा को भी जेल भेज दिया जाता है, उसकी पत्नी रुक्मा पीड़ित अवस्था में अकेली रह गई प्रतीत होती है, चारों ओर भ्रष्टाचार की विजय होती दिखाई देती है। मीडिया जैसे लोकतन्त्र के प्रहरी भी व्यवस्था के प्रहरी बने दिखाई देते हैं। सत्ता पक्ष के दा साहब हों या विपक्ष के सुकुल बाबू सभी जोड़-तोड़ में माहिर हैं। लोचन भैया जैसे लोग व्यवस्था के भीतर रहकर उसे बदलने की चेष्टा करते हैं परन्तु उनके हाथ से ताकत छीनकर उन्हें गुमनामी में धकेल दिया जाता है। नैतिकता, ईमानदारी जैसे शब्दों का प्रयोग नेताओं द्वारा इतनी बार किया जाता है कि वह घिसे हुए और मुलम्मा उतरे हुए दिखाई देने लगते हैं।

वस्तुतः यह उपन्यास खल पात्रों की विजय और धर्म पर चलने वाले पात्रों की कथा तो सुनाता है **परन्तु इसका उद्देश्य कहीं भी खल पात्रों का गुणगान करना नहीं है। यह उपन्यास तो जनता के भीतर छिपी विद्रोहात्मक शक्ति को ढूँढने की कोशिश करता है।** 'दुर्निवार सम्मोहन भरी उस खतरनाक अग्नि-लीक' की खोज करता है 'जो बिसू और बिंदा तक ही रुकी नहीं रहती' बल्कि जिसका जनता के भीतर होना आवश्यक है। लेखिका सावधान करती है कि जब तक जनता अपने अधिकारों के प्रति सचेत नहीं होगी तब तक ऐसे ही 'महाभोज' राजनेता करते रहेंगे और जनता मूक होकर देखती रह जाएगी। कहा जा सकता है कि यह **उपन्यास तलाश करता है- ऐसे व्यक्तित्वों की जो सत्य और ईमानदारी की राह पर बिना किसी भय के चल सकें।**

प्रमुख पात्रों के चरित्र

दा साहब

दा साहब महाभोज उपन्यास के केन्द्रीय पात्र हैं। वर्तमान सत्ताधारी पार्टी के मुख्यमंत्रों के रूप में वे शहर भर की नब्ज को समझने की शक्ति रखते हैं। इसी शक्ति के कारण वे पिछले दस वर्षो से निर्विघ्न राज करने वाले सुकुल बाबू को सरलता से हराकर सत्ता से बाहर कर पाए। दा साहब जानते हैं कि परिस्थिति कैसी भी हो व्यक्ति उससे लाभ उठा सकता है, केवल उसे लाभ उठाना आना चाहिए। अपनी इसी नीति के बल पर उन्होंने नकारात्मक प्रतीत होती स्थितियों को भी सहजता से अपने पक्ष में कर लिया।

वे एक चतुर और **कुशल राजनीतिज्ञ** हैं। राजनीति का अर्थ वे सही-सही समझते हैं – राज करने की नीति। राज करने के लिए आदर्शो का ढिंढोरा पीटना और यथार्थ को अपने अनुसार स्थापित करने की कला से वे भली-भाँति परिचित हैं। बिसेसर की हत्या उनकी अपनी पार्टी के ही कार्यकत्ता ने की है। विरोधी पक्ष प्रसन्न है और इस हत्या के लिए जिम्मेदार लोगों को पकड़वाने का दावा भी कर रहा है पर दा साहब कुशल नेता की भाँति स्वयं पुलिस द्वारा कार्यवाही कराने का नाटक करते हैं और अपने विरोधी ऐसे युवक को, जो सच्चा विरोध करता है, हत्यारा सिद्ध कर देते हैं। राज नेताओं के समान किसी भी परिस्थिति से लाभ उठाने की उनकी नीति उन्हें यहाँ भी सफल कर देती है।

आदर्शो का लबादा ओढ़े हुए दा साहब आज के नेताओं के वास्तविक प्रतिनिधि हैं। जनता के समक्ष बड़े-बड़े आदर्शो का दावा करके वे उन आदर्शो की धज्जियाँ उड़ाना भी जानते हैं। उन्हें पता है कि चुनाव के समीप कौन-से वादे किए जाने चाहिए जिससे जनता का आशावाद बचा रहे और वह अपना आदर्श पुरुष मानकर सदा उन्हीं का चयन करती रहें। इसीलिए वे बिसू के पिता हीरा को मंच पर अपने साथ ही नहीं ले जाते बल्कि घरेलू-उद्योग-योजना का आरम्भ भी उसी के हाथ से करवाते हैं। क्रोध और आवेश को पीकर सौम्यता और धीरज का लबादा ओढ़े रखते हैं। चेहरे पर सदैव बापू का सपना पूरा करने का सुख-संतोष झलकता रहता है। गाँधी जी का नाम और आदर्श का ढिंढोरा पीटकर वे गाँव वालों से लेकर सभी को संतुष्ट रखते हैं।

व्यक्तित्व के स्तर पर सादगी और भव्यता का सही-सही तालमेल इन्हें राजनीतिज्ञों की श्रेणी में थोड़ा और ऊपर खड़ा कर देता है। गीता का उपदेश उनके जीवन का मूल मंत्र है। गांधी और नेहरु की तस्वीर उनके घर की दीवार के केन्द्र में टंगी है। आँखों-ही-आँखों में किसी को भी बरज देने की क्षमता उनमें अद्‌भुत हैं। कहा जाए कि दा साहब राजनीति के एक ऐसे कुशल खिलाड़ी हैं जिनके पास विचार और क्रियान्वयन की अद्‌भुत क्षमता है और उन्हें हराने के बारे में किसी में सोचने की क्षमता नहीं है।

सुकुल बाबू

सुकुल बाबू विपक्ष के नेता हैं। दस वर्ष तक मुख्यमंत्री बने रहने पर मानो उनके मन में यह विश्वास दृढ़ हो गया था कि उन्हें कभी कोई पदच्युत नहीं कर सकेगा। परन्तु दा साहब से पराजित होने पर उन्हें यह ज्ञान हुआ कि होनी से बलवान कुछ भी नहीं अतः भाग्य को अपने वश में करने के समस्त उपाय वे करते रहते हैं।

ज्योतिष पर अनंत विश्वास है सुकुल बाबू को। अनेक प्रकार के नग जड़ित अंगूठियाँ पहनी हुई हैं उन्होंने। गंडे-तावीजों से लेकर नीलम तक उन्होंने पहना है ताकि हारी हुई बाजी को पुनः जीता जा सके। बिसू की मौत उनके लिए ऐसा ही भाग्य द्वारा दिया गया मौका है जिससे लाभ उठाकर वह सत्ता पक्ष को धरती पर गिराकर स्वयं आसन पर आसीन होना चाहते हैं।

प्रत्येक अवसर में लाभ ढूंढने की उनकी प्रवृत्ति बिसू की मौत को तुरुप के पत्ते के समान देखती है। हरिजनों को कैसे बस में किया जाए, पर विचार करते हुए वह निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बिसू सारी जिंदगी इन्हीं लोगों के लिए लड़ता रहा है अतः इस आधार पर हरिजनों को अपने वश में करना सरल होगा। जैसे ही वोट अपने वश में हुए वैसे ही उनके भीतर सुगम संगीत बजने लगेगा।

जोड़-तोड़ की क्षमता उनके समान किसी में नहीं। अपनी इस क्षमता पर उन्हें भी अद्‌भुद विश्वास है। भाषण में उठाने वाले मुद्दे, आने वाली प्रतिक्रियाएँ, लोगों को बहाकर ले जाने के तरीके और विधानसभा में पहुँचने पर सत्तर दरार वाले मंत्रिमंडल को गिराकर किसे-किसे अपनी ओर मिलाना है, यह भी वे तय कर चुके हैं।

जीवन में किसी **संयम और नियम पर उनका विश्वास नहीं**। साँवला रंग, नाटा कद, थुलथुल शरीर। सौम्यता, संयतता से दूर-दूर तक कोई ताल्लूक नहीं। सुरा-सुंदरी से भी उनका कोई परहेज नहीं बल्कि दोनों से प्रेम है। मस्त और फक्कड़ रहे हैं। निजी मित्रों के बीच फूहड़ भाषा का प्रयोग भी धड़ल्ले से करते हैं। गाली-गलौज के बिना भाषा में धार नहीं आती – इसी नियम पर वे आँख मूंद कर विश्वास करते हैं। कहा जा सकता है सुकुल बाबू एक ऐसे व्यक्ति हैं जो राजनीति के पतित हो चुके स्वरूप का प्रतिनिधित्व करते हैं, जोड़-तोड़ में माहिर हैं और समस्त अनैतिक प्रवृत्तियों का उनमें वास है।

बिसेसर (बिसू)

बिसेसर उपन्यास का केन्द्रीय पात्र है पर कहीं भी प्रत्यक्ष रूप से मौजूद नहीं है। अप्रत्यक्ष रूप से सभी की चेतना पर छाए इस पात्र की भूमिका उपन्यास में सबसे महत्त्वपूर्ण है। बिसेसर की हत्या की जा चुकी है – लेखिका आरम्भ में ही उसका परिचय देती है कि यह पहचानना कतई कठिन है कि वह मृत है अथवा सोया हुआ है।

बिसेसर की हत्या हो चुकी है पर आरम्भ से ही समस्त **कथा का केन्द्र बिन्दु** बिसेसर भीतर तक तिलमिला उठा। उसने आगजनी की घटना के समस्त प्रभाव जुटाए और न्याय दिलवाने के लिए जी-जान एक कर दिए। परन्तु चूँकि समस्त प्रमाण सत्ता पक्ष के विरोध में तर्क उपस्थित करते थे अतः बिसेसर को मरवा दिया गया।

बिसू एक साधारण से ग्रामीण **हीरा** का बेटा है। हीरा और उसकी पत्नी की एकमात्र संतान। यदि दुनियादारी के लिहाज से देखा जाए तो 'पागल' या 'आवारा' था क्योंकि कोई काम-धंधा करके अपना पेट पालने के बारे में नहीं सोचता था बल्कि **दुनिया बदलने के ख्वाब देखा करता था।** मजदूरों को काम की पूरी मजदूरी दिलाने, हरिजनों की बस्ती में आग लगवाने वाले की तलाश करने के प्रयास किया करता है। परन्तु ऐसे कार्य सत्ताधारी वर्ग को रास नहीं आते। महेश शर्मा उसके लिए **'एकस्ट्रा सेन्सिटिव'** शब्द का प्रयोग करता है। भावुकता से भरा वह युवक समानता के स्वप्न देखा करता था।

बिसेसर पढ़ा-लिखा **शिक्षित युवक** था। उसके पिता के शब्दों में 'चौदह किलास पास'। शहर भेजकर माता-पिता ने उसकी शिक्षा पूरी करवाई। माता-पिता के स्वप्न थे कि बड़ा होकर वह कुछ ऐसा कार्य करेगा जिससे पूरे गाँव का नाम रोशन हो पर बिसेसर के स्वप्न कुद और ही थे। वह पढ़-लिखकर कुर्सी पर बैठकर दूसरों का शोषण करने वाला बाबू न बनकर उन्हें जागृत करने वाला उनका अपना साथी बनना चाहता था। आरम्भ में उसने स्कूल खोलकर सभी जातियों के बालकों को पढ़ाना आरम्भ किया परन्तु इस जागृति के परिणाम से डरकर सत्ता पक्ष ने उसे जेल भेज दिया।

साहस और क्षमता उसमें अपार है। चार साल तक जेल में रहने पर भी उसके मजबूत इरादे पस्त नहीं हुए। कुछ समय तो बिल्कुल शांत रहा परन्तु एक बार फिर हिम्मत के साथ उसने गाँव वालों के भीतर साहस जगाने का प्रयास आरम्भ कर दिया **परन्तु अबकी बार उसके इस साहस को झेलने की ताकत शायद सत्तापक्ष में नहीं थी अतः उसकी हत्या करवा दी गई।**

कहा जा सकता है **कि बिसेसर ऐसा युवक था जो कई बार हारने पर भी नहीं हारा परन्तु उसकी मृत्यु मानो हम सब को हरा गई। हम सबके होने पर प्रश्नचिह्न लगाकर चली गई।**

बिंदा:

बिंदा अर्थात बिंदेश्वरी प्रसाद। बिंदा बिसेसर का मित्र है। हीरा के शब्दों में कहें तो 'भइयन जैसन प्रेम रहा दोनों में'। बिंदा की पत्नी रुम्मा पहले बिसेसर के स्कूल में पढ़ती थी। शादी होने पर वह बिंदा के पास शहर चली गई। पिता की मृत्यु के बाद रुम्मा और बिंदा शहर छोड़कर गाँव आ गए। जेल से बिसेसर के छूटने के बाद दोनों की मुलाकात हुई और एक मुलाकात से ही मित्रता प्रगाढ़ होती चली गई। **बिंदा भी पढ़ा-लिखा युवक है और गाँव में परिवर्तन चाहता हैं। बिसेसर भी परिवर्तन के लिए प्रयासरत है। बिसेसर के जाने के बाद मानो बिंदा ही उसकी आवाज बन जाता है।**

बिंदा का सबसे पहले परिचय मिलता है – **पढ़ा-लिखा आदमी पर बेहद बदमिज़ाज और बदज़बान**। वह जानता है कि सत्ता पक्ष हो या विपक्ष सभी एक जैसे हैं अतः वह किसी पर भरोसा नहीं करता। बिसेसर ने जो प्रमाण जुटाए थे, वे सब अब उसके पास हैं। सुकुल बाबू चाहते हैं कि सभी प्रमाण किसी प्रकार उन्हें मिल जाएँ तो वे दा साहब की सत्ता को चुनौती दे सकें पर बिंदा किसी की नहीं सुनता। वह सत्ता और विपक्ष की नीतियों को जानता है कि उनकी एक ही नीति है – अनीति और अनीति करने वालों के साथ वह सम्बन्ध जोड़ने के लिए तैयार नहीं है।

बिंदा 'एकला चलो रे' की तर्ज पर **अकेले ही खड़े होने की शक्ति** जुटाता है। रुक्मा उसे रोकने की कोशिश करती है। उसे डर है कि कहीं बिसेसर की भाँति बिंदा को भी वह खो न दे परन्तु बिंदा किसी से नहीं डरता। अपने भीतर सुलगती आग को वह बुझने देना नहीं चाहता। वह बिसेसर की भाँति जिंदगी से प्रेम करता है इसीलिए लोगों की जिंदगी को यूँ ही नष्ट होते हुए वह नहीं देख सकता। यदि इसके लिए उसे अकेले ही संघर्ष करना पड़े, तो वह तैयार है।

निर्भीकता और साहस उसके व्यक्तित्व के अभिन्न अंग हैं। भरे मजमे में दा साहब (वर्तमान मुख्यमंत्री) को ललकारने का साहस केवल उसी के भीतर है। खरी-खरी कहना और अन्याय का विरोध करना उसने बिसेसर के साथ रहकर सीखा और अंत तक उसी साहस के साथ खड़ा रहा। भले ही पुलिस की बेतों और ठोकरों ने उसकी आवाज को दबाने की चेष्टा निरन्तर की परन्तु न तो उसका आवेश कम हुआ और न ही उसका साहस।

लेखिका इस पात्र के माध्यम से आशा जागृत कराती है कि **जब तक ऐसी एक भी आवाज बची हुई है तब तक सत्ता तानाशाह होने का दंभ भले ही पाले पर साहस नहीं जुटा सकती।**

महत्त्वपूर्ण लघु प्रश्नोत्तर

प्र०1. बिसेसर कौन है और उसकी मृत्यु पूरे उपन्यास की क्रेन्द्रीय घटना क्यों बन जाती है?

उ० बिसेसर सरोहा गाँव का रहने वाला एक साधारण सा युवक है पर वह जनता को, अपने आस-पास वालों को उनके अधिकारों के लिए जागृत करना चाहता था इसलिए चार वर्ष के लिए उसे बिना किसी अपराध के जेल भेज दिया गया। वापस आकर उसने देखा कि हरिजनों की पूरी बस्ती को गाँव के ही एक स्थानीय नेता किस्म के व्यक्ति जोरावर ने जलवा दिया। वह सभी घटनाओं का सबूत एकत्र करता है। परन्तु उसकी भी हत्या कर दी जाती है। यूँ आम दिनों में इस घटना से कोई अन्तर नहीं पड़ता परन्तु चूँकि विधानसभा के उपचुनाव इसी क्षेत्र में होने वाले हैं। हत्या करने वाला वर्तमान मुख्यमंत्री का अपना व्यक्ति है और पूर्व मुख्यमंत्री भी इस सीट से उम्मीदवार हैं अतः इस घटना को केन्द्रीय महत्त्व की घटना बना लिया जाता है।

प्र०2. सुकुल बाबू कौन हैं? उनका 'सरोहा' क्षेत्र से उम्मीदवार बनना विशेष महत्त्व क्यों रखता है?

उ० सुकुल बाबू सरोहा क्षेत्र से जीतने वाले पूर्व मुख्यमंत्री हैं। पिछले दस वर्षों से वे लगातार जीतते रहे पर इस बार दा साहब ने उन्हें भारी अन्तर से पराजित किया। यह सीट जातिगत और राजनीतिक समीकरण को फिर से अपने पक्ष में करने का एक बेहतर माध्यम थी और सुकुल बाबू इस सुनहरे अवसर को खोना नहीं चाहते थे। अतः इस जीत के माध्यम से वे आगामी चुनाव में अपनी जीत को सुनिश्चित करना चाहते थे।

प्र०3. दा साहब के व्यक्तित्व की विशेषताएँ लिखें।

उ० दा साहब वर्तमान मुख्यमंत्री हैं। जोड-तोड़, साठ-गाँठ में माहिर परन्तु न तो स्वयं वे ऊँची आवाज का प्रयोग करते हैं न ही ऊँची आवाज सुनना पसन्द करते हैं। गौर वर्ण सुता हुआ शरीर। कभी भी कहीं भी एक इंच फालतू चरबी

दिखाई नहीं देती। जीवन में संयम और आहार-विहार में नियम। बोलते भी हैं तो आवाज में भी अधिक उतार-चढ़ाव नहीं आता। गीता का उपदेश उनके व्यक्तित्व का मूल मंत्र है। वे सदैव अपने लक्ष्य पर दृष्टि रखते हैं और उसे प्राप्त करने में किसी भी प्रकार के घात से भी परहेज नहीं करते।

प्र०4. दा साहब और सुकुल बाबू के व्यक्तित्व की तुलना कीजिए।

उ० दा साहब मुख्यमंत्री है तो सुकुल बाबू भूतपूर्व मुख्यमंत्री। राजनीति के दोनों मंजे और चतुर खिलाड़ी हैं पर व्यक्तित्व में पूर्णतया भिन्न। दा साहब गोरे, स्वस्थ शरीर शराब से कोसों दूर तथा गीता पढ़ने में विश्वास रखते हैं वहीं सुकुल बाबू साँवले रंग के, नाटे कद, थुल थुल शरीर, न सौम्य न संयत। सुरासुंदरी से कोई परहेज न करने वाले सब पदार्थों का उपयोग करने वाले हैं। भाषा का भी निजी दोस्तों में फूहड़ प्रयोग करते हैं परन्तु दा साहब के भीतर की थाह पाना कठिन कार्य है।

प्र०5. दत्ता बाबू के माध्यम से लेखिका क्या कहना चाहती हैं?

उ० दत्ता बाबू 'मशाल' पत्र के संपादक हैं। उनके माध्यम से लेखिका मीडिया की उत्तरदायित्वहीनता, सत्ताधारियों के आगे गिड़गिड़ाने की प्रवृत्ति और सत्य के स्थान पर सत्ताधारियों के बनावटी सत्य को दिखाने वालों पर व्यंग्य करती है। मीडिया का दायित्व है– सत्य का उद्घाटन व जनता के समक्ष वास्तविक तस्वीर का निर्माण परन्तु दत्ता बाबू जैसे अनेकानेक संपादक सरकार के पैर सहलाने के सिवा कुछ भी नहीं करते। लेखिका ने इस प्रवृत्ति का विरोध किया है।

प्र०6. त्रिलोचनसिंह रावत कौन हैं? उनके चरित्र से राजनीति के किस रूप का उद्घाटन होता है?

उ० इन्हें प्यार से उपन्यास की जनता के बीच 'लोचन भैया' के नाम से पुकारा जाता है। पहले सुकुल बाबू के साथ थे परन्तु जब उनकी रीढ़ को दुम में बदलते देखा तो उन्हें छोड़कर अलग हो गए। त्रिलोचन सिंह की पार्टी यूँ तो दा साहब के साथ है और वह स्वयं भी शिक्षा मंत्री है परन्तु वे पहले सुकुल बाबू का साथ छोड़कर इसीलिए आए थे क्योंकि वह अनैतिकता, अन्याय को बर्दाश्त नहीं कर पा रहे थे पर यहाँ भी जब उन्होंने जनता पर किए जाने वाले अत्याचारों की फेहरिस्त देखी तो उनका विश्वास समस्त राजनीतिज्ञों से उठ गया। **उनके चरित्र के द्वारा लेखिका ने आशावादी दृष्टिकोण दिखाया है। जब तक विचार करने वाले लोग राजनीति में मौजूद हैं तब तक उम्मीद की किरण जीवित है।**

प्र०7. यह उपन्यास राजनीति के किस रूप को दर्शाता है?

उ० यह उपन्यास राजनीति के भीतर उपजे भाई भतीजावाद, अवसरवाद और भ्रष्टाचार की एक झांकी प्रस्तुत करता है। नैतिक अंधःपतन के इस दौर में सबसे अधिक गिरावट राजनेताओं के चरित्र में आया है और सबसे दुखद पहलू यह है कि वे ही देश की जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं। राजनीति के घिनौने रूप का उद्घाटन इस उपन्यास में किया गया है।

प्र०8. राजनीति ने मनुष्यों के मानवीय, नैतिक चरित्र का पतन करके उनकी आत्मा को समाप्त कर दिया है - किन घटनाओं के आधार पर ऐसा कहा जा सकता है?

उ० बिसेसर की हत्या, हरिजनों को बस्ती समेत जलाया जाना, लोचन भैया को बर्खास्त करना, सक्सेना का ट्रांसफर, बिंदा को बिसेसर की हत्या के आरोप में बंदी बनाया जाना और इसमें से किसी भी अपराध के लिए किसी के द्वारा भी नैतिक जिम्मेदारी अनुभव न करना ऐसी ही घटनाएँ कही जा सकती हैं।

प्र०9. दा साहब गाँव वालों के विकास के नाम पर कौन-सी योजना तैयार कर रहे है और क्यों?

उ० दा साहब गाँव वालों को 'घरेलू-उद्योग-योजना' का सपना दिखा रहे हैं जहाँ प्रत्येक व्यक्ति के पास रोजगार होगा और अपने कार्य का वह स्वयं मालिक होगा। इस योजना को अभी-अभी इसलिए गाँव वालों के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है क्योंकि विधानसभा के उपचुनाव होने वाले हैं।

प्र०10. पुलिस, प्रशासन और मीडिया की भूमिका को आप किसी रूप में देखते हैं?

उ० इन तीनों की भूमिका है– जनता के प्रति अपने उत्तरदायित्त्व का निर्वहन। जनता जहाँ निर्भय होकर जा सके, अपने दुख दर्द की सूचना दे सके, इन्हें ऐसी संस्थाएँ माना जाता हैं परन्तु खेद की बात है कि ये तीनों ही वर्ग जनता को प्रताड़ित करके सत्ता वर्ग की कठपुतली के रूप में कार्य करती दिखाई देती हैं।

प्र०11. बिंदा कौन हैं? इसकी चारित्रिक विशेषताएँ लिखिए।

उ० बिंदा बिसेसर का मित्र है– उसी की भाँति पढ़ा-लिखा, जागरूक और मुँह फट। वह भी लोगों को जगाना और उनके भीतर सही अधिकार की माँग पैदा करना चाहता था। यूँ तो वह रुक्मा, जो बिसेसर की मित्र थी, का पति था परन्तु बिसेसर से मिलने के पश्चात् उसके बिसेसर से संबंध प्रगाढ़ होते चले गए। बिसेसर की हत्या के पश्चात् वह आगजनी और बिसेसर की हत्या के समस्त प्रमाण जुटा लेता है परन्तु सरकारी तंत्र उसे ही बिसू का हत्यारा घोषित कर देता है। पूरे गाँव में एकमात्र वही है जो अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने का माद्दा रखता है।

प्र०12 सक्सेना कौन है? उसके माध्यम से पुलिस वर्ग का कौन-सा पक्ष प्रकट किया गया है?

उ० सक्सेना पुलिस विभाग में कार्यरत एस०पी० है जिनका तबादला अनेक बार अलग-अलग स्थानों पर होता रहा है तथा लम्बे समय से उन्हें पदोन्नति भी नहीं मिली। कहा जाता है कि सक्सेना अत्यन्त शांत स्वभाव के हैं इसलिए उन्हें बिसेसर की हत्या से जुड़े बयान लेने के लिए भेजा जाता है ताकि पहले से तैयार रिपोर्ट पर मोहर लगाई जा सके परन्तु सक्सेना की आत्मा इस बार विद्रोह कर देती है और वह सही रिपोर्ट तैयार करने का प्रयास करते हैं। यहाँ यह दिखाने की कोशिश की गई है कि भ्रष्ट-से-भ्रष्ट व्यवस्था में भी कुछ गिने-चुने ईमानदार लोग भी हैं जिनके कारण जनता का विश्वास अभी भी बना हुआ है।

प्र०13. पढ़े-लिखे लोगों की उदासीनता राजनीति को और अधिक भ्रष्ट करती चली जाती है – यह कथन किस पात्र की ओर इशारा करता है?

उ० यह कथन महेश शर्मा के चरित्र को दर्शाता है। महेश शर्मा अपने रिसर्च के उद्देश्य से गाँव में आया है। गाँव की जिंदगी के बारे में जानने का उसका नजरिया तटस्थता का है। बिसू उससे इसी बात पर झगड़ा भी करता है कि जहाँ दिन-दहाड़े आँखों के सामने जुर्म होते हैं वहाँ कोई कैसे अलग-थलग बैठकर सिर्फ कागज काले कर सकता है। इस चरित्र के माध्यम से लेखिका ने शहरी वर्ग की उदासीनता पर व्यंग्य किया है।

प्र०14. हीरा के चरित्र पर टिप्पणी करें।

उ० हीरा बिसेसर का पिता है। बेटे की मृत्यु के पश्चात् वह टूट गया है। यद्यपि वह न्याय चाहता है पर धर्मभीरू होने के कारण सदैव 'ऊपर वाले' पर ही अपना भरोसा कायम रखता है। साधारण ग्रामीण की भाँति व्यवस्था से डरने वाला जीव है। दा साहब के उसकी झोपड़ी में आने पर वह कृतज्ञ हो उठता है और घरेलू उद्योग योजना का शुभारम्भ जब उससे कराया जाता है तो उसे विश्वास ही नहीं होता।

प्र०15. बिसेसर की हत्या किसने की? गाँव का एक भी आदमी हत्यारे के खिलाफ क्यों खड़ा नहीं हो सका?

उ० बिसेसर की हत्या जोरावर ने की। जोरावर सरोहा गाँव का बाहुबली है जिसे मुख्यमंत्री दा साहब का संरक्षण प्राप्त है। गाँव के 45% वोटों पर उसका अधिकार है। यदि कोई उसके खिलाफ बोलता तो गाँव के लठैत उस व्यक्ति को जीवित न छोड़ते। इसलिए कोई उसके विरुद्ध कुछ कहने का साहस नहीं जुटा पाता।

प्र०16. जोरावर स्वयं दा साहब के विरुद्ध चुनाव में उतरने की ताकत क्यों नहीं जुटा पाता?

उ० जोरावर को दा साहब का संरक्षण प्राप्त है। उन्हीं की ताकत के बलपर वह अनेक अपराध करके भी हर बार सजा से बच जाता है। उसकी इच्छा है कि वह विधानसभा का उपचुनाव लड़े पर वह जानता है कि दा साहब को यह स्वीकार नहीं होगा। दा साहब भी उसे जता देते हैं कि यदि वह चुनाव में खड़ा हुआ तो उसे बिसेसर की हत्या के अपराध में जेल जाना पड़ सकता है। स्पष्ट है कि दा साहब जैसे राजनीतिज्ञ इन गुंडों का इस्तेमाल तो करते हैं पर अपने सामने खड़ा नहीं होने देते।

प्र०17. बिसेसर की मौत के लिए अन्त में किसे जिम्मेदार ठहराया जाता है और कैसे?

उ० बिसेसर की मौत के लिए अन्त में उसी के मित्र बिंदा को ही सजा दी जाती है और इसके लिए यह तर्क दिया जाता है कि बिसू बिंदा की पत्नी रुक्मा का प्रेमी था और इसे बर्दाश्त न कर पाने के कारण बिंदा ने बिसू की हत्या कर दी।

प्र०18. उपन्यास के नामकरण पर टिप्पणी करें।

उ० उपन्यास का शीर्षक 'महाभोज' व्यंग्यात्मक है। महाभोज से आशय है–सभी हिस्सेदारों का अपनी-अपनी विजय को लेकर किया जाने वाला भोज। प्रत्येक वर्ग ने व्यवस्था से अपनी बेईमानी के लिए कीमत प्राप्त कर ली है और इस कीमत

का प्रदर्शन करने के लिए वे भव्य आयोजन कर रहे हैं। यह भोज नहीं महाभोज है क्योंकि इसकी 'इमारतें' साधारण जन की लाशों की नींव पर खड़ी की गई हैं।

प्र०19. उपन्यास के अंत को आप किस रूप में देखते हैं?

उ० उपन्यास का अंत सकारात्मक है। जब तक बिंदा, लोचन भैया और सक्सेना जैसे लोग रहेंगे तब तक आशा और विश्वास जैसे शब्दों की महत्ता बनी रहेगी परन्तु संघर्ष 'एकला चलो रे' की तर्ज पर नहीं हो सकता। अतः समूह की शक्ति की पहचान अनिवार्य है।

प्र०20. उपन्यास की भाषा पर टिप्पणी करें।

उ० उपन्यास की भाषा व्यंग्यात्मक है। व्यंग्य के माध्यम से लेखिका ने चरित्रों को बखूबी उभारा है। शब्दों का प्रयोग प्रतीकात्मक है यथा दा साहब सदैव बापू का नाम स्मरण करते हैं तथा गीता का पाठ करते हैं। काशी और अहिंसा पर बल देते हैं पर साथ देते हैं हिंसकों का। लेखिका स्वयं अपने आत्मकथ्य में लिखती हैं कि भाषा ऐसी होनी चाहिए जो कथ्य को पाठक तक सम्प्रेषित कर सके। उनका यह कथ्य इस उपन्यास पर भी लागू होता है।

(3) नाटक : कोणार्क : जगदीशचंद्र माथुर

डॉ० रमेश कुमारी खनेजा

1. लेखक-परिचय

जगदीश चन्द्र माथुर हिन्दी-नाटक-साहित्य में गौरवपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। वे एक प्रयोगधर्मी नाटककार रहे हैं। उन्होंने नाटक और रंगमंच को जोड़ने और नाटक की सार्थक रचना-स्तर पर प्रस्तुत करने का अत्यन्त सफल प्रयास किया है। उनकी नाट्य-कृतियों हिन्दी नाटक के विकास की महत्त्वपूर्ण कड़ियाँ कही जा सकती हैं। वे मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं को उठाकर अपनी कला को संवारती हैं। उनकी व्यक्तिवादी चेतना युगबोध से जुड़ी हुई हैं।

श्री जगदीशचन्द्र माथुर का जन्म 16 जुलाई सन् 1917 की उ० प्र० क खुर्जा के पास एक गाँव में हुआ। सन् 1939 में उन्होंने प्रयोग विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1941 में इंडियन सिविल सर्विस में प्रवेश करके वे बिहार में शिक्षा-सचिव बने। सन् 1955 से 1962 तक वे आकाशवाणी के महानिदेशक और उसके उपरान्त कृषि मन्त्रालय में अतिरिक्त सचिव बने। उन्होंने हिन्दी-सलाहकार के रूप में भी कार्य किया। ये सभी तथ्य यद्यपि उनके बाह्य व्यक्तित्व की स्थूल उपलब्धियाँ हैं तथापि इन्होंने उनके साहित्यिक व्यक्तित्व को प्रभावित किया है। उनके नाटक उनके व्यक्तित्व से कहीं प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुए हैं। उनका कहना है– 'मन में भरी अनजानी गाँठे व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति-शैली निर्धारित करती हैं। वस्तुतः उनकी नाट्य-कृतियाँ एक ओर व्यष्टि–चेतना और दूसरीं समष्टि–चेतना से प्रेरित हैं।

माथुर जी के साहित्यिक योगदान को मुख्यतः एकाकी एवं नाटक के क्षेत्र में देखा जा सकता है। उन्होंने शेक्सपीयर, जेम्सबेरी, मेतरलिंक आदि पाश्चात्य नाटककारों का अध्ययन किया हैं, पर अनुकरण के पक्षपाती वे नहीं हैं। उनके प्रसिद्ध एकाकी हैं: 'मेरी बाँसुरी' 'भोर का तारा' 'कलिंग विजय', 'रीढ़ की हड्डी', 'मकड़ी का जाला', 'खण्डहर', 'खिड़की की राह' आदि। उनके एकांकी नयी भाव-चेतना तथा रंग-चेतना को लेकर चले हैं। उससे पूर्व श्री रामकुमार वर्मा, गणेश प्रसाद द्विवेदी, भुवनेश्वर आदि एकांकीकार अपना विशेष स्थान बना चुके थे, किन्तु फिर भी हिन्दी-एकांकी को यथार्थ जीवन के गहन आन्तरिक सत्यों तक पहुँचाने की दिशा में माथुरजी का योगदान विशेषतः उल्लेखनीय है। उन्होंने हिन्दी-एकांकी को अनुभव की तीव्रता, गहरी सामाजिकता, कलात्मक रंगानुभूति, आधुनिक भाव-बोध आदि देकर उसे और अधिक सशक्त बनाया। उन्होंने संख्या की दृष्टि से यद्यपि कम एकांकी लिखे हैं तथापि वे अपने भाव-बोध, शिल्प तथा रंग-मंचीय विशिष्टताओं के कारण पर्याप्त सफलता प्राप्त कर सके हैं।

हिन्दी नाटक के विकास में भी माथुर जी का योगदान स्तुत्य है। उन्होंने हिन्दी–जगत् को 'कोणार्क', 'शारदीया', एवं 'पहला राजा' जैसे उत्कृष्ट नाटक भेंट किये हैं। 'कोणार्क' की रचना उन्होंने उस समय की जब हिन्दी नाटक की अपूर्णता का बोध नये प्रयोगों को आमन्त्रण दे रहा था। यह नाटक पहला प्रयोग है, जो परम्परा को नये स्तर से जोड़ता है। इस नाटक की कथावस्तु ऐतिहासिक है परन्तु उसका नाट्य-शरीर इतिहास की स्थूल घटनाओं और देश-काल की सीमाओं में बँधा हुआ नहीं हैं। इस नाटक की अवधारणा में बुद्धि और हृदय का अपूर्व योग दृष्टिगत होता है। हृदय-तत्त्व को प्रमुखता देने के कारण यह नाटक रंगमंच का काव्य बन गया है। इसमें अभिव्यक्ति काव्य-तत्त्व आरोपित न होकर स्वयं नाटक की कथावस्तु, कथ्य तथा रचनातंत्र में से उत्पन्न हुआ है। कथ्य एवं शिल्प दोनों दृष्टियों से यह नाटक एक सफल प्रयोग हैं।

'शारदीया' में प्रेम और सृजन-प्रक्रिया की समस्या को अंकित किया गया है। 'कोणार्क' के समान इस नाट्य-कृति का भी स्थूल आधार ऐतिहासिक कथा-सूत्र है। इस नाटक के शिल्प में सूक्ष्म बिम्बों, प्रतीकों तथा नाट्य स्थितियों को विशेष प्रश्रय मिला है। नाटककार ने गीत, नृत्य, संस्कृत-नाटकों की काव्यात्मक शैली तथा लोकमंच के तत्त्वों का भी उपयोग करके इस नाटक के गौरव को बढ़ाया है।

'पहला राजा' हिन्दी-नाट्य-साहित्य में एक नवीन संदर्भ हैं। यह मिथक पर आधृत नाटक है। मिथक के ताने-बाने में, उसी के अनुरूप इतिहास और कल्पना का योग किया गया है।

श्री जगदीशचन्द्र माथुर की भाषा बिम्बों, प्रतीकों आदि से युक्त विषयानुसारिणी है। उसमें मौलिकता, प्रौढ़ता तथा भावों एवं विचारों को अभिव्यक्त करने की पूर्ण सामर्थ्य मिलती है। वह शाब्दिक पुनरावृत्ति द्वारा बिम्बों, विचारों एवं भावों को एक निश्चित रूपाकार देने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देती है। इसका सौष्ठव संवादों में आए नाटकीय व्यंग्यों में भी दृष्टव्य हैं। उसी प्रकार माथुरजी की शैली में भी नवीनता, प्रौढ़ता तथा रंगानुभूति की गहनता मिलती है। हास्य-व्यंग्य का समावेश, सार्थक, प्रतीक-योजना एवं निर्भीक व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति उनकी शैली को प्राणवान् बनाती है।

2. कथा-सार

'कोणार्क' जगदीशचन्द्र माथुर की उत्कृष्ट नाट्यकृतियों में से एक है। यह नाटक का प्रकाशन सन् 1951 में हुआ था। माथुर जी ने इसमें विशु तथा धर्मपद नामक शिल्पियों का जीवन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है।

प्रथम अंक

नाटक का आरम्भ कोणार्क मन्दिर के एक कक्ष से होता है जिसमें महाशिल्पी विशु निवास करता है। कोणार्क मंदिर का मुख्य भाग (विमान) टूटा पड़ा है, केवल पत्थरों का ढेर ही रह गया है। मन्दिर का भी ध्वंस हो गया है। किंतु जितना बच गय है उससे शिल्पियों की प्रतिभा और कार्यकुशलता का अनुमान सहज रूप से ही लगाया जा सकता है। मन्दिर की दीवारों, सीढ़ियों, छतों, चक्रों पर सुन्दर-सुन्दर मूर्तियाँ अंकित हैं– ये मूर्तियाँ हैं– घोड़ों, हाथियों, पक्षियों और जानवरों की। अप्सराओं, गन्धवों के चित्र भी दिखाई देते हैं। नृत्यनिरत और सूर्य भगवान् की प्रशंसा में गाते हुए लोगों के चित्र भी हैं। मन्दिरों के तीन द्वार हैं, मुख प्रवेश द्वार पूर्व की ओर है। मन्दिर के उपपीठ पर कलापूर्ण तथा रहस्यपूर्ण चित्र अंकित हैं। मन्दिर की यह झलक जितनी सजावटपूर्ण हैं, उसकी अपेक्षा महाशिल्पी का निवास-स्थान अत्यन्त सादा और अलंकारविहीन है। इधर-उधर कुछ आधी उत्कीर्ण मूर्तियाँ, कुछ छेनियाँ और अन्य औजार भी पड़े हैं। बायीं खिड़की के पास एक लम्बी चौकी रखी है। चौकी पर एक सादा कालीन बिछा है जिस पर महाशिल्पी विशु चिन्तित अवस्था में बैठे हैं। दाहिनी ओर से द्वार के निकट कोणार्क के प्रधान पाषाण-कोर्त्तक राजीव खड़े हैं। विशु के साथ बातचीत के बीच में कभी-कभी मन्दिर की तरफ से पत्थर पर खुदाई की आवाज आती है, जिससे लगता है कि कार्य हो रहा है।

विंशु को कोणार्क मन्दिर पूरा करना है, परन्तु उसका शिखर बाँधने में उसे सफलता नहीं मिल रही है। तब वह प्रधान पाषाणा-कोर्त्तक राजीव से पूछता है कि कब कलश पूरा होगा, 'कब हम अम्ल के ऊपर त्रिपटधर को स्थापित कर पायेंगे?' दस रोज हो गये पर मूर्ति का प्रतिष्ठापन नहीं हो रहा है। राजीव बताता है कि उसने सब प्रयत्न कर लिये फिर भी कलश ठहर नहीं पाता है। विंशु चिन्तित हो उठता है क्योंकि सूर्यदेव के जिस विशाल वाहन का स्वप्न उसने देखा था वह सच्चा होते-होते इस पार्थिव धरातल के उठकर भगवान् के चरण छूने के लिए उतावला हो उठेगा– इस बात से वह अनभिज्ञ ही था।

सौम्यश्री मंच पर आता है। उसके सिर पर उष्णीय, कानों में मकरकुंडल, गले में हार, हाथों में मंजीर है– मानो विशेष रूप से तैयारी की हो। वह अपनी वेशभूषा विशु को दिखाते हुए पूछता है कि नाट्याचार्य की वेशभूषा में कोई कभी तो नहीं हैं? एकाएक राजीव तात सौम्यश्री से प्रश्न करत हैं– "हाथों में वीर श्रृंखला कहाँ है?" सौम्यश्री राजीव को समझाते हुए कहता है कि– "हाथों में मंजीर देखते हों? मंजीर बजाने की भंगिमा यदि नहीं हो तो वह नाट्यचार्य की मूर्ति क्यों कर लगेगी? यदि मंजीर बजाना है तो सुवर्ण श्रृखंला कलाइयों में कैसे ठहर सकती है?" विशु को ध्यानमग्न देख-कर सौम्यश्री रूक जाता है और उससे प्रश्न करता है– "मामला क्या है विशु?" विशु राजीव से पूछता है कि ज्योतिषी क्या कहता है? राजीव ज्योतिषी की भविष्यवाणी बताता है कि "कोणार्क देवालय ज्यों ही पूरा होगा त्यों ही इसके पत्थरों में पंख लग जायेंगे और सारा मन्दिर आकाश में उड़ जायगा।" सौम्यश्री इस भविष्यवाणी में थोड़ा परिवर्तन चाहता है। मन्दिर उड़ेगा नहीं परन्तु नाट्याचार्य सौम्यश्री के संकेत पर जब नट मन्दिर में देवदासियों नृत्य करेंगी तो ताल देने के लिए कोणार्क देवालय ही थिरक उठेगा। विशु की सौम्यश्री का यह परिहास अच्छा नहीं लगता। तब सौम्यश्री गम्भीर मुद्रा में विशु से पूछता है कि क्या कोणार्क के ये भारी पत्थर, ये विशालकाय मूर्तियाँ गगनगामी हो जायेंगी? विशु को विश्वास है कि शिल्पियों ने पत्थर में जान डाल दी है। पत्थर का यह मन्दिर कल्पना के स्पर्श से हवा की तरह गतिमान, सुगन्ध की तरह सर्वव्यापी हो गया है। किन्तु धरती ने ईर्ष्या से उसे जकड़ लिया है। विशु को लगता है कि अनजाने ही उन लोगों ने पृथ्वी और आकाश के बीच भीषण संघर्ष शुरू कर दिया है। वास्तव में विशु के मन में आदर्श और यथार्थ का द्वन्द्व उभरने लगता है। सौम्यश्री विशु को पृथ्वी और आकाश के संघर्ष को छोड़कर उत्कल के पृथ्वीपति की क्रोधाग्नि को झेलने का प्रबन्ध करने की सलाह देता हैं। वह महामात्य राजराज चालुक्य के अत्याचारों से परिचित है और यह भी जानता है कि चालुक्य उत्कल-नरेश के क्षणिक क्रोध को सदा प्रज्ज्वलित रखता है। किन्तु विशु को किसी की चिन्ता नहीं। चिन्ता है तो केवल कोणार्क को पूरा करने की। राजीव विशु के विचारों को बदलने के लिए उसे एक किशोर शिल्पी-धर्मपद से मिलने का आग्रह करता है। धर्मपद की आयु 16 वर्ष भी नहीं है, किन्तु बुद्धि तीक्ष्ण है। वह एक विचित्र जीव है। कभी तो मौन हो मन्दिर के कलश की और निर्निमेष देखता रहता है और कभी कल्प समय में ही चमत्कारपूर्ण मूर्तियाँ तैयार कर देता है। राजीव धर्मपद को वहाँ बुलाना चाहता है ताकि उसकी ओजमयी वाणी से विशु के विस्मृत विद्रोह की कुछ ताप मिल सके। किन्तु कला प्रेमी विशु की एकान्त साधना का पक्षपाती है।

सौम्यश्री विशु से कहता है कि वह उसकी मूर्ति को पूरा कर पायेगा। वह प्रतिभावान् किशोर धर्मपद ही उसे पूरा करेगा। विशु तिलमिला उठता है– यह कैसे हो सकता है, लाओ अभी पूरा करता हूँ। विशु छेनी–हथौड़ी से अधूरी मूर्ति को पूरा करने में लग जाता है। सौम्यश्री को जितनी देर उस वेश-भूषा में खड़े होना पड़ता है उतना ही समय उसे संगीतक की तैयारी के लिए मिल जाता है। उसके विचार से क्या ही अच्छा होता यदि जयदेव ने सूर्य भगवान् पर वैसा ही संगीतक रचा होता। विशु उससे पूछता है कि क्या सच भास्कर भगवान् पर ही संगीतक प्रदर्शित करोगे? लेकिन सूर्य भगवान् की कथा में वह रमणीयता कहाँ है? सौम्यश्री विशु को विश्वास दिलाता है कि "उसमें रमणीयता भी है और प्रणय प्रसंग भी है। लोग समझते हैं कि कुन्ती ने ऋषि का वरदान जांचने के लिए सूर्य का आह्वान किया। लेकिन नहीं, क्षितिज पर सवेरे की अरुणिमा की भाँति तेजस्वी सूर्यदेव का मादक स्वरूप कुन्ती के मानस गगन के छोर पर खिंच गया और जैसे पूर्व दिशा की लालिमा मध्याह का जगमगाता और प्रचण्ड ताप बन जाती है ठीक वैसे ही दोनों का अनुराग एक उत्तप्त और विश्वव्यापी विलास बन गया। कोणार्क की युगल मूर्तियों में वही विलास बिखरा पड़ा है। विलास के बाद वियोग। सौम्यश्री के संगीतक में जयदेव और कालिदास दोनों का मणिकांचन संयोग होगा और मुद्राओं में शकुन्तला की विवशता, अज्ञात संतान का भार लिये कुन्ती उपालम्भ करेगी। अपने दिव्य तेजस्वी प्रेमी सूर्य देवता के प्रति उसकी निष्ठुरता, निर्ममता तथा हृदयहीनता जागृत होगी।" सौम्यश्री की बातें सुनकर विशु उत्तेजित हो उठकर खड़ा हो जाता है और कहता है कि यह संगीतक कभी नहीं होगा। सौम्यश्री विशु की उत्तेजना का कारण पूछता है। विशु मूर्ति के कण्ठा–भरण के बीच कंकण को देखकर कहता है कि "वह कंकण तो किसी हतभाग्य सूर्यदेव ने किसी सम्मोहित कुन्ती को दिया था। सत्तरह वर्ष हुए वह वन की कली थी और जंगली शबर जाति की कन्या थी। उसका नाम सारिका था।... नगर की ऊँची अटारी का वासी सूर्य उस वन-कलिका पर मुग्ध हो गया। जैसे स्वर और ताल एक–दूसरे पर रीझते हैं।" सौम्यश्री उस अटारी के टूटने का कारण पूछता है। विशु स्वयं को ही कायर बताते हुए कहता है कि जब उसे मालूम हुआ कि सारिका माँ बनने वाली है तो वह कुल और कुटुम्ब के भय से भुवनेश्वर के देव-मन्दिर में, कला के आँचल में अपना मुह छिपाने भाग आया। विशु को दुःख इसी बात का है कि भव्य मन्दिरों का निर्माण करने वाले उसके हाथ सारिका और उसकी संतान के लिए एक झोपड़ी भी न बना सके और इसीलिए वह कहता है कि कोणार्क पूरा नहीं हुआ तो उसे नष्ट करना होगा।

इतने में ही धर्मपद वहाँ आ जाता है। उसका रंग सौवला है। उसके दृढ़ कपौल, तेजोमयी आँखे, घुंघराले बाल घोषित करते हैं कि वह असाधारण प्रवृत्ति का व्यक्ति है। विशु धर्मपद से कहता है कि सुना है कि तुम आशु शिल्पी हो। इस छोटी अवस्था में तुम्हें किस गुरू ने दीक्षा दी है? धर्मपद उत्तर देता है कि किसी आचार्य ने नहीं। वह शिल्पी बना, क्योंकि उसे जीवित रहना था। विशु कोणार्क की ओर संकेत करते हुए उसे बताता है कि यह मन्दिर नहीं, सारे जीवन की गति का रूपक है। इसमें मनुष्य के सारे धर्म, उसकी सारी वासनायें, मनोरंजन और मुद्राएँ चित्रित हैं। यही जीवन है। किन्तु धर्मपद जीवन के आदि और उत्कर्ष के बीच पुरुषार्थ को सत्य मानता है। मूर्तियों में बंधे रसिक जोड़ों में भी उसे पसीने में नहाते हुए किसान तथा दिन-दिन भर कुल्हाड़ी लेकर खटने वाले लकड़हारे ही दिखाई देते हैं। पिछले दस दिन से निरन्तर चेष्टा करने पर भी मन्दिर पर जो कलश स्थापित नहीं हो सका– उसे वह स्थापित करने का आश्वासन देता है।

इतने में ही राजीव चालुक्य के आने की सूचना देता है। चालुक्य की आयु 45 वर्ष है। मुख पर क्रूर मुद्रा है तथा बड़ी-बड़ी मूछें हैं। पुराने ढंग से धोती बंधी हुई है। रेशमी उत्तरीय है और मस्तक पर सुवर्ण घट है और कमर में कटार है। सब लोग झुककर महामात्य को प्रणाम करते हैं। चालुक्य उनकी अभयर्थना की उपेक्षा करते हुए उन्हें यह कहकर फटकारने लगता है कि कोणार्क में राज्य-कोष का धन नष्ट हो रहा है। एक सप्ताह के भीतर यदि कोणार्क देवालय पूरा न हुआ तो शिल्पियों के हाथ काट दिये जायेंगे– यही उत्कल-नरेश की आज्ञा है। चालुक्य का इतना भीषण दण्ड सुनकर सबके हृदय दहल उठते हैं किन्तु धर्मपद कहता है कि ऐसी नौबत नहीं आयेगी। वह विशु से अम्ल के ऊपर शिखर को स्थापित करने का अवसर माँगता है। उसे लगता है कि कोणार्क के कमल की पंखुड़ियाँ उलटी हैं। उन्हें उलट देने पर कलश शायद ठहर सकेगा।

विशु को जैसे अन्धकार में कोई प्रकाश-किरण दिखाई दे गई हो। उसे धर्मपद की बात सारहीन नहीं लगती। वह धर्मपद के साथ छत्र के ऊपर चढ़कर पटल बदलने की तैयारी करना चाहता है किन्तु धर्मपद यह शर्त रखता है कि यदि शिखर पूरा हो गया तो विशु को मन्दिर प्रतिष्ठान के दिन अपने सब अधिकार उसे दे देने होंगे। विशु एक दिन के अधिकार तो क्या, अपने स्थान पर ही उसे प्रधान शिल्पी बना देने को तत्पर हो जाता है। धर्मपद विशु के हृदय की ठण्डी होती हुई राख को फूँक मार कर प्रज्जवलित कर देता है। कोणार्क को पूरा करने के लिए आतुर विशु धर्मपद का हाथ पकड़ कर मध्य द्वार से तेजी से बाहर चला जाता है। यहीं पर प्रथम अंक समाप्त हो जाता है।

द्वितीय अंक

द्वितीय अंक का आरम्भ भी महाशिल्पी विशु के कक्ष से होता है। कक्ष पहले की अपेक्षा अधिक सुव्यवस्थित है। वातायन और द्वार में से तोरण एवं पताकाओं से सुशोभित मन्दिर की आभा उत्कल-नरेश की उपस्थिति को घोषित करती है। वसन और आभूषण भव्य होने के साथ-साथ नरसिंहदेव के व्यक्तित्व में दर्प और आत्मीयता का आकर्षक मिश्रण है। वह बंग प्रदेश से यवनों को पराजित कर वापस आने के बाद कोणार्क मन्दिर की और आ जाता है। मन्दिर को पूरा देखकर वह प्रसन्न हो उठता है। वह विशु को रत्नमाला देने के लिए बुलाता है, लेकिन वह नहीं लेता। वह धर्मपद को अन्दर बुलाता है और राजा से कहता है कि यही रत्नमाला का अधिकारी है। महाराज की समझ में नहीं आता है कि विशु ऐसा क्यों कर रहा है? तब विशु उत्तर देता है कि महाराज आज के दिन प्रधान-पद इसी को दिया जाए क्योंकि उसने उसे वचन दिया है। इसी के कारण कोणार्क का मन्दिर पूरा हुआ है। यह सुनकर राजा धर्मपद का स्वागत करता है। थोड़ी देर बाद धर्मपद राजा के आगे शिल्पियों की दर्द भरी कहानी प्रस्तुत करता है। वह राजा से सवाल करता है कि कारीगरों को मुद्राओं का पुरस्कार देना क्यों बन्द किया गया? नरसिंह देव इस बात से अनभिज्ञ है इसीलिए वह चकित होकर कहता है कि जो पत्थर को जीवनदान दे उसके जीवन को वह अजस्र देखना चाहता है। वह नहीं चाहता है कि सौन्दर्य के सदन कोणार्क पर किसी भी कालिमा की छाया रहे, वह उसे हर्ष और उल्लास का प्रतीक देखना चाहता है।

इतने में ही एक प्रतिहारी के द्वारा ज्ञात होता कि महाषड्यन्त्र हुआ है और तीन दिशाओं में दण्डपाशिक मन्दिर को घेर रहे हैं। अर्थात् यह सब चाल चालुक्य की ही है। दूत शैवालिक नरसिंह देव को आत्मसमर्पण करने के लिए कहता है किन्तु नरसिंह देव इसे स्वीकार नहीं करता। धर्मपद की चुनौती को स्वीकार करते हुए उसे अंगारों भरा यह संदेशा देता है कि कलिंग–नरेश श्री नरसिंह देव महाराज अत्याचारी विश्वासघातियों की धमकियों की चिन्ता नहीं करते। वे आज अकेले नहीं हैं। उनके पीछे वह शक्ति है जिससे धरती धर्रा उठेगी। कोणार्क का मंदिर दुर्ग का काम करेगा और कुदाली, दण्ड, हथौड़े और पत्थर अस्त्रों का काम करेंगे। नरसिंहदेव धर्मदेव से प्रसन्न होकर उसे कोणार्क का दुर्गपति बना देते हैं। अवसर का लाभ उठाकर धर्मपद नरसिंह देव को दुर्गपति का आदेश मानने को बाध्य करता है। वह राजा को मन्दिर के पिछले भाग में जाने को कहता है क्योंकि वह स्थान सुरक्षित है। नरसिंह देव रात्रि के प्रथम प्रहर तक अपने को धर्मपद के हाथों सौंप देता है और उस समय तक उसे अपना निर्देशक मानता है। किन्तु धर्मपद निर्देशक का पद स्वयं को नहीं, सौन्दर्य विधाता उन हजारों शिल्पियों को मानता है जिनकी आत्मा की तड़पन ही कलिंग–नरेश का अमोघ वज्र है। युद्ध से पहले सभी उस प्रचण्ड भैरवी का अवलोकन करने चल पड़ते हैं। चारों और 'जय कलिंग नरेश', 'जय कोणार्क दुर्ग की जय' के नारे लगाते हैं। विशु मूर्तिवत् खड़ा सुन रहा है लेकिन सुन नहीं पाता। देख रहा है पर देख नहीं पाता। सब लोग अपने-अपने कार्य की तैयारी में जुट जाते हैं, पर विशु सोचता ही रहता है कि आखिर धर्मपद कौन है?

तृतीय अंक

रात्रि का समय है। युद्ध रूक गया है। गर्भ–गृह के कपाट बन्द हैं। दीपक के मन्द प्रकाश में बायीं ओर एक मूर्ति की और निर्निमेष देखता हुआ विशु दिखाई पड़ता है जो त्रस्त और अधीर मुद्र में है। सौम्यश्री दत्त धर्मपद की शूरता का वर्णन करता है कि उसने गजब का पराक्रम दिखाया। एक–एक शिल्पी उसे देखकर पाँच–पाँच सैनिकों के तुल्य हो गया। उसका मूर्च्छित होना था कि शिल्पियों में बिजली दौड़ गई। हाथी के दाँत के कंकण के कारण विशु को विदित होता है कि धर्मपद उसी का बेटा है। सौम्यश्री उसे बताता है कि उसकी मूर्च्छा दूर हो गयी है। अब वह पुनः युद्ध के लिए तैयार है इस पर विशु धर्मपद को युद्ध में जाते सुनकर विह्वल हो उठता है। इतने में ही धर्मपद वहाँ आ जाता है। सौम्यश्री मूर्च्छा के बाद उसे विश्राम करने को कहता है। रात्रि का विश्राम ही संजीवनी बूटी है। किन्तु धर्मपद अपने गले में पड़े कण्ठहार को उससे भी अधिक शक्तिवर्धक संजीवनी समझता है। ज्यों ही वह अपनी गरदन टटोलता है तो उसे कंठहार के लोप हो जाने का दुःख होता है। वह सौम्यश्री से कंठहार के विषय में पूछता है। सौम्यश्री अपनी मूर्ति के कण्ठ के हार की और संकेत करता है– बिल्कुल ही वैसा किन्तु वह तो पत्थर में अंकित है। वह नाट्याचार्य से इस पहेली के विषय में पूछता है। विशु उसे बताता है कि मूर्ति का कण्ठहार उसी ने अंकित किया है और इस हाथीदाँत के कंकण का शिल्पी भी वही है। इतना कहकर वह मुट्ठी खोल देता है। धर्मपद बताता है कि यह कंकण तो उसकी माँ ने उसे दिया था जो अब इस संसार में नहीं हैं। मृत्यु से पहले उसने उसे बताया था कि वह उसके पिता की देन है। विशु धर्मपद के हाथ को अपने चेहरे में लेकर रोने लगता है और सौम्यश्री को आपबीती सुनाता है– "सत्रह वर्ष पूर्व वह अपने नगर में सारिका नामक युवती से प्यार करता था, किन्तु जब उसे यह पता चला कि वह माँ बनने वाली है तो वह उसे गर्भावस्था में निराश्रित छोड़कर भाग आया था– धर्मपद उसी का पुत्र है।" इतने बरसों के उपरान्त पिता–पुत्र की भेंट हो जाती है। विशु अपने पुत्र को देखकर पागल–सा हो जाता है। वह उसमें अपना व्यक्तित्व देखकर कह उठता है, "तुम शिल्पी विशु के पुत्र हो;

धर्मा! कोणार्क और किसी के स्पर्श के कैसे जग सकता था? जैसे मरुस्थल में कहीं निर्झरिणी सहसा गायब हो जाने पर भी अन्यत्र बह निकलती है, वैसे ही मेरी भटकी हुई प्रतिभा तुम्हारे मन में विकस उठी धर्मा! सैंकड़ो, हजारों बरसों तक कोणार्क के उन्नत शिखर को देखकर लोग कहेंगे कि यह विशु और उसके बेटे की कला की सर्वोत्कृष्ट कृति हैं।" इस रहस्य को जानकर धर्मपद विस्मित हो उठता है। इसी बीच एक प्रतिहारी द्वारा उन्हें यह सूचना मिलती है कि चालुक्य के साथियों ने मन्दिर की एक प्राचीर तोड़ डाली है और वे उसमें होकर मन्दिर के अन्दर आने का प्रयास कर रहे हैं। धर्मपद पुनः युद्ध के लिए तत्पर हो जाता है। विहल विशु सौम्यश्री से अनुरोध करता है कि वह धर्मपद के प्राण बचाने का प्रयास करे। पिता को व्याकुल देखकर धर्मपद उसे पिता होने से पहले एक शिल्पी होने का कर्त्तव्यबोध कराता है और स्वयं शत्रुओं से जुझ पड़ता है। शत्रु उसके टुकड़े–टुकड़े करके समुद्र में फेंक देते हैं। प्रतिशोध की अग्नि में जलता विशु हथौड़ा लेकर गर्भ-गृह में घुस जाता है और चुम्बक तोड़ने लगता है। सौम्यश्री और चालुक्य के कहने पर भी विशु द्वार नहीं खोलता। दोनों धक्के से द्वार खोल लेते हैं और उन्हें निराधार सूर्य–प्रतिमा हिलती हुई दिखाई पड़ती है जिसको देखकर सैनिक डरकर भाग जाते हैं। चुम्बक के टूटते ही त्रिपटधर, सूर्य की प्रतिमा, दीवारें आदि सब शैवालिक और चालुक्य आदि पर गिर पड़ती हैं और वे वहीं समाप्त हो जाते हैं। तभी गर्भ–गृह के भीतर विशु दिखाई पड़ता है। उसके माथे और भुजाओं पर रक्त किन्तु चेहरे पर दिव्य शान्ति और वाणी में अलभ्य तृप्ति हैं। विशु आर्त्त वाणी में कह उठता है, "प्रतिशोध .... मेरे देवता। मेरे दिवाकर शिल्पी का प्रतिशोध।" यह कहकर विशु धीरे–धीरे नीचे गिरता है। इतने में अन्धकार गाढ़ा हो जाता है तथा सहसा एक विक्षिप्त बाह्य संगीत उभर उठता हैं, जिसमें मृदंग इत्यादि ताल वाद्य विशेष प्रखर हैं।

3. कथा-शिल्प

जगदीशचन्द्र माथुर ने 'कोणार्क' नाटक में विशु तथा धर्मपद नामक शिल्पियों का जीवन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। नाटक भले ही पूर्णतः शुष्क इतिहास-तथ्यों को लेकर न चला हो, किन्तु नाटक की पृष्ठभूमि अर्थात् कोणार्क का निर्माण और उसके ध्वंस की घटना पूर्णतः ऐतिहासिक है। इसमें नाटककार ने कुछ सूत्र इतिहास से ग्रहण कर अपनी कल्पना से विशु की प्रणय–कथा जोड़कर एक सरस और सुगठित कथानक का निर्माण किया है।

नाटक में महत्त्व की दृष्टि से कथावस्तु दो प्रकार की होती हैं– (1) **आधिकारिक कथा** (मुख्य कथानक), (2) **प्रासंगिक कथा** (गौण कथानक)। जो कथा नाटक में आदि से अन्त तक क्रमानुसार विकसित होकर अन्तिम कार्य (उद्देश्य) से समाप्त होती है वह 'आधिकारिक कथा' कहलाती है। इस आधिकारिक कथा के विकास में सहयोग देने वाली वे घटनाएँ तथा कथाएं प्रासंगिक कहलाती हैं जिनका अस्तित्व सीमित और थोड़ी देर के लिए रहता है। 'कोणार्क' नाटक की कथा-वस्तु का सम्य् अनुशीलन करने पर यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि विशु, धर्मपद और कोणार्क मन्दिर के ध्वंस से सम्बन्द्ध कथा ही नाटक की मुख्य कथा है। यह कथा नाटक पर आदि से अन्त तक छाई रहती है। विशु और उसकी प्रेमिका सारिका की कथा, चालुक्य की कथा कथाएँ मुख्य कथानक को ही विकसित करती है। यह प्रासंगिक कथाएँ मूलकथा से इतनी सम्बद्ध हैं कि उनमें किसी प्रकार का अलगाव नहीं मिलता।

कथावस्तु के मूल स्रोत की दृष्टि से उसके तीन भेद किये जाते हैं– (1) **प्रख्यात**– इतिहास अथवा पुराण में बहुत पहले से प्रचलित कथा। (2) **उत्पाद्य**– केवल कल्पना के आधार पर प्रस्तुत की गई कथा। (3) **मिश्रित**– जिस कथा में प्रख्यात ऐतिहासिक या पौराणिक और उत्पाद्य (कल्पित) का मेल होता है। कोणार्क नाटक की मूलकथा का स्रोत भले ही ऐतिहासिक है अर्थात् कथानक की पृष्ठभूमि–कोणार्क के सूर्य मन्दिर की घटना ही ऐतिहासिक है अन्यथा सारा कथापट कल्पना से बुना है। नरसिंह देव ऐतिहासिक व्यक्ति अवश्य हैं किन्तु उनसे सम्बद्ध घटनाएँ भी प्रायः काल्पनिक ही हैं। विशु–सारिका की प्रणय कथा भी काल्पनिक है। इसलिए इस कथानक को हम मिश्रित कह सकते हैं। (इस नाटक की ऐतिहासिकता पर आगे विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है।)

कथा-विकास की दृष्टि से उसकी पाँच अवस्थाएँ स्वीकार की गई हैं– प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, फलागम। किसी एक घटना से कथा का आरम्भ होता है। फिर फल की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया जाता है। प्रयत्न में सफलता की आशा प्राप्त्याशा कहलाती है। फल की प्राप्ति फलागम है। इन पाँच अवस्थाओं की योजना के लिए पाँच अर्थ–प्रकृतियाँ होती हैं– बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य। अवस्थाओं में और अर्थ–प्रकृतियों के सामंजस्य से पाँच वृत्तियों का जन्म होता हैं–मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, निर्वहण। कोणार्क नाटक पाश्चात्य नाट्य-शैली में लिखा गया नाटक है। इसलिए इसमें पाश्चात्य दृष्टिकोण को प्रश्रय मिला है। फिर भी इस नाटक में कार्यावस्थाओं, अर्थ–प्रकृतियों एवं सन्धियों का पूर्ण अभाव नहीं है। यह सब भी पाश्चात्य तत्त्वों में ही समयोजित हो गये हैं। इसका कारण यह है कि आज के नाटककार सदा रूढ़ियों का विरोध करते रहे हैं। वे सदैव विषय और उसकी संप्रेषणीयता को ध्यान में रखते हुए अपनी रचना के शिल्प को ढालते रहे हैं।

नाटक का प्रथम अंक उसकी कथावस्तु का आरम्भ कहा जा सकता है। विशु का यह कथन– "कब? आखिर कब इस अम्ल के ऊपर त्रिपटघर को स्थापित कर पायेंगे? आज दस रोज हो गये। केवल इसी के कारण मूर्ति का प्रतिष्ठापन नहीं हो पा रहा है"– नाटक की प्रारम्भ अवस्था है। पाश्चत्य कथावस्तु की समीक्षा के अनुसार विशु का अन्तर्द्वन्द्व भी इन शब्दों के द्वारा उभरकर हमारे सामने आता है। इसी अंक में सौम्य के साथ सूर्य और कुन्ती की प्रतीक–कथा के रूप में सारिका और उसकी सन्तान की कथा तथा चालुक्य की धमकी आदि घटनाएँ इस द्वन्द्व को बढ़ाने में सहयोग देती है। विशु जब धर्मपद की बात का समर्थन करते हुए कहता है– "तुम ठीक कहते हो युवक (खड़े होते हुए) तुम ठीक कहते हो। भार को हल्का करने के लिए अगर पटल को अन्तर्मुखी कर दिया जाय तो सम्भव है, सम्भव है"– यहाँ पर विकास नामक अवस्था दिखाई देती है। वहीं पर कोणार्क मन्दिर पर कलश स्थापित हो जाने की सूचना विशु का मिलती है। विशु के मन का अन्तर्द्वन्द्व इतना बढ़ जाता है कि यह धर्मपद के विषय में जानने को आतुर हो जाता है– "मैं जानना चाहता हूँ कि सोमू कि ... (कुछ रुककर धीरे–धीरे) कि यह धर्मपद कौन है? (हठात् तीव्र स्वर) कौन हैं?... (मन्द विवश स्वर) कौन हैं" विशु के इस कथन में कथानक की चरमसीमा, है। धर्मपद के गले का हार जब विशु को मिल जाता है तो उसे विश्वास हो जाता है कि यह उसी का पुत्र है। विशु के अन्तर्द्वन्द्व के शान्त होने की इस स्थिति को उतार नामक अवस्था कह सकते हैं। विशु को अत्याचार का प्रहार हो रहा है... आतंक के हाथों में जकड़ी हुई कला सिसकेगी। वही कारीगर की सबसे बड़ी हार होगी।" धर्मा के इन शब्दों से विशु का सोया हुआ स्वाभिमान जाग उठता है। वह प्रतिशोध लेने का संकल्प करता है और मन्दिर के चुम्बक को तोड़कर गिरा देते हैं। चालुक्य आदि सभी दब जाते हैं तो वह कहता है– "प्रतिशोध...मेरे देवता... मेरे दिवाकर, शिल्पी का प्रतिशोध।" उसकी भी मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार नाटक का अन्त दुखान्त होता है। मन्दिर को तोड़ने की घटना को फलागम कहा जायेगा अन्यथा भारतीय तत्त्वों के आधार पर इस कथानक की समीक्षा नहीं की जा सकती है।

कथावस्तु की अन्य विशेषताएँ

कोणार्क नाटक की कथावस्तु को प्रभावशाली बनाने के लिए नाटककार ने अनेक नाटकीय विधियों का सफल प्रयोग किये है जिन्हें मुख्य रूप से हम निम्नलिखित शीर्षक के अनुसार स्पष्ट कर सकते हैं– सुगठितता, रोचकता, कौतूहलता, मार्मिकता, स्वाभाविकता।

सुगठितता– 'कोणार्क' नाटक का कथानक पर्याप्त सुगठित है। नाटक की हर घटना कारण-कार्य-सम्बन्ध से जुड़ी हुई है। नाटक में मुख्य कथा के साथ-साथ कुछ अवान्तर घटनाओं के संयोजन का प्रावधान भी नाट्य शास्त्र में किया गया है। इस नाटक में भी विशु, धर्मपद और कोणार्क मन्दिर के ध्वंस की मुख्य कथा के साथ कुछ अवान्तर कथाओं– जैसे विशु और उसकी प्रेमिका सारिका की कथा, चालुक्य की कथा आदि का संयोजन किया गया है। प्रांसगिक कथाएँ मुख्य कथा का विकास करने या मुख्य कथा जहाँ अवरूद्ध हो रही हो, उसे गति देने के लिए आई हैं। इससे स्पष्ट हैं कि कोणार्क नाटक की कथा में अवान्तर कथाएँ और उनमें निहित घटनाएँ परस्पर सुसम्बन्द्ध हैं।

रोचकता एवं कौतूहलता– नाटकीय कथावस्तु में रोचकता का प्राणतत्त्व हैं– कुतूहल। दर्शक (या पाठक) के हृदय में भावी घटनाओं और परिणामों के प्रति निरन्तर जिज्ञासा बने रहना कथावस्तु की रोचकता तथा सफलता की कसौटी है। इस दृष्टि से भी 'कोणार्क' नाटक सफल है। नाटक के आरम्भ में ही विशु का यह प्रश्नसूचक कथन दर्शकों के मन में अनेक जिज्ञासाएँ उत्पन्न कर देता है– "आखिर हम कब अम्ल के ऊपर त्रिपटधर को स्थापित कर पायेंगे? विशु का यह कथन पाठकों के मन में कौतूहल की सृष्टि कर देता है। वह यह सोचने को विवश हो जाता है कि मन्दिर पूरा कब होगा?" विशु और सारिका के प्रणय–सम्बन्ध में भी विशु के मुख की भाव-भंगिमाओं को देखकर प्रेक्षक वास्तविकता जानने के लिए उत्सुक हो उठते हैं। माथुर जी ने विशु का अपनी प्रमिका सारिका और पुनः अपने पुत्र धर्मपद के अन्तर्द्वन्द्व को व्यक्त कर कथा को रोचक बना दिया है–

विशु : वह अभागा श्रीधर में ही हूँ। विशु मेरा छद्म नाम है, जो मैंने शबर अटीविका से भाग जाने पर रख लिया था। मैं ही वह श्रीधर हूँ, जिसके कारण तुम्हारी माँ को इतने कष्ट उठाने पड़े। मैं ही वह कठोर पापी, निर्दय तुम्हारा पिता हूँ, जिसने.. (अपने चेहरे पर हाथ रख लेता है।)

धर्मपद : (विशु के निकट जाकर मन्द स्वर में) आचार्य?

विशु : (हल्के स्वर में) मुझे पिता कहो धर्मो!

धर्मापद : पिता! (विशु के चरणों के पास धरती पर बैठता हुआ चाव भरे स्वर में) क्या आपको मेरी माँ की याद आती है?

विशु : बीस बरस से उस याद के बल पर जी रहा हूँ।

इस प्रकार 'कोणार्क' नाटक में कुतुहल तत्त्व की आद्योपान्त उपस्थिति इसके कथानक में निरन्तर रोचकता बनाये रखती है।

मार्मिकता– कथानक में ऐसे संवादों की योजना भी होनी चाहिए जो कि पाठक–दर्शक के हृदय को छूने की क्षमता रखते हों, उन पर प्रभाव डालने की शक्ति हो और दर्शक–पाठक नाटकीय कथा में रम सकें, उससे तादात्म्य स्थापित कर सकें। यह मार्मिकता का गुण ही कथानक को प्रभविष्णु बनाता है। विशु एवं सौम्यश्री का निम्न संवाद मार्मिकता के गुण से ओत-प्रोत है–

विशु : हाँ सौमू! (विभोर–सा) वह बन की कली थी। जंगली शबर जाति की कन्या। चट्टान को फोड़कर बहने वाली निर्द्वन्द्व, निष्कलुष जल–धारा।

सौम्य : शबर कन्या?

विशु : उसका नाम था सारिका। हमारे नगर में हाट के दिन, अपने गाँव वालों के साथ जंगली छाल, जड़ियाँ बेचने आती।

सौम्य : और नगर की ऊँची अटारी का वासी सूर्य, उन वन–कलिका पर मुग्ध हो गया।

विशु : जैसे स्वर और ताल एक–दूसरे पर रीझते हैं। वह मदभरे पावस–सी उन्मत्त थी, पुष्पावृत, कामनी तरु–सी सम्पन्न।

सौम्य : लेकिन वह रागिनी टूटी कैसे?

विशु : वही कारपन की कथा। सूर्यदेव भी तो कायर ही थे?

ऐसे मार्मिक स्थलों की अवतारणा से कथानक की नाटकीयता में अभिवृद्धि हुई है।

स्वाभाविकता– कोणार्क नाटक का कथानक इतिहास–प्रसिद्ध है। इतिहास ग्रन्थों के अनुसार गंगवंशीय महाप्रतापी राजा नरसिंहदेव का उड़ीसा में राज्यकाल ईसवी सन् 1238 से 1264 तक रहा। उड़ीसा के जागीरों के लेखपत्रों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि नरसिंह देव ने ही कोणार्क का निर्माण कराया। यह भी ऐतिहासिक सत्य है कि नरसिंह-देव ने बंग प्रदेश में मुसलमान सूबेदार को पराजित किया। नरसिंहदेव के मन्त्रियों में प्रमुख थे पूर्वीय चालुक्य वंश के राजराज। यह बात श्रीकूर्मम् के एक लेख से प्रमाणित होती है। तेरहवीं शताब्दी में उड़ीसा में निर्मित सूर्य मन्दिर के साथ प्रणय की सूक्ष्म संवेदनाओं को जोड़कर कलाकारों की युगों से संचित अभिलाषाओं का विद्रोहात्मक रूप कोणार्क के रूप में माथुर जी ने प्रस्तुत किया है। कलाकार के मानसिक संघर्ष को नाटककार ने स्वाभाविक रूप से अंकित किया है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'कोणार्क' नाटक का कथा–शिल्प एक विशिष्ट सशक्तता लिये हुए है जिसकी सूक्ष्म बुनावट और बहु रेखाओं को पाठक की दृष्टि पकड़-पकड़कर रह जाती है।

(i) कोणार्क की ऐतिहासिकता

डॉ० मीनाक्षी व्यास
मुक्त शिक्षा विद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों की परम्परा में कोणार्क का विशिष्ट स्थान है। कोणार्क का कथानक उड़ीसा के प्रसिद्ध कोणार्क मन्दिर के निर्माण और विध्वंस की घटना से सम्बन्धित है। इस नाट्य कथानक में अपनी कला के द्वारा सौन्दर्य की सृष्टि में तल्लीन कलाकर को वास्तविक जीवन के संघर्षो के प्रति सचेत करना, सत्ता के अत्याचारों के प्रति जागरूक बनाना, गलत स्थितियों के सामने झुकने की बजाए विद्रोह के लिए प्रेरित करना नाटककार श्री माथुर का उद्देश्य है, जिसकी पूर्ति के लिए उन्होंने इतिहास का सहारा लिया है। साथ ही कोणार्क के बनने और टूटने के ऐतिहासिक क्रम में उन्होंने अपनी कल्पना का भी समावेश किया है। इतिहास और कल्पना के सभी तत्त्व मिलकर नाटक की विभिन्न स्थितियों को व्यापक और उदात्त रूप देने तथा नाटक के समस्त वातावरण को गरिमा–मण्डित करने में सहायक बने हैं।

इस नाटक का कथानक ऐतिहासिक होते हुए भी गठन की दृष्टि से नाटककार की कल्पना और अनुभूति पर आधारित है। नाटक की ऐतिहासिक कथा एक ओर आधुनिक जनचेतना और राजनीतिक-समाजिक समस्याओं को प्रभावशाली ढंग से उभरती है तो दूसरी और कलाकार के अन्तर्द्वन्द्व और उसकी पीड़ाओं को उजागर करती है। इनमें से नाटक के मुख्य पात्र विशु के माध्यम से कलाकर के शाश्वत द्वन्द्व को और धर्मपद के चरित्र में आधुनिक जनचेतना को अभिव्यक्त किया गया है।

'कोणार्क' की कथावस्तु ख्यात है। नाटककार ने कथावस्तु का आधार जगन्नाथ पुरी से 19 मील दूर समुद्र तट पर स्थित खण्डित सूर्य मन्दिर कोणार्क को बनाया है। कोणार्क के देवालय के बारे में कुछ ऐतिहासिक तथ्य नाटक के आरम्भ में 'परिचय' के अन्तर्गत दिए गए हैं। नाटककार के अनुसार इस सम्बन्ध में एक बात महत्त्वपूर्ण है कि "मध्यकालीन उड़ीसा के मन्दिरों की परम्परा में यह अन्तिम भवन है। इसके बाद न जाने कैसे क्यों उड़ीसा में उस कोटि और शैली के मन्दिरों का बनाना ही बन्द हो गया और मानों शिल्पियों के कुल ही तिरोहित हो गए।" (कोणार्क; परिचय, पृ. 10) इसके अलावा एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह है कि "मध्यकालीन उड़ीसा का अन्य कोई मन्दिर इस खण्डित और भग्नावस्था में नहीं है, यद्यपि यही सबके बाद में बना। मन्दिर का मुख्य अंश (विमान) टूटा पड़ा है, यद्यपि और कुछ विद्वानों का तो यह भी मत है कि मन्दिर कभी व्यवहार में लाया ही नहीं गया।" (परिचय, पृ. 11)

मन्दिर का मुख्य भाग क्यों टूटा– इसे ही नाटककार ने आधार बनाया है। नाटक की कथा में ऐतिहासिकता पृष्ठभूमि मात्र है। स्वयं नाटककार का कहना है कि नाटक में इतिहास का सहारा अल्पमात्रा में ही लिया गया है। मन्दिर के टूटने के सम्बन्ध में उड़ीसा में 'प्रचलित किंवदन्ती' का सहारा लिया गया है और उसमें व्यक्तिगत वैषम्य के साथ सामाजिक समस्याओं का गठबन्धन भी किया गया है। नाटककार को यह प्रेरणा 'कलाकार के शाश्वत अन्तर्द्वन्द्व' में मिली है। इस प्रकार नाटककार ने इतिहास के साथ कल्पना का सुन्दर समन्वय किया है। उनका कहना है कि "मैंने एक ललित और करुण रस से पगी कहानी को इस रौद्ररूप में प्रदर्शित किया है। xxx मुझे उस किवदन्ती के करुण लालित्य ने आकृष्ट अवश्य किया, किन्तु कोणार्क मन्दिर जिस विशाल और पुष्ट कल्पना का परिचायक है और जिस संघर्षप्रधान युग में उसका निर्माण हुआ– उसके मुकाबले में मुझे उड़िसा किवदन्ती के भावुक और विवश–नायक–नायिका क्षीण जंचें। प्रणय की अठखेलियों और भाग्य के थपेड़ों के आधार पर कोणार्क के खण्डहरों का सहारा ले एक रोचक कथापट प्रस्तुत कर देने से मुझे सन्तोष नहीं हुआ। मुझे तो लगा जैसे कलाकार का युग–युग से मौन पौरूष, जो सौन्दर्य–सृंजन के सम्मोहन में आने को भूल जाता है, 'कोणार्क' के खण्डहरों के क्षण में फूट निकला हो। चिरन्तन मौन ही जिसका अभिशाप है उस पौरूप को मैने वाणी देने की धृष्टता की है" (परिचय, पृ. 12)

नाटककार का शुद्ध ऐतिहासिक आधार केवल इतना है कि इस मन्दिर का निर्माण उड़ीसा के राजा नरसिंहदेव ने करवाया था–ऐसा कुछ जागीरों के लेखपत्रों में स्पष्ट रूप से कहा गया है। गंगवंशीय महाप्रतापी राजा नरसिंहदेव सन् 1238 ई. में उड़ीसा का शासक हुआ। बंगाल देश में अनेक वर्षों तक यवनों से उसका लड़ना ऐतिहासिक सत्य है। नरसिंहदेव के मन्त्रियों में चालुक्य वंश के राजराज प्रमुख थे। यह बात श्री कूर्मम के एक लेख से प्रमाणित होती है, अतः इतिहास-संगत है। नरसिंहदेव ने सन् 1238 से 1264 ई. तक शासन किया। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह भी माना जाता है कि कोणार्क

बनवाने का काम सम्भवतः उसके शासनकाल के अन्तिम दिनों में हुआ होगा, इस दृष्टि से नाटक की कथा-वस्तु का काल सन् 1260 ई. के लगभग सम्भव है।

इन ऐतिहासिक तथ्यों के अलावा नाटक में आई सभी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ काल्पनिक हैं, वे ऐतिहासिक साक्ष्यों द्वारा प्रमाणित नहीं हैं। जैसे नाटक के प्रमुख पात्र कोणार्क के प्रधान शिल्पी विशु का प्रणय-प्रसंग, मन्दिर का निर्माण कार्य लगभग पूरा हो चुकने पर भी कलश का ठीक से न बैठना, अमात्य चालुक्य राज द्वारा शिल्पियों को तिरस्कृत और आतंकित करना, नवागतुक शिल्पी धर्मपद द्वारा शिखर निर्माण का काम पूरा करना और इस प्रकार विशु तथा अन्य सहयोगी शिल्पियों को महामात्य के अत्याचार से बचाना, धर्मपद प्रधानशिल्पी का पद ग्रहण करना, और महाराज नरसिंहदेव को महामन्त्री द्वारा शिल्पियों पर किए जा रहे अत्याचारों की जानकारी देना, इसी बीच महामात्य के विद्रोह और आक्रमण की सूचना मिलना, इस स्थिति में मन्दिर से दुर्ग का काम लेते हुए महामात्य से युद्ध, धर्मपद पर घायल और मुर्च्छित होना, उसके गले से गिरे कंकण से विशु का यह जान लेना कि धर्मपद उसकी परित्यक्ता प्रेमसी से उत्पन्न उसका अपना पुत्र है, ऐसे में विशु का क्षुद्र स्वार्थ और आदर्श के बीच का द्वन्द्व झेलना, अपने पुत्र द्वारा प्रेरित विशु में वर्षों से सोए हुए विद्रोही कलाकार का रूप जाग उठना, और अत्याचारी चालुक्य के विनाश के अन्तिम उपाय के रूप में मन्दिर के चुम्बक को तोड़ देना, चुम्बक के टूटते ही मन्दिर का गिरना और उसके नीचे दबकर चालुक्य व उसके उसके सैनिकों के साथ-साथ विशु और बचे हुए शिल्पियों की मृत्यु-ये सभी घटना प्रसंग ऐतिहासिक साक्ष्यों पर आधारित न होकर माथुरजी की नाटकीय कल्पना पर आधारित हैं। फिर भी नाटक में इन्हें जिस स्वाभाविक के साथ नियोजित किया गया है उससे कहीं भी अनैतिहासिकता का बोध नहीं होता। उसकी नाटकीय संरचना में ऐतिहासिकता का आभास बना रहता है।

ऐतिहासिक कथानक के इन विभिन्न घटना-प्रसंगों के माध्यम से लेखक ने उपेक्षित कलाकार की सूक्ष्म संवदेनाओं को भी अभिव्यक्ति दी है। विशु के माध्यम से कलाकार के आन्तरिक संघर्ष या द्वन्द्व को अभिव्यक्त किया गया है। वह नाटकीय द्वन्द्व किसी काल विशेष या व्यक्ति का न रह कर कलाकार के शाश्वत द्वन्द्व की चेतना की ओर संकेत करता है। नाटक के संघर्षपूर्ण वातवरण के बीच विशु का प्रणय-प्रंसग तथा अन्त में पिता-पुत्र के अप्रत्याशित मिलन का प्रंसग अपनी मानवीय संवदेनाओं से नाटक को मार्मिक बना देता है।

इसके अतिरिक्त नाटककार ने कोणार्क की ऐतिहासिकता के साथ युगीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक समस्याओं को भी उससे जोड़ा है। महामन्त्री व उसके सहायकों आदि के द्वारा निर्मित सामन्तीय व्यवस्था और उस शोषक व्यवस्था द्वारा शोषित शिल्पियों की स्थिति का वर्णन सामन्तीय शोषक व्यवस्था की समस्याओं को उजागर करता है। दूसरी ओर अपने सामाजिक दायित्व बोघ के प्रति सचेत या जागरूक शिल्पी जब अपना शोषण करने वाले के आक्रमण के विरुद्ध संघर्ष करते हैं– तो नाटक की ऐतिहासिकता में आधुनिक जनचेतना के संकेत मिलते हैं। विशु और धर्मपद के चरित्र इस जनचेतना के विभिन्न आयामों को प्रकट करते हैं। ये दोनों ही पात्र काल्पनिक होते हुए भी नाटक की ऐतिहासिकता में इस प्रकार घुले-मिले हैं कि उनकी अलग स्थिति नहीं रह जाती, वे नाटक को पूर्णता प्रदान करते हैं। ये दोनों कला-साधना के दो रूपों का प्रतिनिधित्व भी करते हैं, केवल ऐतिहासिक पात्रों के रूप में ही सामने नहीं आते। विशु कलाकार की कल्पनामयी स्वच्छन्द चेतना का प्रतिनिधित्व करता है। नाटक के प्रारम्भ में वह कला को राजनैतिक चेतना और विद्रोही स्वरों से असपृक्त रखने की बात कहता है और 'कला कला के लिए है' इस उक्ति को जीवन में चरितार्थ भी करता है। लेकिन धर्मपद से मिलने के बाद उसके विचारों से प्रभावित होकर विशु का कला और जीवन के प्रति व्यक्तिवादी दृष्टिकोण बदलता है। ध र्मपद कलाकार की कला-साधना में सौन्दर्य-चेतना के साथ-साथ सामाजिक दायित्व-बोध, निर्भीकता और विद्रोह की क्षमता को भी महत्त्व देता है। वह विशु को चुनौती देते हुए कहता है– 'आचार्य, आपकी कला पुरूषार्थ को भूल गई है।' वह विशु को पुरूषार्थ की प्रेरणा देकर संघर्ष के लिए प्रेरित करता है। उसके माध्यम से लेखक ने कलाकार को सौन्दर्य-साधना के साथ-साथ अपने सामाजिक दायित्व के प्रति भी सचेत किया है।

श्री सुमित्रानन्दन पन्त के अनुसार–"सहनशील विशु तथा विद्रोही धर्मपद में जैसे कला के प्राचीन और नवीन युग मूर्तिमान हो उठे हैं। धर्मपद में आधुनिक कलाकार का विद्रोह ही जैसे व्यक्तित्व ग्रहण कर लेता है। x x x आज के राजनीतिक-आर्थिक संघर्ष के जर्जर युग में कोणार्क के द्वारा कला और संस्कृति जैसे अपनी चिरन्तन उपेक्षा का विद्रोहपूर्ण सन्देश मनुष्य के पास पहुँचा रही है।" (कोणार्क, पृ. 4)

इस प्रकार नाटककार ने कला की सार्थकता को जीवन के साथ जोड़कर तथा व्यक्तिगत वैषम्य को सामाजिक वैषम्य से जोड़कर 'कोणार्क' के ऐतिहासिक कथानक को आधुनिक अर्थ प्रदान किए हैं।

(ii) पात्र-योजना

डॉ० रमेश कुमारी खनेजा

विशु

सामान्य परिचय– विशु 'कोणार्क' नाटक का एक सशक्त पुरुष-पात्र है। नाटक में आदि से अन्त तक इसका रहस्यमय व्यक्तित्व दर्शकों के कुतूहल का विषय बना रहता है। वह एक महान् शिल्पकार है। कोणार्क का निर्माण करने वाले बारह-सौ शिल्पियों में उसकी शिल्पकला को देखकर ही महराज नरसिंहदेव उसे अपना प्रधान-शिल्पी नियुक्त करते हैं। उसके जीवन का एक ही लक्ष्य है और वह है कला की साधना। कोणार्क के निर्माण-कार्य में वह कितनी निष्ठा के साथ संलग्न है, उसका प्रत्यक्ष प्रमाण उसका अपना अस्त-व्यस्त और अलंकार-विहीन कक्ष है। विशु के समक्ष और किसी बात के लिए विचारणा करने का अवकाश नहीं है। सौम्य के यह कहने पर कि महामात्य की शक्ति बढ़ रही है तो वह कहता है–

"किसी की शक्ति बढ़े और किसी की घटे, हमें तो कोणार्क को पूरा करना है।"

विशु यद्यपि कला का परम साधक है और वही उसका जीवन है तथापि नाटककार ने इसको यन्त्र रूप में चित्रित नहीं किया है– उसका चरित्र जड़ नहीं है। उसके चरित्र के विषय में एक मधुर कल्पना करके उसे सरस और स्वाभाविक रूप दे दिया गया है और वह है उसका अतीत। जंगली शबर जाति की कन्या से विशु का प्रेम हो गया था। उस समय उसका नाम श्रीधर था। उस कन्या का नाम सारिका था। विशु उसे अत्यन्त प्रेम करता था। वह उसकी प्रेरणा शक्ति थी पर जब विशु को ज्ञात हुआ कि वह माँ बनने वाली है तो कुल और कुटुम्ब के भय के कारण वह उसे असहाय छोड़कर भाग जाता है। इसी कारण वह अपने मूल नाम को गुप्त रखकर विशु के छद्म नाम को ओढ़ लेता है। धर्मपद उसी का बेटा है। अपनी ममता पर कुठारघात हुआ देख वह प्रतिशोधाग्नि में जलने लगता है और अपने ही हाथों से निर्मित उस मन्दिर का ध्वंस इसीलिए कर डालता है कि वह अत्याचारियों से प्रतिशोध ले सके।

इस प्रकार राजा के प्रति आदर भाव, अवसर पड़ने पर रोष, प्रेयसी की स्मृति, पुत्र के प्रति ममता, अपनी अतीत की कायरता पर ग्लानि आदि ऐसी बातें हैं जो विशु को कोई अलौकिक कलाकार न बनाकर इसी धरातल का सच्चा कलाकार सिद्ध करती हैं।

नाटक का नायक– विशु 'कोणार्क' नाटक का एक महत्त्वपूर्ण पात्र है। इस नाटक का मूल कथा-पट इसी के व्यक्तित्व को केन्द्र में रखकर बुना गया है। नाटक आरम्भ (पहले अंक के पहले दृश्य में) में ही हम उसे एक समस्या में उलझा हुआ पाते हैं। उसके सामने सबसे बड़ी समस्या यह है कि चारों और से चुम्बकों के आकर्षण से निराधार स्थित मूर्ति को स्थिर रखने के लिए जो त्रिपटधर स्थापित करना है वह स्थापित नहीं हो पा रहा है। विशु अपने स्वप्न को अधूरा देखकर व्याकुल है। उसी के नेतृत्व में उत्कल-नरेश नरसिंहदेव की आज्ञानुसार बारह-सौ शिल्पी एवं हजारों मजदूर रात-दिन एक करके अभूतपूर्व सूर्य-मन्दिर के निर्माण में रत हैं। तभी एक युवक धर्मपद विशु को आश्वासन देता है कि किस प्रकार कलश को स्थापित किया जा सकता है। इधर चालुक्य की सेना द्वारा मन्दिर को घेर लिया जाता है। विशु को जब घायल धर्मपद, जो कि उसका पुत्र प्रमाणित हो चुका है, अपने कर्तव्य का बोध करा जाता है। धर्मपद की मृत्यु निश्चित जानकर और अपनी कलाकृति को आतंतायियों के हाथों में जाता देख विशु प्रतिशोध लेने का संकल्प करता है और मन्दिर के चुम्बक को तोड़कर मन्दिर को गिरा देता है। मन्दिर का ध्वंस और उसमें रह रहे समस्त लोगों का कारुणिक अवसान ही नाटक का अन्त है। इस प्रकार समस्त घटनाचक्र की केन्द्रीय धुरी विशु ही है।

नाटक के सभी पात्र विशु के चरित्र से अनुप्राणित हैं। उसके सम्पर्क में जितने भी व्यक्ति आते हैं उसके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। सभी उसके एक इशारे पर प्राण न्यौछावर करने को तत्पर रहते हैं। महाराज नरसिंह-देव उस जैसे महान् शिल्पी को अपने राज्य में देखकर स्वयं को धन्य मानते हैं। उसकी महानता को देखकर ही वह उसे उत्कल के श्रेष्ठ मन्दिर के निर्माण का दायित्व सौंप देते हैं और प्रधान शिल्पी के पद से विभूषित करते हैं।

नाटक का उद्देश्य है– युग विशेष की कला का चित्रण करना, कलाकार के अन्तर्द्वन्द्व को प्रस्तुत करना तथा तत्कालीन राजतन्त्रीय व्यवस्था का चित्रण करना। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विशु का चरित्र सबसे अधिक सहायक हुआ है।

इस प्रकार हर दृष्टि से विशु इस नाटक का नायक सिद्ध होता है।

अद्वितीय कलाकार– कोणार्क के मन्दिर की दिव्य कलाकृति का निर्माण महाशिल्पी विशु एक अद्वितीय कलाकार है। वह कला के लिए कला के पक्ष में हैं। युग की गतिविधियों से बेखबर है। कोणार्क के मन्दिर का स्वप्न साकार करने के लिए वह उतावला है और इसी अधीरता के दर्शन नाटक के आरम्भ में ही विशु के इन उद्‌गारों में होते हैं–

"मुझे प्रधान-पद से मोह नहीं। मोह है तो यही कि कोणार्क पूरा हो जाए....। मेरे हाथ मेरी भावनाएँ इसी क्षण कोणार्क को पूरा करने के लिए आतुर हैं।"

कला के प्रति उसका समर्पण भाव नाटक में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। कोणार्क मन्दिर के कलश के स्थापित न हो पाने से वह विक्षिप्त-सा हो उठता है क्योंकि मन्दिर की महती कल्पना उसकी बुद्धि के परे हो चली थी। इसी उधेड़बुन में पड़े विशु के समक्ष जब नाट्याचार्य सौम्य श्रीदत्त आते हैं तो वह अपनी असहायता का वर्णन जिन शब्दों में करता है वह एक सच्चे कलाकार के ही शब्द हैं। यथा–

"जानता हूँ। लेकिन मन्दिर की महती कल्पना मेरी बुद्धि के परे हो चुली है। मुझे न मालूम था कि सूर्यदेव के जिस विशाल वाहन का मैं स्वप्न देखा करता था, वह सच्चा होते-होते इस पार्थिव धरातल के उठकर भगवान् भास्कर के चरण छूने के लिए उतावला हो उठेगा।"

'कोणार्क' अपनी स्थापत्य कला, मूर्तिकला और सौन्दर्य में अद्वितीय है। इसके सौन्दर्य के विषय में स्वयं विशु के शब्द हैं–

"पत्थर का यह मन्दिर आज कल्पना के स्पर्श से हवा की तरह गतिमान, किरण की तरह स्पर्शहीन, सुगन्ध की तरह सर्वव्यापी हो रहा है। लेकिन.....लेकिन धरती उसे जकड़े हुए है ईर्ष्या से। मुझे लगता है, जैसे अनजाने ही हम लोगों ने पृथ्वी और आकाश के बीच भीषण संघर्ष खड़ा कर दिया है।"

विशु कला का ही परम साधक है, कला ही उसका जीवन है और जीवन ही उसकी कला में प्रतिबिम्बित है। कोणार्क को वह सम्पूर्ण जीवन की गति का रूपक मानता है। धर्मपद से अपने इसी प्रकार के विचारों को व्यक्त करते हुए वह कहता है–

"वह सारे जीवन का प्रतिबिम्ब है। देखो, हमारे कोणार्क देवालय को आँखें भरकर देखों। यह मन्दिर नहीं, सारे जीवन की गति का रूपक है। हमने जो मूर्तियाँ इसके स्तम्भों, इसकी उपपीठ और अधिस्थान में अंकित की हैं, उन्हें ध्यान से देखो। देखते ही उसमें मनुष्य के सारे कर्म, उसकी सारी वासनाएँ मनोरंजन और मुद्राएँ चित्रित हैं। यही तो जीवन है।"

विशु एक ऐसा कलाकार है जो जीवन के विशिष्ट पक्ष को महत्त्व देता है। मन्दिर की प्रणय-मूर्तियों की अश्लीलता को वह अश्लील नहीं मानता। उसकी मान्यता है कि 'कला की पूर्ति चयन में हैं, छाँटने में नहीं'। उसके मत में कलाकार को कला का एकमात्र उपासक होना चाहिए, कला का विद्रोही नहीं। इसीलिए वह कहता है–

"शिल्पी को विद्रोह की बाणी नहीं चाहिए, राजीव। मेरी काल में जीवन का प्रबिबिम्ब और उसके विरूद्ध विद्रोह दोनों सन्निहित हैं। तुम उस किशोर को बुला लाओ। मेरी दृष्टि के स्पर्श से उसकी प्रतिभा की गंध जाग्रत होकर उसकी वाणी को मौन कर देगी। मुझे उसकी कला चाहिए।"

इस प्रकार कोणार्क मन्दिर को पूर्ण करने में विशु की कला-प्रियता तथा कला-साधना अभूतपूर्व है। उसके चरित्र के इस पहलू के क्रमिक विकास का चित्रण प्रभावपूर्ण बन पड़ा है। उसकी अनवरत साधना ने कला से गहरा सम्बन्ध जोड़ लिया है। कलाकार को अपनी काल से कितना ममत्व हो सकता है, इसका सम्यक् उदाहरण उसका चरित्र है।

प्रतिशोध की भावना से पूर्ण कलाकार– विशु ने बारह वर्ष की कठिन तपस्या करने के बाद कोणार्क का निर्माण किया, जो अनुपम कलाकृति का आदर्श है। इसे देखकर महाराज नरसिंहदेव ने कहा था कि 'कोणार्क का सम्मोहन व्याध की वंशी था और हम थे विवश मृग।' किन्तु इसी कोणार्क को चालुक्य पदाक्रान्त करना चाहता है। विशु नहीं चाहता कि किसी अत्याचारी के हाथ में पड़कर उसकी कला को सिसकना पड़े। वह अत्यन्त उद्विग्न हो जाता है। यह उद्विग्नता इन शब्दों द्वारा भली-भाँति प्रकट होती है–

"कोणार्क–मेरी निधि....कोणार्क–मेरी सृष्टि, अपावन हाथों में, भ्रष्ट हाथों में? यह कैसा अभिशाप। जो अभागे कारीगर, कहाँ है तेरा गौरव, कहाँ है तेरी मौन तपस्या का पुरस्कार?"

विशु का सोया हुआ स्वाभिमान जाग उठता है। वह दृढ़ता के साथ व्यक्त करता है कि कोणार्क शिल्पी की पराजय का प्रतीक नहीं हो सकता। विशु ऐसा ही करता है। वह मन्दिर में रहस्य रूप से लगे हुए चुम्बक पर प्रहार करता है।

चालुक्य और उसके सैनिक भरसक प्रयत्न करते हैं कि किसी प्रकार विशु को पकड़ लिया जाय। पर विशु को कोई नहीं पकड़ पाता और वह चुम्बक को हटा देता है जिससे सारा मन्दिर धाराशायी हो जाता है और सभी शत्रु मारे जाते हैं। इस तरह वह शिल्पी अपनी कला द्वारा ही प्रतिशोध लेता है। सम्पूर्ण को स्वाहा करके भी मानों उसे अलभ्य तृप्ति प्राप्त होती है। डॉक्टर गोविन्द चातक ने भी विशु के चरित्र के इस पहलु पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि कोणार्क में कलाकार का यह अन्तर्दहन उन्मुक्त होकर सामने आता है। प्रारम्भ में विशु सारिका के प्रति अपने प्रेम और अपराध-भाव को पाषाणी मूर्तियों के बीच छिपाकर रखता है; किन्तु सन्दर्भ के आते ही जैसे वह फूट पड़ता है। और अन्त में जब आहत धर्मपद के साथ उसे अपने सम्बन्ध का ज्ञान होता है तो उसका हृदय एक साथ दो-दो पीड़ाओं से उद्विग्न हो उठता है और मन का तूफान जैसे उसे तोड़ने को उद्यत होता है: 'मेरे बन्धु, क्या किसी तरह धर्मा को बचाया नहीं जा सकता? मैं चालुक्य के आगे भीख माँगूँगा, मेरे बेटे के प्राण.....।' किन्तु पुत्र ममता का तिरस्कार जब रोकने पर भी युद्ध में चला ही जाता है तो पुत्र के मरणासन्न संकट की सारी पीड़ा पिता के हृदय का आक्रोश बनकर सन्नद्ध हो जाती है और निर्माण विध्वंस में परिणत हो जाती है। मन का यह तूफान सामान्य नहीं सिद्ध होता–सूर्य की प्रतिभा भी एक बार उसके सामने काँप उठती है।' (नाटककार जगदीशचन्द्र माथुर : गोविन्द्र चातक : पृ. 93)

कर्त्तव्यनिष्ठ– विशु एक कर्त्तव्यनिष्ठ शिल्पी है। कर्त्तव्यपराणता की वह साकार मूर्ति है और अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग रहता हुआ परिस्थितियों का धैयपूर्वक सामना करता है। राजीव उससे अन्यायी महामात्य चालुक्य के अत्याचारों का वर्णन करता है और सौम्यश्री भी उसका समर्थन करता है तब भी विशु यही कहता है– "किसी की शक्ति बढ़े या घटे, हमें तो कोणार्क को पूरा करना है।" विशु की कर्त्तव्यशीलता सबसे अधिक इस बात में झलकती है कि प्रधान-शिल्पी होते हुए भी उसने स्वयं को सब सुखसाधनों से वंचित कर रखा है। मन्दिर के प्रांगण में ही एक कुटिया में वह जिस निष्ठा से कार्यरत रहता है उससे स्पष्ट होता है कि वह सच्चा कर्त्तव्यशील कलाकार है।

इस प्रकार विशु का चरित्र कुछ-एक मानवीय दुर्बलताओं के होते हुए भी वह एक सर्वगुणसम्पन्न कलाकार के रूप में हमारे सामने आता है।

धर्मपद

'कोणार्क' नाटक में धर्मपद का चस्त्रि एक महत्वपूर्ण चरित्र है। अपनी चारित्रिक प्रभविष्णुता एवं कलाधर्मिता के कारण वह प्रायः समस्त नाटकीय पात्रों पर छाया रहता है। धर्मपद के रूप में माथुर जी ने युवा पीढ़ी के एक ऐसे कलाकार के चरित्र का विकास दिखाया है जिसमें जन्मजात प्रतिभा है और प्रतिभा जैसे किसी प्रकार के बन्धन को स्वीकार नहीं करती उसी प्रकार धर्मपद भी किसी प्रकार के बन्धन को स्वीकार नहीं करता। वह युवापीढ़ी का आदर्शवादी विद्रोही कलाकार है। नाटक में वह उस युवापीढ़ी का प्रतिनिधि बनकर आया है, जो हर गलत बात के प्रति आवाज बुलन्द कर सकते हैं। वह शिल्पी होने के साथ ही साथ साहसी, वीर, स्वामिभक्त और पितृभक्त नवयुवक था। वह कर्त्तव्यपालन करने में तत्पर रहने वाला निर्भीक शिल्पी था। शिल्प उसका पैतृक गुण था। महाकवि सुमित्रानन्दन पन्त ने इसीलिए उसके चरित्र के विषय में लिखा है– "धर्मपद सोलह वर्ष का एक ऐसा कलाकार युवक है जिसने कला का मर्म उत्तराधिकार में पाया है। वह उत्कल के महाशिल्पी विशु का अनाधिकृत पुत्र है। अनाधिकृत इसलिए क्योंकि विशु ने धर्मपद की माता से विधिवत् विवाह नहीं किया था और न ही सोलह वर्ष तक उसे ज्ञात था कि कोई उसका पुत्र भी है।" शिल्पी के साथ ही साथ वह सेना का संचालन करने में भी चतुर था। चालुक्य का सामना करने के लिए उसने भील शिल्पियों को एकत्रित करके चालुक्य के आक्रमण को विफल बना दिया। यद्यपि अन्ततः चालुक्य के विश्वासघात के कारण सभी को मृत्यु की गोद में जाना पड़ा।

स्पष्टवक्ता– धर्मपद एक स्पष्टवक्ता निर्भीक युवक था। वह महाराज नरसिंहदेव के सामने विनयपूर्वक वास्तविक परिस्थिति का परिचय देता है और उनकी जानकारी में होने वाली घटनाओं पर प्रकाश डालता हुआ चालुक्य के अन्यायों की स्पष्ट कर देता है। यहाँ तक कि उसको महामात्य के पद से च्युत करने की महाराज से प्रार्थना करता है जिसे सुनकर महाराज उसके कथन को अनाधिकार चेष्टा कहते हैं – "युवक! तुम अपनी परिधि से बाहर जा रहे हो। अपने मन्त्रियों को नियुक्त करने या निकालने में हम सामन्तों और श्रेष्ठियों से सलाह लेगे, शिल्पियों से नहीं।"

नरसिंहदेव : चालुक्य ने तुमसे कहा? .... ओह.... (कुछ सोचकर फिर किंचित् हँसते हुए) उन्होंने शायद तुम्हें यूँ ही धमकी दी होगी। उनका अभिप्राय तुम लोग नहीं समझे।

धर्मपद : अभिप्राय को समझना उन लोगों के लिए कठिन नहीं था जिनके जीवन पर काले बादलों की छाया की तरह महामन्त्री का भय फैला हुआ है।

नरसिंहदेव : कौन है वे?

धर्मपद : वे जो उच्च सम्मिलित स्वर में कुछ ही देर हुए आपकी जयजयकार कर रहे थे, देव–वे अपने को मिटा-कर सौन्दर्यमयी दुनिया बनाने वाले शिल्पी और मूर्तिकार।

नरसिंहदेव : हमें तो उनके स्वर में बहुत उल्लास जान पड़ा।

धर्मपद : देव, झुरमुट की ओट में चहकाने वाले पक्षी का स्वर सर्वथा हर्षगान ही नहीं होता। आपको क्या मालूम कि इस जय-जयकार के पीछे हा-हाकार चुपचाप सिसक रहा था।

नरसिंहदेव : युवक, तुम्हारी बातें हमें नयी और अपरिचित-सी जान पड़ती हैं।

धर्मपद : देव, ये उनकी बातें हैं जो बोल नहीं सकते।

प्रतिभाशाली – धर्मपद असाधारण प्रतिभाशाली युवक था। उसकी प्रतिभा के सम्पर्क में आने वाले सभी पात्र उसकी प्रतिभा का लोहा मानते हैं। उसका कहना है कि उसने किसी गुरू से स्थापत्य कला की दीक्षा नहीं ली– "मैं शिल्पी बना क्योंकि मुझे जीवित रहना था।" वह उत्कल के महाशिल्पी का प्रतिभा-सम्पन्न पुत्र है और आशुशिल्पी है। जो कार्य दूसरों के लिए असम्भव-सा हो रहा था वह उसने अपनी प्रतिभा के बल से थोड़े ही समय में कर दिखाया। विशु को जब राजीव बतलाता है कि "विचित्र जीव है। कभी तो मौन हो मन्दिर के कलश की ओर निर्निमेष देखता रहता है और कभी अल्प समय में ही चमत्कारपूर्ण मूर्तियाँ तैयार कर देता है। कीर्ति स्तम्भ पर गायकों के रूप उसी के बनाये हैं।" तो वह आश्चर्यचकित रह जाता है और धर्मपद से तुरन्त मिलना चाहता है। धर्मपद विशु को कला का मर्म बतलाने के साथ-साथ उस भीषण समस्या को सुलझाने में भी सहायता करता है जिसके कारण बारह सौ शिल्पियों के हाथ काटे जाने थे। उसी के सुझाये उपाय से ही कोणार्क पूरा हो जाता है। मूर्ति प्रतिष्ठापन के समय सभी उसकी प्रतिभा की प्रशंसा करते दिखाई देते हैं–

राजीव : चाहे जैसे नाप–जोख करके हम विमान के ऊपर शिलाएँ रखते, वे सब नीचे आ पड़ती थी। शिल्पीगण निराश हो चले थे और महाशिल्पी विशु अपने स्वप्न को अधूरा देख व्याकुल थे। चारों और अन्धकार था, चारों ओर उदासी।

विशु : ऐसे समय में पावस की वातास की भाँति तृषित भूमि में यह युवक आ पहुँचा, इसकी अद्वितीय सूझ, मेरे लिए आकाशवाणी बनी, सोए राही का पथ-प्रदर्शन हुआ। और रात-दिन में ही इसके अनवरत परिश्रम और प्रतिभा ने कोणार्क के शिखर को पूरा कर दिया।

नरसिंह : हम चकित हैं (धर्मपद से) युवक। जब महाशिल्पी विशु तुम्हारा लोहा मानते हैं तो हम अविश्वास कैसे करें? इस अल्पवय में ही जो अद्वितीय प्रतिभाशाली हो, ऐसे शिल्पी का हम सहर्ष स्वागत करते हैं।

धर्मपद की प्रतिभा से प्रभावित होकर ही विशु उसे अपना प्रधान-शिल्पी नियुक्त करता है। धर्मपद जब विशु को अपने पिता के रूप में पहचान लेता है और कहता है– 'जाने किस अदृश्य शक्ति ने मुझे शिल्प कला सिखा दी' तब विशु आनन्द विभोर होकर कहता है–

'तुम शिल्पी विशु के पुत्र हो धर्मा! कोणार्क और किसी के स्पर्श से कैसे जग सकता था? जैसे मरुस्थल में कहीं निर्झरणी सहसा गायब हो जाने पर भी अन्यत्र बह निकलती है, वैसे ही मेरी भटकी हुई प्रतिभा तुम्हारे मन से विकस उठी धर्मा। सैकड़ों-हजारों वर्षों तक कोणार्क के उन्नत शिखर को देखकर लोग कहेंगे कि वह विष्णु और उसके बेटे की कला की सर्वोत्कृष्ट कृति है।

विद्रोही कलाकार– धर्मपद आज की उस युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि है जो प्रत्येक गलत बात के प्रति आवाज बुलन्द कर सकते हैं। पुरानी मान्यताओं को ज्यों-का-त्यों स्वीकार करना उसे स्वीकार नहीं। वह जीवन में आदर्शवाद की अपेक्षा यथार्थवाद को श्रेष्ठ मानता है। वह सौन्दर्य की उपासना की अपेक्षा वास्तविकता को महत्त्व देता है। जब विशु उससे कोणार्क की युगल शृंगारिक मूर्तियों की प्रशंसा करता है तो उसकी विद्राही वाणी इन शब्दों में फूट पड़ती है–

"जीवन के आदि और उत्कर्ष के बीच एक और सीढ़ी है– जीवन का पुरुषार्थ। अपराध क्षमा हो आचार्य, आपकी कला उस पुरुषार्थ को भूल गई है। जब मैं इन मूर्तियों मे बँधे रसिक जोड़ों को देखता हूँ तो मुझे याद आती है पसीने में नहाते हुए किसान की; कोसों तक धारा के विरुद्ध नौका को खेने वाले मल्लाह की, दिन-दिन भर कुल्हाड़ी लेकर खटने वाले लकड़हारे की। इनके बिना जीवन अधूरा है आचार्य।"

समाज को निकट से देखने के कारण उसका विद्रोह भाव बना है। शिल्पियों की पीड़ा और छपटाहट का अनुभव उसे है इसीलिए विशु से स्पष्ट कहता है–

"मैं तर्क करने नहीं आया हूँ। मैं तो ऐसे संसार की ओर आपका ध्यान खींचना चाहता हूँ जोकि आपके निकट होते हुए भी आपकी आखों से ओझल हो गया है। इस मन्दिर में बरसों से बारह सौ शिल्पी काम कर रहे हैं, इनमें से कितनी की पीड़ा से आप परिचित हैं? जानते हैं कि आप की महामात्य के भृत्यों ने इनमें से बहुतों की जमीन छीन ली है? कइयों की स्त्रियों को दासियों की तरह काम करना पड़ा है। और उधर सारे उत्कल में अकाल पड़ा है।"

धर्मपद की विद्रोह भावना का चरम उत्कर्ष हमें तब दिखाई देता है जब महामात्य चालुक्य मन्दिर को तीन ओर से घेर लेता है। वह शैवालिक द्वारा नरसिंहदेव को आत्मसमर्पण करने का सन्देश भेजता है। तब धर्मपद उसकी चुनौती को स्वीकार करते हुए कहता है–

"तो सुनो शैवालिक। अपने नये स्वामी के पास यह अंगारों भरा सन्देश ले जाओ कि कलिंग-नरेश श्री नरसिंहदेव महराज, अत्याचारी विश्वासघातियों की धमकियों की चिन्ता नहीं करते। वे आज अकेले नहीं है, आज उनके पीछे वह शक्ति है जिससे धरती धर्रा उठेगी, दीन निर्धन प्रजा की शक्ति, जो कोणार्क के शिल्पियों और मजदूरों में दुर्दम सेनाओं का बल भर देगी। कोणार्क का मन्दिर आज दुर्ग का काम करेगा। जाओ हमें चुनौती स्वीकार है।"

कर्त्तव्यनिष्ठ– कलाकार होते हुए भी धर्मपद क कर्त्तव्यनिष्ठ युवक हैं। राजा नरसिंहदेव को जब चालुक्य मन्दिर में घेर लेता है तो सभी लोग त्रस्त एवं आतकित हो उठते हें तब धर्मपद निम्न पंक्तियों में अपनी कर्त्तव्यनिष्ठता का परिचय देता है–

"बहुत हुआ, बहुत हुआ दूत! क्या हम लोग भेड़-बकरियाँ है जो चाहे जिसके हवाले कर दी जाएँ? आज ही तो हमारे भाग्य का फैसला है। जिस सिंहासन को आज तुम डांवाडोल कर रहे हो वह हमारे ही तो कन्धों पर टिका है। क्या उस पर वह बैठेगा, जिसके कारण सैकड़ों घर उजड़ चुके हैं, वह जिसने कोणार्क के सौन्दर्य-निर्माता शिल्पियों को ठोकरों से तुच्छ मान ठुकराया? कलिंग हमारा है और उसके अधिपति हैं हमारे प्रजा-वत्सल नरेश श्री नरसिंहदेव।"

सच्चा वीर– धर्मपद अल्पायु में ही वीरता की भावना से ओतप्रोत है। चालुक्य द्वारा मन्दिर को घेरे जाने पर वह शैवालिक की चुनौती स्वीकार करके मन्दिर की दुर्ग में परिणत कर देता है। उसके वीरतापूर्ण चरित्र का परिचय हमें निम्न पंक्तियों में मिलता है–

धर्मपद : क्यों नही महराज। कोणार्क के प्राचीरों के पाषाण सुदृढ़ हैं और उनसे भी अधिक दृढ़ है शिल्पियों की भुजाएँ, जो पाषाण में प्राण फूँकती हैं। हमारे अस्त्र हैं– कुदांली, दण्ड, हथौड़े और पत्थर। मन्दिर के प्राचीरों से विशाल पाषाणों को अकस्मात शत्रु के ऊपर गिराया जा सकता है। जब तक प्राचीर हमारे हाथों में हैं, शत्रु पास नहीं फटकने पायेगा।

नरसिंह : धर्मपद आचार्य विशु ने तुम्हें आज महाशिल्पी का पद दिया। हम तुम्हें कोणार्क का दुर्गपति बनाते हैं। ...नहीं तुम तुम्हारे आदम्य आहस और उससे भी अधिक संगठन-क्षमता देखकर विस्मित हैं। तुमने यवन-विजेता उत्कल-नरेश को अपने वश कर लिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्मपद के चरित्र में कला और वीरता का अद्‌भुत अम्मिश्रण है। अपनी चारित्रिक दृढ़ता, विद्रोहशीलता, कर्त्तव्यनिष्ठा एवं वीरत्व की भावना के कारण वह सम्पूर्ण नाटक की कथा पर छाया रहता है।

नरसिंह देव

नरसिंहदेव उत्कल देश के सम्राट हैं। वह प्रजा-वत्सल, कलामर्मज्ञ, वीर, उदार और प्रतापी राजा है। इस नाटक के परिचय में माथुर जी ने उनका जो परिचय दिया है उसके आधार पर वह एक ऐतिहासिक पुरुष ठहरते हैं। उन्होंने लिखा है– "गंगवंशीय महाप्रतापी राजा नरसिंहदेव का उड़ीसा में राज्य काल सवी सन् 1238 से 1264 ई. तक माना जाता है और कुछ जागीरों के लेख पत्रों में स्पष्टरूप से कहा गया है कि नरसिंहदेव ने ही कोणार्क का निमार्ण कराया। यह भी ऐतिहासिक सत्य है कि नरसिंहदेव ने बंग प्रदेश में मुसलमान सूबेदारों को पराजित किया और गोड़ तक अपनी सेना को ले जाकर अनेक वर्षों तक बंग प्रदेश में वे यवनों से लड़ते रहे।" इनके ही राज्यकाल में कोणार्क मन्दिर का निर्माण किया गया था।

कला-प्रेमी– नरसिंहदेव वास्तव में प्राचीन कला के प्रेमी थे। जैसे शाहजहाँ ने आगरा में ताजमहल का निर्माण करके अपनी प्रिय मुमताजमहल की स्मृति को सजग रखने का प्रयास किया था और अपनी कला प्रियता का प्रदर्शन किया था उसी प्रकार उत्कल-नरेश श्री नरसिंहदेव ने राज्य में 1200 कलाकारों द्वारा लगभग 12 वर्ष में करोड़ों सोने की मुद्राओं को

खर्च करके कोणार्क का अद्वितीय मन्दिर बनवाया था। वह इतना कला-प्रेमी था कि बंगाल के यवन सूबेदार पर विजय प्राप्त करके तुरन्त ही कोणार्क की कला की ओर आकर्षित हो उसे देखने आ जाते हैं। निम्नलखित संवाद उनकी कला-प्रियता एवं कला-मर्मज्ञता का सुन्दर उदाहरण हैं–

नरसिंहदेव : इस स्वागत के लिए हम बहुत दिनों से लाभायित थे। विशु, कोणार्क को पूरा करके तुमने हमारे और उत्कल के गौरव को बढ़ाया है।

X X X

नरसिंहदेव : पत्थर। (मन्दिर पर दृष्टि) यहाँ निकट से देखने पर तो प्रतीत होता है मानो तुमने किसी जौहरी के गढ़े अलंकारों को पाषाण बना दिया हो। और दूर से इस विमान और जगमोहन के शिखर हिमाचल की चोटियों की स्पर्द्धा करते जान पड़ते हैं....। महेन्द्र?

X X X

नरसिंहदेव : राजकवि विश्वास से कहो, अपने साहित्य दर्पण में कोणार्क का प्रतिबिम्ब खोजें।

X X X

नरसिंहदेव : तो राज गायक चन्द्रधर से कहो, इस अद्भुत रागिनी की प्रतिध्वनि को अपने गान में बाँधे।

नरसिंहदेव : विजय के तुरन्त बाद हम अपनी सारी सेना को बंगप्रदेश में ही छोड़कर राजधानी को लौट पड़े। कोणार्क का सम्मोहन व्याध की वंशी था और हम थे विवश मृग।

महाराज के मुख से प्रशंसा सुनकर विशु जब विह्वल हो उठता है तो वह पुनः कहते हैं– "विह्वल हम हो रहे हैं विशु। यहाँ से तीन कोस पर मन्दिर की गगनचुम्बी पताका को देखकर हम बालकों की भाति अधीर हो उठे। उसी समय महामन्त्री बोले कि उनके रथ की धुरी टूट गई है। वे पीछे ठहर गए, किन्तु हम में इतना धैर्य कहाँ जो रूक सकते।' निश्चय ही वह कला-मर्मज्ञ व्यक्ति की उक्ति हैं।

प्रजा-वत्सल – वह प्रजा–वत्सल व्यक्ति थे। अपनी प्रजा से सच्चा स्नेह रखते थे। कोणार्क के शिल्पियों की दुःख-गाथा सुनकर वह उनके कष्टों को दूर करने के लिए उतावले हो उठते हैं। उन्होंने चालुक्य के अन्याय को रोक कर 1200 शिल्पियों को जितनी मुद्राएं मिलती थीं तुरन्त बाँटने की आज्ञा दे दी थी। साथ में प्रत्येक को दस-दस मुद्राओं का पुरस्कार भी दिया था। वे शिल्पियों पर अत्याचार होते नहीं देख सकते– "हम महामात्य की आदेश देंगे कि कोई अनुचित बात न होने दें। राज्य के स्तम्भ तो सामन्त और श्रेष्ठिगण हैं किन्तु निर्धन प्रजा को सुखी रखने में ही हमारी कीर्ति है।" यह थी उनकी स्नेहशीलता और प्रजा वत्सलता।

गुण-ग्राहक– नरसिंह देव गुणों के सच्चे पारखी थे। वे विशु की कला पर मग्ध हो गये थे। विशु की कला से प्रसन्न होकर वे उसे रत्नमाला भेट करना चाहते हैं भले ही विशु उसे स्वयं ने लेकर धर्मपद को दिलवा देता है। उनके राज्य में गुणियों का सम्मान होता है, कलाकार सुखपूर्वक जीवनयापन करते हैं। धर्मपद के सम्बन्ध में उनका कहना है कि– "युवक। जब महाशिल्पी विशु तुम्हारा लोहा मानते हैं तो हम अविश्वास कैसे करें। इस अल्प आयु में ही जो इतना अद्वितीय प्रतिभाशाली हो, ऐसे शिल्पी का हम सहर्ष स्वागत करते हैं।"

अदूरदर्शी– नरसिंहदेवी भले ही वीर, स्वाभिमानी और प्रजा-वत्सल थे किन्तु वे एक अदूरदर्शी राजा थे। चालुक्य जैसे कुतघ्न को महामात्य बनाकर उन्होंने प्रजा और राज्य दोनों का अहित किया था। धर्मपद ने जब चालुक्य की स्थिति को उसके सामने रखा तो उसकी बात पर पूर्ण विश्वास करके उसका प्रतिवाद किया था। विशु–"देव को नहीं मालूम सच। कह दीजिए ना देव। कह दीजिए कि महामात्य की यह आज्ञा भी उन्हीं का प्रमाद थी।" इस प्रकार अन्त तक वे चालुक्य का पक्ष लेते रहे। दूरदृष्टि की कमी के कारण वे सब पर विश्वास कर लेते थे।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अदूरदर्शी होते हुए भी वे कला मर्मज्ञ, प्रजा-वत्सल उदार, वीर और प्रतापी राजा थे।

(iii) कोणार्क की संवाद-योजना और भाषाशैली

डॉ. मीनाक्षी व्यास

पात्रों के वार्तालाप या परस्पर संवाद के द्वारा ही नाटकीय वस्तु या कथा सामने आती है और नाटक का कार्य-व्यापार आगे बढ़ता है। कथानक का विकास करने, पात्रों के चरित्र को उजागर करने, उनके अन्तर्द्वन्द्वों को अभिव्यक्त करने, वातावरण का निर्माण करने और नाटककार के उद्देश्य को संप्रेषित करने के सभी कार्य संवादों द्वारा ही सम्पन्न होते हैं।

इस नाटक की कथा को विकसित करने में संवादों का अत्यधिक योगदान है। नाटक में आई सभी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ पात्रों के संवादों द्वारा ही सूचित की गई हैं। जो घटनाएँ घट चुकी हैं और जो आगे घटने वाली हैं उनका पता संवादों से ही चलता है। इन संवादों के कारण ही नाटक में कहीं ठहराव की स्थिति नहीं आती। वे नाटक के कथ्य को तीव्रता से प्रकट करते हैं।

कोणार्क के संवादों की भाषा में काव्य जैसी लाक्षणिकता, सूक्ष्मता और साहित्यिकता मिलती है। वस्तुतः गम्भीर भावों की अभिव्यक्ति के लिए ही संवादों की भाषा को कवित्वमय रूप दिया गया है। ये संवाद ऐतिहासिक प्रसंगों के साथ-साथ समकालीन संदर्भों को भी व्यक्त करते हैं। इसी तरह ये बाहरी पारिस्थितियों के संघर्ष को जितनी तीव्रता से व्यक्त करते हैं उतनी ही तीव्रता से पात्रों की गहरी भावनाओं को भी व्यंजित करते हैं।

कोणार्क के संवादों में पात्रानुकूल विविधता और लचीलापन भी है। पात्रो के स्वभाव और परिस्थितियों के अनुसार संवादों का स्वरूप भी बदलता है जैसे–

चालुक्य : सूचना देता, तो तुम लोगों का भड़ाफोड़ कैसे होता?

विशु : जी?

चालुक्य : (मुँह. बनाते हुए) चेष्टा में लगे हुए हैं..... यहाँ तो मैं देख रहा हूँ गप्पें हो रही हैं। (सहसा धर्मपद पर दृष्टि पड़ जाती है, इशारा करते हुए) और यह युवक यहाँ क्यों खड़ा है?" (पृ. 38)

यहाँ चालुक्य के भर्त्सना भरे संवाद उसके अहंकारी, क्रूर, कुटिल स्वभाव के अनुसार रखे गए हैं। दूसरी ओर धर्मपद के सभी संवाद उसके आत्मविश्वास भरे, उत्साही और आदर्शों में निष्ठा रखने वाले व्यक्तित्व के अनुकूल हैं। विशु के संवाद उसके भावावेश, आतुरता और उद्विग्नता आदि मनःस्थितियों को सफलता से व्यक्त करते हैं।

इस नाटक के संवाद संक्षिप्त और स्वाभाविक है। नाटक रंगमंच के लिए लिखा जाता है अतः अगर उसमें बहुत लम्बे वाक्यों वाले लम्बें सवाद हों– तो अभिनेता को बोलने व अभिनय करने में असुविधा हो सकती है और दर्शकों को भी यह अस्वाभाविक व अजीब लगेगा। इसीलिए नाटक में संवाद अधिकतर छोटे व संक्षिप्त ही रखे जाते हैं। कोणार्क के संवाद भी छोटे, संक्षिप्त मगर अर्थपूर्ण हैं। कहीं-कहीं आत्मचिन्तन या भावातिरेक की स्थिति में लम्बे संवाद आए हैं। लेकिन उनके बीच में प्रश्न या क्षणिक मौन की स्थिति से वाक्य को तोड़ दिया गया है जिससे लम्बे संवाद भी अस्वाभाविक नहीं लगते।

7. भाषा-शैली

कोणार्क में वस्तु के धरातल पर प्राचीन ऐतिहासिक कथा अपनाई गई हैं लेकिन भाषा-शैली के धरातल पर उसमें पर्याप्त नवीनता और मौलिकता है। कोणार्क की भाषा साहित्यिक, परिमार्जित हिन्दी है जिसमें नाटकीयता और काव्यात्मकता के तत्त्व अधिक है। तीव्र भावावेग की स्थिति में भाषा का कवित्वमय हो जाना स्वाभाविक है और कोणार्क की अधिकांश घटनाएँ व स्थितियाँ आवेगमय हैं अतः इसकी भाषा साहित्यिक-परिमार्जित होने के साथ-साथ भावपूर्ण व काव्यमय भी है।

इस नाटक में नाटककार ने कोणार्क के टूटने के कारणों को ढूँढ़ते हुए एक ओर तो तत्कालीन युग की भव्यता ओर कला-शिल्प का ज्ञान कराया है दूसरी ओर दलित व शोषित शिल्पी और मजदूर वर्ग के जीवन की कटुताओं और अभावों को भी उजागर किया गया है। साथ ही कोणार्क की कथा कला और जीवन के सम्बन्ध में दो अलग विचारधाराओं को प्रस्तुत करती है। विशु कला में सौन्दर्य-सृष्टि को महत्त्व देता है और उसे यथार्थ जीवन के संघर्षों से दूर रखने की बात कहता है, जबकि धर्मपद कला को जीवन के साथ जोड़कर देखने पर बल देता है, वह अपने विचारों से विशु को भी प्रभावित कर देता है। अन्त में धर्मपद उस जनशक्ति का प्रतिनिधित्व करता है जिसके सहारे राज्य बनते और बिगड़ते हैं। धर्मपद की प्रेरणा से निर्धन शस्त्रहीन जनता अत्याचारी चालुक्य की बलशानी सेना का सामना करने के लिए उठ खड़ी होती है। इस प्रकार कोणार्क नाटक ऐतिहासिक होने के साथ-साथ आधुनिक संवेदना को कई स्तरों पर छूता है। अतः माथुर जी ने

इस नाटक की भाषा को इस रूप में प्रस्तुत किया है कि वह एक ऐतिहासिक कथा की चुनौतियों को भी स्वीकार करती है और साथ ही नाटक के कथ्य के अनुसार नयी आधुनिक संवदेना से भी जुड़ी रहती है। उन्होंने अपने समय के जटिल जीवन और नाटकीय अनुभूति के सूक्ष्म स्तरों को अभिव्यक्ति देने के लिए एक ऐसी समर्थ रंग-भाषा का प्रयोग किया है जो नाटक, रंगमंच और जीवन को एक-दूसरे से जोड़े रखत: है।

किसी रचना की भाषा-शैली की समीक्षा करते समय उसकी भाषा में विद्यमान उपयुक्त शब्दचयन, लाक्षणिकता, आलंकारिता, बिम्बात्मकता आदि भाषिक विशिष्टताओं पर प्रकाश डालना आवश्यक होता है क्योंकि ये विशिष्टताएँ ही रचना की भाषा को वास्तव में साहित्यिक और अर्थव्यंजक बनाती हैं। इस बात को हम यों भी कह सकते हैं कि ध्वनि, शब्द पद, वाक्य और अर्थ-भाषा के पाँच प्रमुख तत्त्व हैं। इन पाँचों तत्वों के विशिष्ट प्रयोग पर ही भाषिक विशिष्टताएँ निर्भर करती हैं– ध्वनि के स्तर पर विशिष्ट प्रयोग करके रचनाकार अपनी रचना में ध्वन्यात्मक या नाद सौन्दर्य की सृष्टि करता है। शब्द स्तर पर भावानुकूल शब्द प्रयोग, पद के स्तर पर मुहावरे, लोकोक्तियों आदि का प्रयोग, वाक्य के स्तर पर विभिन्न प्रकार के वाक्यों का प्रयोग और अर्थ के स्तर पर लाक्षणिकता आदि का प्रयोग किया जाता है। 'कोणार्क' नाटक में अनुभूति की गरिमा के साथ-साथ भाषा के पाँच तत्त्वों पर आधारित अभिव्यंजना पद्धति का दर्शन भी होता है। इनके कारण नाटक की भाषा में भाव वहन की पूर्ण क्षमता आ गई है।

सर्वप्रथम शब्द प्रयोग की दृष्टि से 'कोणार्क' की भाषा में तत्सम शब्दों का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है। कोणार्क की भाषा प्रौढ़ और परिनिष्ठित खड़ी बोली हिन्दी है जिसमें संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दों का बाहुल्य हैं। जैसे–पाषण, निराश्रिता, कटक-मुद्रा, भास्कर, वेत्रासन, उष्णीष, पौर सभा, कंकण, आविष्ट, दंडपाशिक, मंजूषा, यष्टि आदि। पूरे नाटक में तत्सम शब्दों की प्रधानता है। चूकि इस नाटक के सभी पात्र ऐतिहासिक पात्रों के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं और वे महाशिल्पी, नाट्याचार्य, महामंत्री जैसे उच्चपदों या फिर राजवंश से सम्बन्धित हैं अतः उनके लिए ऐसी परिनिष्ठित भाषा का प्रयोग अस्वाभाविक नहीं लगता। इस भाषा में तत्सम प्रधानता होते हुए भी क्लिषटता नहीं हैं बल्कि इसमें संर्वत्र एक प्रकार का सहज प्रवाह, स्वाभाविकता और बोधगम्यता मिलती है। इन तत्सम शब्दों ने नाटक की भाषा को एक प्रकार का आभिजात्य और गरिमा प्रदान की है, साथ ही ये ऐतिहासिक वातावरण उत्पन्न करने में सहयोग देते हैं।

इनके अलावा नाटक में यथास्थान सामान्य बोल-चाल के प्रचलित शब्दों का प्रयोग भी हुआ है, जैसे– भण्डाफोड़, मुफ्तखोर, उजड़ना, डाँवाडोल, पागलपन, बेदर्द, जिम्मा, चहारदीवारी आदि। नाटककार ने इन दोनों ही प्रकार के शब्दों के उपयुक्त चयन में अर्थ और ध्वनि को भी महत्त्व दिया है। ये शब्द नाटकीय प्रभाव और अर्थ को पाठक या दर्शक तक संप्रेषित करने में पूर्णतः समर्थ हैं।

मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भाषा की अभिव्यंजना शक्ति को बढ़ाने में सहायक होता है। कोणार्क मे हालाँकि इनका प्रयोग कम ही हुआ है लेकिन जितना भी हुआ है वह भाषा की समृद्ध बनाता है।

– 'धूल में हीरे छिपे पड़े हैं.' (पृ. 35)

– 'भण्डाफोड़ करना' (पृ. 37)

– 'ठोकर खाकर धूल सिर पर चढ़ती है।' (पृ. 40) आदि

इनकी सजीवता ने भाषा को भावाभिव्यक्ति में पूरी सहायता दी है, साथ ही उसे प्रभावशाली और मार्मिक बनाया है।

वाक्य विन्यास की दृष्टि से कोणार्क में अधिकांशतः छोटे और सरल वाक्यों का कलात्मक प्रयोग किया गया है। सरल वाक्यों के कारण नाटक की भाषा में आत्मीयता, सहजता और बोधगम्यता का समावेश हुआ है। कहीं-कहीं मिश्रित या श्लिष्ट वाक्यों का भी प्रयोग हुआ है। पर इनमें भी कथ्य के अर्थबोध की सहजता बनी रहती है।

नाटककार ने भाषा के विशिष्ट प्रयोगों द्वारा अर्थ के स्तर पर लाक्षणिकता व व्यंजनात्मकता की सृष्टि भी की है। लाक्षणिकता का आधार लक्षणा शब्द शक्ति होती है जो शब्द के प्रचलित या मुख्य अर्थ के अतिरिक्त एक अन्य अर्थ का बोध कराती है। जैसे– "...जिनके जीवन पर काले बादलों की छाया की तरह महामन्त्री का भय फैला हुआ है।" (पृ. 51) इस पंक्ति का प्रचलित या सामान्य अर्थ है लोगों के जीवन पर काले बादलों की छाया की तरह भय फैलना। पर इसके द्वारा नाटककार ने लाक्षणिकता की सृष्टि भी की है। इसका लाक्षणिक अर्थ है कि महामन्त्री के भय और आतंक ने लोगों के जीवन के सुखों को नष्ट कर दिया है। काले बादलों की छाया की तरह उसका आतंक उनके जीवन पर हावी है।

इसके अलावा नाटक में व्यंजनापूर्ण अभिव्यक्तियाँ भी मिलती हैं। इनका आधार व्यंजना शब्द शक्ति है, जो लाक्षणिक अर्थ से आगे और भी गहरा अर्थ देती है। इसके कुछ उदाहरण हैं–

– "निर्दय अत्याचार की छाया में ही जो विकसते और मुरझाते हैं उनको एकाघ विपत की घड़ी के लिए तैयार होने की जरूरत नहीं।" (पृ. 40)

– "देव, झुरमुट की ओट में चहकने वाले पक्षी पर स्वर सर्वथा हर्षगान ही नहीं होता। आपको क्या मालूम कि उस जय-जयकार के पीछे हा-हाकार चुपचाप सिसक रहा था?" (पृ. 51) आदि।

इनके अतिरिक्त नाटक के अन्तर्गत प्रयुक्त अलंकार भी विचारणीय हैं। अलंकार भाषा को सज्जित करने वाले साधन हैं। इनके द्वारा रचनाकार अपने भावों को सुन्दर व प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करता है। कोणार्क में माथुर जी ने ऐसे सरस व भावानुकूल अलंकारों का प्रयोग किया है कि वे सर्वत्र भावों के उत्कर्ष में सहायक होते हैं। अलंकारों में उपमा अलंकार का प्रयोग ही अधिकतर हुआ है। जैसे–

1. "कैसी अद्‌भुत थी मेरी माँ। ..... औधियों के निर्दय झकोर से भी न झुकने वाले तालवृक्ष की तरह।" (पृ. 72)
2. "ऐसे समय में पावस की वातास की भाँति तृषित भूमि में यह युवक आ पहुँचा।" (पृ. 49)
3. "वह मदभरे पावस-सी उन्मत थी, पुष्पावृत कामनी तरू सी सम्पन्न।" (पृ. 32)
4. "नदी पर बढ़ती साँझ की तरह उस भय की तन्द्रा मेरी बुद्धि पर छा गयी।" (पृ. 32)

रूपक अलंकार– "वियोग के बादलों पर सूर्य की किरणें बिखरीं और कला का सतरंगी इंद्रधनुष सारे उत्कल पर छा गया।" (पृ.32)

इस प्रकार नाटक में आई हुई आलंकारिक, लाक्षणिक और व्यंजनापूर्ण अभिव्यक्तियाँ केवल चमत्कार पैदा करने के लिए नहीं हैं बल्कि भावानुभूति को दृश्य या मूर्त बनाने के लिए है।

ध्वनि के स्तर पर नाटककार अपने विशिष्ट ध्वनि प्रयोग और गीतों में आई छंद व्यवस्था आदि के द्वारा नाटक में ध्वन्यात्मक सौन्दर्य की सृष्टि करता है। नाटक में सर्वत्र ध्वनि प्रभावों के प्रयोग के लिये निर्देश दिए गए हैं। जैसे–

"बाहर दाहिनी और कुछ हलचल, मानों दूर पर अश्वारोही आ रहे हों।" या

"बाहर कोलाहल बढ़ रहा है।" (पृ. 35)

इसी प्रकार हँसने की ध्वनि का संकेत दिया गया है– "तो तुम कोणार्क को अब तक कभी का पूरा कर चुके होते हैं.....हँ.....हँ.... (अविश्वास का हास्य)।" (पृ. 35)

इसके अलावा नाटक के कोमल व मार्मिक प्रसंगों में कोमल ध्वनि वाले शब्दों का प्रयोग किया गया है जबकि विद्रोह या क्रोध प्रकट करने वाले प्रसंगों में ओजभरी ध्वनि वाले शब्द आए हैं। इसी प्रकार नाटक में आए गीतों में जिस प्रकार की संगीत-योजना, तुकबंदी और प्रश्नवाचक व विस्मयबोधक चिन्हों से युक्त वाक्यों का प्रयोग किया गया है, उनसे भी ध्वन्यात्मक सौन्दर्य की सृष्टि होती है।

शैली-विन्यास– जिस शिल्प में इस नाटक को बाँधा गया है वह भी आकर्षक तथा महत्त्वपूर्ण है। यह नाटक ऐतिहासिक कथा पर आधारित है पर इसके वस्तुविधान और चरित्रविधान में यथार्थवादी नाट्य शैली के तत्त्व सम्मिलित हैं, जिनके द्वारा ऐतिहासिक पात्रों और कथ्य को नए अर्थों के साथ प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक में मध्ययुगीन भाषा नाटकों के वृंदवार्तिक या सूत्रधार और कथावाचिकाओं का भी प्रयोग किया गया है। नाटक की दृश्य-अंक योजना में उपक्रम, उपकथन और उपसंहार का प्रयोग करके नाटकीय कथानक को संक्षिप्तता और व्यवस्था प्रदान की गई है। इनके कारण 'कोणार्क' एक ऐसे नाटक के रूप में सामने आता है जो प्रसाद की ऐतिहासिक-काव्यात्मक नाट्य परम्परा को आगे बढ़ाते हुए उसे नए यथार्थवादी दृष्टिकोण से जोड़ता है।

नाटक के मार्मिक प्रसंग, जैसे विशु का प्रणय-प्रसंग, उस सन्दर्भ में विशु का पछतावा और आत्मग्लानि, धर्मपद द्वारा प्रस्तुत शिल्पियों की दुख-गाथा, विशु और धर्मपद का मिलना आदि प्रसंग भावात्मक-शैली में प्रस्तुत किए गए हैं। विशु के अधिकतर संवाद इस शैली से प्रभावित हैं। जैसे–

विशु : (तन्मय) कैसा अपूर्व क्षण होगा वह। मेरी सारी साधना फलीभूत होकर आह्लाद और उन्माद में विलय हो जाएगी, धरती और अम्बर मेरे उल्लास को सम्भाल न सकेंगे, कोणार्क का प्रत्येक पत्थर अनन्य रागिनी को प्रतिध्वनित करेगा और शिल्पी के गौरव के आगे सारे संसार की समृद्धि नतमस्तक होगी....।" (पृ. 75)

प्रतीकात्मक-शैली का प्रयोग भी नाटक में कई स्थलों पर हुआ है जिसमें पात्रों ने सांकेतिक ढंग से प्रतीकों के द्वारा अपनी बात कही है। जैसे–

"आज इस युवक ने ठण्डी होती हुई राख को फूँक मारकर प्रज्जवलित कर दिया है। मेरे हाथ, मेरी भावनाएँ इसी क्षण कोणार्क को पूरा करने के लिए आतुर हैं।" (पृ. 42)

इसके अलावा **विश्लेषणात्मक शैली** का प्रयोग भी नाटक में हुआ है। ऐतिहासिक कथानक होने के नाते इसमें बाहरी स्थूल घटनाओं, संघर्षों को तो चित्रित किया ही गया है साथ ही विश्लेषणात्मक शैली के द्वारा पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व और मानसिक स्थितियों का उद्‌घाटन भी किया गया है।

उपुर्यक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'कोणार्क' की भाषा और शौली पात्रों के अनुकूल है, पात्रों के चरित्र को नया आयाम देता है, साथ ही यह कथ्य के अनुकूल बन पड़ी है। इस प्रकार अपनी भाषा शैली की विशेषताओं के कारण यह नाटक आधुनिक अर्थों से सम्पन्न हो पाया है और ऐतिहासिकता का भी सही उपयोग हो पाया है।

(iv) मूल-संवेदना

डॉ. दिनेशकुमार गुप्ता
रीडर, हिंदी-विभाग
मुक्त शिक्षा विद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

संवदेना का अर्थ हैं– सह-अनुभूति, समान अनुभूति। यह शब्द अंग्रेजी शब्द 'सेंसीबिलिटी' का हिन्दी रूपान्तर है। जो व्यक्ति अपने परिवेश के प्रति जितनी तीव्र अनुभूति रखता है वह सामान्य जन की अपेक्षा कहीं अधिक संवेदनशील है। साहित्यकार में यह गुण विशेष रूप से विद्यमान होता है। इसी कारण साहित्यकार सामाजिक प्राणी होने के बावजूद मानव समुदाय में अपनी भिन्न पहचान बनाता है। उसका हृदय अपने समय की घटनाओं से निरन्तर विशेष प्रकार का अनुभव ग्रहण करता है। साथ ही उस पर चिन्तन भी करता रहता है। यही प्रवृत्ति घनीभूत अनुभूतियों को शब्दों में अभिव्यक्त होने के लिए उसे बाध्य कर देती है। उस अभिव्यक्ति के पीछे कोई उद्देश्य होता है, कोई प्रेरणा होती है जिसे सर्जक कलाकार इस रूप में प्रस्तुत करता है कि वह सब की भावना का विषय बन जाता है। साहित्य–प्रणेता ऐसे सत्यों को उद्घाटित करता है जिसकी जानकारी तो सामान्य मनुष्य को होती है किन्तु वे उसकी अनुभूति का विषय अभी तक नहीं बने थे।

कोणार्क के सन्दर्भ में भी यह बात सही बैठती है। इसकी रचना के सन्दर्भ में लेखक ने 'कोणार्क' के आरम्भ में लिखा है– "मैने एक ललित और करुण रस में पगी कहानी को इस रौद्र रूप में प्रदर्शित किया है। मुझे उस किन्वदन्ती के करुण लालित्य ने आकृष्ट अवश्य किया किन्तु जिस विशाल और पुष्ट कल्पना का कोणार्क मन्दिर परिचायक है और जिस संघर्षप्रधान युग में उसका निर्माण हुआ– उसके मुकाबले में मुझे उड़िया किन्वदन्ती के भावुक और विवश नायक-नायिका क्षीण जँचे। प्रणय की अठखेलियों और भाग्य के थपेड़ों के आधार पर कोणार्क के खण्डहरों का सहारा ले एक रोचक कथापट प्रस्तुत कर देने से मुझे सन्तोष नहीं हुआ। मुझे लगा जैसे कलाकार का युग-युग से मौन पौरुष जो सौन्दर्य-सृजन के सम्मोहन में अपने को भूल जाता है 'कोणार्क' के खंडन के क्षण में फूट निकला हो। चिरन्तन मौन ही जिसका अभिशाप है उस पौरुष को मैंने वाणी देने की धृष्टिता की है।"

यह एक ऐतिहासिक नाटक है। अतः लेखक ने 'कोणार्क' सूर्य देवता के अद्वितीय मन्दिर से सम्बन्ध कुछ तथ्यों को अपने नाटक का आधार अवश्य बनाया किन्तु अपने समय की धड़कन और बौद्धिकता के आग्रह ने उन तथ्यों को कल्पनात्मक सूत्रों में पिरोया है। 'कोणार्क' के अध्ययन और लेखक के उपर्युक्त वक्तव्य के पश्चात् इस की संवदेना के नियामक तत्त्वों को हम निम्नलिखित रूप से समझ सकते हैं–

(क) इस नाटक में 'संघर्ष' और 'मोहभंग' ने नाट्यानुभूति का निर्माण किया है।

(ख) प्रणय और करुणात्मक रूप को रौद्र परिणति प्रदान की है।

(ग) कला एक चिरन्तन सत्य है, इस पर किसी का अधिकार नहीं। अतः यह एक स्वतन्त्र एवं स्च्छन्द सत्ता है।

(घ) उदासीनता के स्थान पर सक्रिय पुरुषार्थ की प्रतिष्ठा इस नाटक की अन्य विशेषता है।

(क) 'कोणार्क' में **संघर्ष के दोनों रूप बहुत कुशलता से अनुस्यूत है– अन्तर्द्वन्द्व और बाह्य संघर्ष**। 'कोणार्क' का आरम्भ ही अन्तर्द्वन्द्व से होता है क्योकि प्रधान-शिल्पी विशु की कला पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी है। किन्तु उनसे शिखर की प्रतिष्ठा नहीं हो पा रही है। अचानक उसे एक युवा शिल्पी 'धर्मपद' मिलता है। धर्मपद ने विशु की कला के एकांगी रूप को उद्घाटित किया। उसका कथन है– "जीवन के आदि और उत्कर्ष के बीच एक और सीढ़ी है– जीवन का पुरुषार्थ। आपकी कला उस पुरुषार्थ को भूल गयी है। जब मैं इन मूर्तियों में बंधे रसिक जोड़ों को देखता हूँ तो मुझे याद आती है पसीने में नहाते हुए किसान की, कोसों तक धारा के विरुद्ध नौका को खेने वाले मल्लाह की, दिन-दिन भर कुल्हाड़ी लेकर खटने वाले लकड़हारे की। ..... इनके बिना जीवन अधूरा है, आचार्य।" इसलिए धर्मपद के अनुसार विशु की कला भी अधूरी है, एकांगी है। धर्मपद की सहायता से ही शिखर अतः स्थापित हो पाता है। विशु का जीवन निरन्तर द्वन्द्व और विडम्बनापूर्ण रहा है। यौवन में उसने एक शबर कन्या सारिका से प्रेम किया। किन्तु विवाह से पहले ही उसके गर्भवती हो जाने पर विशु लोकभय से उसे अकेला छोड कर भाग आते हैं। उसी का पुत्र धर्मपद है जो अन्त तक विशु की सहायता करता है और नवीन जीवन-दर्शन प्रदान करता है।

विशु का विचार है कि कलाकार को प्रशासन के कामों में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। किन्तु धर्मपद कलाकार की अस्मिता के लिए चिन्तित है। वह कला और कलाकार के अधिकारों को सुरक्षित कराना चाहता है। इसके लिए उसे युद्ध भी करना पड़ता है। सभी शिल्पियों को हथियार भी ग्रहण करने पड़ते हैं ताकि कला को कोई पराजित न कर सके। अन्त में वह सफल होता है। विशु में प्रणय-भावना को लेकर और अन्त में धर्मपद के साथ अपने पिता-पुत्र के सम्बन्ध का उद्‌घाटन होने पर भी अन्तर्द्वन्द्व चलता है। कला के समक्ष वह पुत्र को बड़ा मानता है किन्तु धर्मपद सम्बन्धों के सामने कला को, कलाकार को बड़ा मानता है। उसके मन में कोई अन्तर्द्वन्द्व नहीं है। वह तो पुरुषार्थ और कर्त्तव्य को बड़ा मानता है। धर्मपद की मृत्यु के पश्चात् विशु को एक नई दिशा मिलती है और वह मन्दिर को अपने ही हाथों खण्डित कर देता है। किसी अत्याचारी शासक के हाथों उस चरम कोटि कला को पराजित होने नहीं देता। इस प्रकार प्राचीन और नवीन संवेदना से युक्त दो कलाकारों के दृष्टिकोण की टकराहट नए, बौद्धिक चेतना से युक्त कलाकार के प्रगतिशील दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा कोणार्क में हुई है।

'मोह भंग' का निरूपण भी कोणार्क में मिल जाता है। जगदीशचन्द्र माथुर ने दोनों विश्वयुद्धों के पश्चात् उत्पन्न परिस्थितियों पर चिन्तन किया था। उसकी दूषित और विषम राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों से जी तीव्र प्रतिक्रिया हुई थी उस प्रतिक्रिया को 'कोणार्क' में अभिव्यक्त किया गया है। आवेश, आक्रोश, अस्मिता, आत्मविश्वास, स्वप्न, पुरुषार्थ आदि सभी रूप कोणार्क में मिल जाते हैं। इनसे भी बड़ी प्रतिक्रिया है– मोहभंग की। कोणार्क में लघुता को महत्त्व दिया गया है, लघुता का शक्ति के विरूद्ध विद्रोह दिखाया गया है। यह विद्रोह अन्त में सफलता प्राप्त करता है। आततायी विश्वासघाती राजराज चालुक्य शिल्पियों का शोषण करता है, उनकी संस्कृति के विरुद्ध षड्‌यन्त्र रचता है, दमन और अनास्था का प्रचार करता है। किन्तु शिल्पी भी ठीक समय पर अपनी अस्मिता की रक्षा करने के लिए भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता को अपनाते हैं; कला मर्मज्ञ राजा नरसिंहदेव की सहायता करते हैं; सौन्दर्य की मूर्ति मन्दिर को एक दुर्ग के रूप में प्रयोग करते हैं। हथौड़ा व छैनी से जड़ पत्थरों के पराशने के स्थान पर 'चेतन पत्थर' महामन्त्री चालुक्य को तराशने के लिए तत्पर हो जाते हैं। इस प्रकार लेखक की चेतना व्यक्तिनिष्ठ होने पर भी समाजनिष्ठ बनी रहती है। कोणार्क में आदर्श और यथार्थ का अद्‌भुत सम्मिश्रिण है। इस नाटक में नरसिंहदेव का महामन्त्री चालुक्य से मोहभंग होता है। विशु को अपनी कलागत निष्ठा में परिवर्तन करना पड़ता है।

(ख) उड़िया के देवलायों में 'कोणार्क' के सूर्य मन्दिर का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इसमें प्रधान कलाकार विशु की प्रणयानुभूति की स्थापना है, कला की अद्‌भुत और चरम परिणति है। 'कोणार्क' मन्दिर के खण्डन में उसकी समस्त करुणा स्पन्दित है। किन्तु माथुर ने इन सब बातों को आधुनिक दृष्टिकोण से आंका है। इसकी परिणति में वे करुणा और विरक्ति नहीं दिखाते। 'कोणार्क' की रचना में आरम्भ से ही प्रगतिशील, विवेकवान, पुरुषार्थी युवक धर्मपद का समावेश करके करुणात्मक स्थिति का आभास भी नहीं होने दिया। कोणार्क का अन्त यद्यपि दुखान्त है, दोनों शिल्पी अपनी कला का विजयी बनाकर शहीद हो जाते हैं। साथ ही आततायी चालुक्य भी तो मन्दिर के खण्डहरों में दबकर मर जाता है। कला तो आज तक जागती रहती है। इस दुखान्त नाटक में पात्रों के समस्त अन्तर्दहन के पश्चात् भी एक प्रकार की **रौद्रता, बौद्धिकता और विजय** का उद्‌घोष मिलता है।

(ग) इनके अतिरिक्त माथुर ने इस बात की प्रतिष्ठा भी की है कि **कला पर चिरन्तन सत्य है, स्वतन्त्र एवं स्वच्छद है, इस पर किसी का अधिकार नहीं, यह किसी की सम्पत्ति नहीं है।** इसे समझाने के लिए लेखक ने दो पात्रों की योजना की है– विशु और चालुक्य। विशु स्वयं प्रधान-शिल्पी है। मन्दिर का कलात्मक सौन्दर्य उसी की देन है। किन्तु वह भी उसे पूरा करने में असमर्थ है। उसका दृष्टिकोण एकांगी और अपूर्ण है। सर्वांगपूर्ण और सन्तुलित दृष्टि वाले युवाशिल्पी धर्मपद की सहायता से मन्दिर पूर्ण हो पाता है। दूसरी तरफ चालुक्य नरसिंहदेव का महामन्त्री है। राजा को अन्य स्थान पर युद्ध करने के लिए गया हुआ जानकर वह विश्वासघाती बन जाता है। नरसिंहदेव के राज्य को हड़पना चाहता है। सभी तरह सौ शिल्पियों को नाना प्रकार से कष्ट देता है। कोणार्क के निर्माण से ईर्ष्या करता है। उन शिल्पियों की कलाकारिता में सन्देह करता है। उन अत्याचारी को भी धर्मपद की युक्तियों के आगे पराजित होना पड़ता है। जिस मन्दिर से उसे घृणा थी अन्त में उसी में दबकर से मरना पड़ता है। अतः कला और कलाकार को कोई प्रशासन भी अपनी सम्पत्ति नहीं बना सकता।

(घ) 'कोणार्क' की रचना में लेखक ने **उदासीनता और निष्क्रियता का विरोध** किया है। इनके स्थान पर **मानवीय सरोकार, सक्रियता और पुरुषार्थ का प्रतिपादन** किया है। राजराज चालुक्य लगातार शिल्पियों को कष्ट पहुँचाता रहा। अन्त में उनके हाथ तक काट डालने की धमकी देता है। विशु और अन्य शिल्पी उसे चुपचाप सुनते और सहन करते रहते है किंतु धर्मपद के व्यक्तित्व के निर्माण में इस प्रकार की उदासीनता नगण्य थी। वह विद्रोह करने के लिए तैयार

है। विशु कहते हैं कि राज-कार्य में कलाकारों को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। धर्मपद इस मत का विरोध करता है और उन्हें विवेकवान व पुरुषार्थी होने के लिए प्रेरित करता है। चालुक्य के अत्याचारों को समाप्त करना उसका लक्ष्य है। धर्मपद कला और देश दोनों की रक्षा करने के लिए अपने प्राणों की आहूति दे देता है। डॉ. गोविन्द चातक ने लिखा है कि –ऐसे पुत्र के प्रति विशु की ममता और उससे भी पूर्व उसकी माँ के प्रति अपराध-भावना और कर्तव्यबोध के साथ जगी प्रेम भावना मन्दिर के निर्माण और नाश दोनों में मुख्य भूमिका निभाती है। दोनों स्थितियों में समष्टि का आग्रह है किन्तु विशु का 'स्व' दोनों स्थितियों के मूल में हैं। मन्दिर के निर्माण में विशु की प्रेयसी की प्रेरणा थी और नाश में पुत्र के प्रतिशोध की। वस्तुतः 'स्व' को केन्द्र में रखकर कोणार्क में कला और पौरुष की आन्तरिक प्रेरणाओं का सहज उन्मेष दिखाई देता है। पात्र और परिस्थिति के बीच व्यक्तित्व की खोज और आन्तरिक संवदेन-सूत्रों की पहचान इस नाटक को अद्‌भुत मानवीय संवदेना और सौन्दर्य-बोध प्रदान करती है। इसे केवल रोमानी तरलता कहकर नहीं टाला जा सकता, उसके तल में जो जीवन-शक्ति है उसकी भी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'कोणार्क' की रचना में दिन संवेदनाओं ने समग्रता प्रदान की हैं वे हैं–मानवीय सरोकार की तीव्रता, कला और कलाकार की अस्मिता की रक्षा, सौन्दर्य के लिए सन्तुलन, संगति और अनुपात की अनिवार्यता, व्यक्ति के 'स्व' के साथ-साथ सामाजिकता की स्थापना; आधुनिक-युग में बौद्धिकता के आग्रह से उत्पन्न संघर्ष, मोहभंग का निदर्शन, पुरुषार्थ का महत्त्व आदि। इन सब बातों ने मिलकर लेखक को 'कोणार्क' के लेखन में प्रेरणा दी। इन्हीं का सफल प्रतिपादन इस नाटक में हुआ है।

9. प्रासंगिकता

किसी भी रचना की सफलता और महत्ता इस बात पर निर्भर करती है कि जब-जब उसका अध्ययन किया जाए तब-तब वह पाठक के समक्ष नवीनता का उद्‌घाटन करे। कोई कृति सौ वर्ष पूर्व ही क्यों न लिखी गई हो यदि आज भी वह हमें आकर्षित करती है, हमारी चेतना पर आज भी कोई प्रभाव डालती है तो हमारे लिए वह अब भी प्रांसगिक है। यही कसौटी किसी भी रचना को कालजयी बना देती है। इतिहास की घटनाओं और कथा-सूत्रों के आधार पर निर्मित रचना के लिए यह तथ्य और भी आवश्यक है कि पाठक उन्हें क्यों पढ़े? इन ऐतिहासिक सत्यों की जानकारी पाठक को है फिर भी वह उस कृति के द्वारा अपनी बौद्धिक चेतना का विकास कैसे कर पाता है? इन्हीं प्रश्नों को ध्यान में रखकर कुशल और आधुनिक साहित्यकार किसी-न-किसी ऐसी प्रेरणा से प्रेरित रहते हैं जिनका समाज पर अमिट प्रभाव पड़ सकता है।

कोणार्क की प्रासंगिकता सिद्ध करने के लिए हमें इस बात को जानना होगा कि इसकी प्रेरणा लेखक को कहाँ से मिली। जगदीशचन्द्र माथुर ने नाटक के आरम्भ में ही इस बात का उद्‌घाटन किया है– "मैने एक ललित और करुण रस में पगी कहानी को इस रौद्र रूप में प्रदर्शित किया है।.... जिस संघर्ष-प्रधान युग में कोणार्क मन्दिर का निर्माण हुआ– उसके मुकाबिले में मुझे उड़िया किन्वदन्ती के भावुक और विवश नायक-नायिका क्षीण जँचे। प्रणय की अठखेलिया और भाग्य के थपेड़ों के आधार पर कोणार्क के खण्डहर का सहारा ले एक रोचक कथापट प्रस्तुत कर देने से मुझे संतोष नहीं हुआ। मुझे तो लगा जैसे कलाकार का युग-युग से मौन पौरुष जो सौन्दर्य-सृजन के सम्मोहन में अपने आप को भूल जाता है 'कोणार्क' के खंडन के क्षण फूट निकला हो। निरन्तन मौन ही जिसका अभिशाप है उस पौरुष को मैंने वाणी देने की धृष्टता की है किन्तु जब रूमानी कहानियों में बादल छूने वाली कल्पना पर आप प्रतिबन्ध नहीं लगाते तो कलाकार के मानस में कुंडली मार कर सोये, पौरूष-नाग की अनाहत फूत्कार की जो कल्पना मैंने की है उसे समकालीन प्रगतिवाद की प्रतिध्वनि कहकर ही न दुत्कार दें। यह सही है कि व्यक्तिगत वैषम्य के साथ सामाजिक समस्याओं का गठबन्धन मैंने किया है। किन्तु इन दोनों के परे यूनानी नाटक की-सी भग्न रागिनी की प्रेरणा मुझे कलाकार के शाश्वत अन्तर्दहन में मिली है और यह नाटक उसी का प्रतीक है"।

इस नाटक की सफलता एवं प्रासंगिकता को निर्धारित करने के लिये अपने वक्तव्य में लेखक ने कुछ बातों का उल्लेख किया है। वे इस प्रकार हैं– 'संघर्षप्रधान युग' में निर्मित मन्दिर की कथा पर आधारित नाटक की रचना के लिए भावुकता और विवशता का प्रदर्शन तक भी ठीक नहीं था और आज के युग में तो यह सर्वथा उपेक्षणीय है। 'कलाकार के चिरन्तन मौन के अभिशाप' का परिहार करके उसके 'पौरुष को वाणी' देने के लिए यह नाटक लिखा गया। 'रूमानी कहानियों में बादल छूने वाली कल्पना' से युक्त कलाकार के भीतर सोये हुए 'पौरुष-नाग की अनाहत फूत्कार' का उद्‌घाटन इसमें प्रस्तुत है। इनके अतिरिक्त 'व्यक्तिगत वैषम्य के साथ सामाजिक समस्याओं का गठबन्धन' भी लेखक ने कोणार्क में किया है।

इन बातों की जाँच 'कोणार्क' के अध्ययन के आधार पर की जाए तो यह बात सही है कि भावुकता और विवशता को इसमें प्रोत्साहन नहीं मिला। इसका कारण लेखक का विवेकशील मन यह मानता है कि आज की विडम्बनाओं और समस्याओं

से परिपूर्ण, वैषम्य, आक्रोश, आवेश और मोहभंग से पूर्ण युग में भावुकता के लिए कोई अवसर नहीं है। विशु ने शबर कन्या सारिका के साथ जो प्रेम किया था, कौमार्य में ही उसके गर्भवती हो जाने पर दायित्व-भय से अकेली छोड़कर भाग आए थे, इस प्रसंग के द्वारा विशु की खोखली भावुकता का विरोध किया है और कलाकार और प्रशासन के विवश संबंध और कलाकार के एकांगी दृष्टिकोण आदि के स्थान पर जागरूक, बौद्धिक, चेतनासम्पन्न, नवयुवक धर्मपद के चरित्र में परिपूर्णता दिखाकर विशु को एक नई दिशा दी गई है। इस प्रकार लघुता का शक्ति के विरुद्ध विद्रोह और विजय दिखाना माथुर के आधुनिक दृष्टिकोण का उदाहरण है। कलाकार को इस दृष्टिकोण की आवश्यकता है। धर्मपद के संवाद में आज के संवेदनशील प्राणी की धड़कन प्रस्फुटित है– "जीवन के आदि और उत्कर्ष के बीच एक और सीढ़ी है– जीवन का पुरुषार्थ। आपकी कला उस पुरुषार्थ को भूल गयी है। जब मैं इन मूर्तियों में बंधे रसिक जोड़ों को देखता हूँ तो मुझे याद आती है पसीने में नहाते हुए किसान की, कोसों तक धारा के विरुद्ध नौका को खेने वाले मल्लाह की, दिन-दिन भर कुल्हाड़ी लेकर खटने वाले लकड़हारे की। ..... इनके बिना जीवन अधूरा है, आचार्य।" विशु और धर्मपद दो शिल्पियों के द्वारा छायावादी रूमानी और युग-चेतना से सम्पन्न प्रगतिशीलता के दृष्टिकोणों की टकराहट दिखाई गयी है जिनमें से जनप्रतिनिधित्व करने वाले युवक धर्मपद की दृष्टि उभरकर सामने आती है। आज के युग में इसकी आवश्यकता भी है। धर्मपद के विचारों की सामाजिक भूमिका कला को यथार्थ और जन-जीवन से जोड़ने का प्रयत्न करती है। विशु व्यक्तिवादी है किन्तु धर्मपद बार-बार जन-शक्ति के महत्त्व को स्थापित करता है। राजा नरसिंहदेव भी उसके क्रियाकलापों और व्यवहार-कुशल बुद्धि का लोहा मानते हैं।

सन् 1946 ई. में इस नाटक के कुद अंश लिखे गए थे। वह राष्ट्रीय और वैचारिक संघर्ष का युग था। व्यक्तिवादिता और सामाजिकता का द्वन्द्व चल रहा था। मानवता की स्थापना के लिए व्यक्ति और पुरुषार्थ के साथ-साथ समाज का सम्मिश्रण अत्यन्त आवश्यक है। इसी मानवता का प्रदर्शन कोणार्क के माध्यम से हुआ है। यही कारण है कि लेखक व्यक्ति के केवल प्रणय-भाव से सम्बद्ध रोचक-कथा को प्रस्तुत करने में अनिच्छुक था। हाँ, प्रणय की मधुरिमा उसने दिखाई अवश्य, किन्तु उस प्रणय का प्रतिफल व्यक्तिपरकता में नहीं हुआ। विशु प्रणय के उत्तरदायित्व के डर से भागे थे। पर पुत्र ही अन्त में उनका सहायक बना। इतना ही नहीं, उस पुत्र ने समाज को भी एक नई दिशा दी। मानवता का स्रोत्र बहाया। कलाकारों को पुनः प्रतिष्ठा दिलाई। देश के लिए अपने प्राण न्यौछावर कर दिये। चालुक्य का दूत आकर नरसिंह देव का राज्य हड़पने का संदेश देता है तो धर्मपद समस्त स्थिति को भाँप लेता है। एक कलाकार होने के बावजूद वह राजनीति और कूटनीति को अपने हाथ में लेता हुआ राजराज चालुक्य के पास ओजस्वी सन्देश भेजता है– "क्या हम लोग भेड़-बकरियाँ हैं, जो चाहे जिसके हवाले कर दी जाएँ? आज ही तो हमारे भाग्य का फैसला है। जिस सिंहासन को तुम आज डाँवाडोल कर रहे हो, वह हमारे कंधों पर टिका है। क्या उस पर वह बैठेगा, जिसके कारण सैकड़ों घर उजड़ चुके हैं, वह जिसने कोणार्क के सौन्दर्य-निर्माता शिल्पियों को ठोकरों से तुच्छ मान ठुकराया? कलिंग हमारा है और उसके अधिपति हैं हमारे प्रजा-वत्सल नरेश श्री नरसिंहदेव। ....सुनो शैवालिक। अपने नए स्वामी के पास यह अंगारों भरा संदेश ले जाओ कि कलिंग-नरेश श्री नरसिंह देव महाराज, अत्याचारी विश्वासघातियों की धमकियों की चिन्ता नहीं करते। वे आज अकेले नहीं हैं, आज उनके पीछे वह शक्ति है, जिससे धरती थर्रा उठेगी; दीन-निर्धन प्रजा की शक्ति, जो कोणार्क के शिल्पियों और मजदूरों में दुर्द्धम सेनाओं का बल भर देगी।"

इस चुनौती को स्वीकार करने के बाद उस युवक ने जो नेतृत्व और रणनीति तैयार की है वह तो ईर्ष्या का विषय है। वास्तव में आज की जनता भी अपने हितों की रक्षा करना जानती है। अपना राजा स्वयं चुनने की उसमें शक्ति है, नेतृत्व सम्भालने की शक्ति आज प्रत्येक जन में निहित है। इन बातों को सफलतापूर्वक प्रस्तुत करके माथुर ने कोणार्क को अपने समसामयिक युग-बोध से सीधे जोड़ दिया है। यही इस नाटक की जीवन्तता का कारण है।

अपने आरम्भिक वक्तव्य मे लेखक ने यह भी लिखा है कि इस नाटक की प्रेरणा 'कलाकार के शाश्वत अन्तर्दहन' से मिली है। साथ ही उन्होंने इस 'पौरुष-नाग की अनाहूत' फूत्कार को 'समकालीन प्रगतिवाद की प्रतिध्वनि' समझकर हेय मानने की बात भी कही है। नाटक को अद्यन्त पढ़ने के बाद ये दोनों बातें भिन्न अर्थ प्रदान करती हैं। इसमें प्रगतिशील और बुद्धिवादी विचार अवश्य हैं किन्तु प्रगतिवाद के नाम पर इसे हेय नहीं समझा जा सकता। यह नाटक कलाकार के शाश्वत अन्तर्दहन को ही केवल प्रस्तुत नहीं करता, इसमें बहुत-सी बातें ऐसी हैं जो इन दोनों की सीमाओं से बाहर हैं। यही विशेषताएँ इस नाटक का शाश्वत सत्य है। इस पर युग-बोध की अमिट छाप है। इसी के कारण यह जीवन है। जीवन की वास्तविकता में संघर्ष का स्थान अनिवार्य है, यह संघर्ष इस रचना में आरम्भ से अन्त तक प्रदर्शित है। डॉ. गोविन्द चातक के मतानुसार कोणार्क कला का भाष्य है; उसे कलाकार का अन्तर्दहन की अपेक्षा अन्तर्दर्शन भी कहा जा सकता है किन्तु वह मूलतः

दो तत्त्वों के समन्वय से उपजी कृति है जिसमें इतिहास और जनश्रुति, स्वप्न और सत्य, भावना और तर्क, व्यष्टि और समष्टि, अतीत और वर्तमान एकात्म हुए दीखते हैं। कोणार्क अन्तर्मुखी और ऊर्ध्वमुखी दोनों प्रवृत्तियों का प्रतिनिधि दृश्य काव्य है। उसके केन्द्र में प्रणयिनी और माँ के रूप में छायावादी नारी है किन्तु कर्म का वृत्त पौरुष द्वारा अंकित हुआ है। इस प्रकार नाटककार ने अपूर्व सामंजस्य स्थापित किए हैं। कोणार्क में व्यक्तिगत अनुभूतियों के साथ-साथ लोक-मंगल की भावना की सन्निहित है। अनुभूति और आदर्श दोनों स्तरों पर वह हृदय को प्रभावित करती है।

नाटक का अन्त विशु के रौद्र रूप को प्रकट करता है और अत्यन्त प्रभावशाली बन गया है। कोणार्क को बचाने में धर्मपद वीरगति को प्राप्त होता है। इस घटना के पश्चात् विशु का वास्तविक पौरुष जाग उठता है। उसकी समस्त संशयात्मकता एक क्षण में लुप्त हो जाती है। वह कला की रक्षा के लिए एकदम तैयार हो जाता है। अन्त में विशु के अन्दर की पीड़ा, आक्रोश और पराजय का जैसा बिम्ब प्रस्तुत किया है वह उसके प्रत्येक शब्द और मुद्राओं में प्रकट होता है– "कोणार्क– मेरी निधि, कोणार्क मेरी सृष्टि ..... कारीगर की हार। असम्भव, कोणार्क शिल्पी की पराजय का प्रतीक नहीं रहेगा।" कोणार्क की जीवनता इस बात में भी है कि इसके अन्त में पात्रों के अन्तर्दहन का चित्रण अवश्य है किन्तु इसे त्रासदी नाटक नहीं मानना चाहिए। क्योंकि उसमें कला और कलाकार का अन्त उनकी विजय का द्योतक है, कला की स्वतन्त्रता और शाश्वत सत्य को प्रस्तुत करता है। अत्याचारी के हाथों कला को पराजित नहीं होना पड़ता अपितु वही उस कला के नीचे दब कर मर जाता है। इसके द्वारा कलाकार को एक नई दिशा मिलती है।

कोणार्क की प्रासंगिकता के विषय में विचार करने के पश्चात् यह जानना भी आवश्यक है कि यह समकालीन भाव-बोध के साथ-ही-साथ रंगधर्मिता से सम्बद्ध नए प्रयोगों को भी समेटे हुए है। भारतेन्दु और जयशंकर प्रसाद की नाट्यानुभूति का हिन्दी-नाट्य-जगत् में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके पश्चात् जगदीशचन्द्र माथुर का 'कोणार्क' एक ऐसा नाटक है जो प्राचीन और नवीन, कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों को सन्तुलित रूप मे प्रस्तुत करता है। इसलिए समकालीन यथार्थवादी सृजनशील साहित्य में कोणार्क को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। अन्त में कहा जा सकता है कि रचना-प्रक्रिया, शिल्प-विधान, भाव-बोध, नाटक की प्रेरणा और परिणति सभी स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद के अद्भुत योग का परिचय देते हैं। इसलिए यह आधुनिक बौद्धिक चेतना का विषय बनने में समर्थ हैं। अतः इसकी प्रासंगिकता और जीवन्तता सुस्पष्ट है।

(v) अभिनेयता

डॉ. मीनाक्षी व्यास

प्रसाद के बाद हिन्दी नाटक को रंग-मंच से जोड़कर एक नई दिशा प्रदान करने वाले नाटककारों में श्री जगदीशचंद्र माथुर का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनका नाटक 'कोणार्क' साहित्यिक और कलात्मक सौन्दर्य से तो सम्पन्न है ही, साथ ही अभिनेयता की दृष्टि से भी पूरी तरह सक्षम है।

अभिनेयता या रंगमंचीयता को नाटक का अनिवार्य गुण माना जाता है। माथुर जी ने अपने नाटकों में रंगमंच और अभिनय के सम्बन्ध में विस्तार से संकेत दिए हैं जिनसे पता चलता है कि वे भी रंगमंच और अभिनय को नाटक का अनिवार्य गुण मानते हैं। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है कि– "काव्य रचना तो कोने में बैठकर भी की जा सकती है किन्तु लिखे जाने के बाद भी नाटक का अस्तित्व बिना प्रदर्शन के अधूरा है और उसके लिए संरक्षण आवश्यक है।" माथुर जी ने रंगमंच के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए कोणार्क की कथावस्तु, भाषा, संवाद और दृश्य की संयोजना की है।

कथावस्तु नाटक का आधारभूत तत्त्व है। नाटक की कथावस्तु इतिहास, पुराण, मिथक आदि कहीं से भी चुनी जा सकती है। लेकिन रंगमंच की दृष्टि से यह जरूरी है कि इतिहास के साथ-साथ समकालीन जीवन के संघर्षों, या फिर किसी शाश्वत सत्य का उद्‌घाटन करने वाली संवेदनशील कथा हो, तभी वह रंगमंच पर प्रभाव उत्पन्न कर पाएगी और दर्शकों के मर्म को स्पर्श कर पाएगी। इस दृष्टि से कोणार्क की कथावस्तु अत्यन्त प्रभावशाली और सार्थक है। कोणार्क के कथानक का चयन इतिहास से किया गया है लेकिन उसमें आये विभिन्न संवदेनशील प्रसंग आधुनिक अर्थों को अभिव्यक्त करते हैं। उड़ीसा के प्रसिद्ध मन्दिर कोणार्क के निर्माण और विध्वंस की ऐतिहासिक कथा पर इसका कथानक आधारित है। इस नाट्य कथानक में एक ओर कलाकार की सृजन प्रेरणा यथार्थ जीवन की भूमिका को महत्त्व देने का प्रयास किया गया है और इस सन्दर्भ में कलाकार के अन्तर्द्वन्द्व की विभिन्न स्थितियों को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है तो दूसरी ओर स्थापित सत्ता और कलाकार के बीच संघर्ष दिखाकर कलाकार के युग-युग से मौन पौरुष को भी वाणी देने का प्रयास किया गया है। इसलिए नाटक दर्शक की दृष्टि से अत्यन्त सार्थक, रोचक और प्रासंगिक बन गया है। नाट्य कथानक में इतिहास की स्थूल घटनाओं पर ध्यान न देकर उनके मार्मिक पक्षों और अनुभूति की गहराई पर बल दिया गया है, जिससे रंगमंच की दृष्टि से नाटक का प्रभाव बढ़ा है।

कोणार्क तीन अंकों का नाटक है। नाटक के प्रथम अक में कथा की गति कुछ धीमी है लेकिन आगे आने वाली घटनाओं की पृष्ठभूमि तैयार करने और पात्रों की मनःस्थिति को उजागर करने की दृष्टि से यह अंक प्रभावशाली है। दूसरे अंक में घटनाओं के तीव्रता से घटित होने के कारण कथा को गति मिलती है। तीसरे अंक में कलाकार का अन्तर्द्वन्द्व सामने आता है। साथ ही घटना-व्यापार की चरम सीमा और मार्मिक परिणति के कारण नाट्य कथानक दर्शक की दृष्टि से हृदयस्पृशी बन पड़ा है।

कथावस्तु में आई हुई विभिन्न नाट्य स्थितियाँ अपनी विशेषताओं से नाटक को रोचक और कलात्मक बना देती हैं। कथावस्तु के आरम्भ में ही विशु, राजीव, सौम्य श्रीदत्त आदि को बातचीत के द्वारा जिस स्थिति की योजना की गई है उससे दर्शक प्रभावित तो होता ही है, साथ ही वह आगे की घटनाओं को जानने के लिए भी जिज्ञासु हो उठता है। मन्दिर का निर्माण-कार्य पूर्ण हो जाने पर भी कलश की स्थापना न हो पाना जिज्ञासा पैदा करता है। इसी स्थिति में उद्विग्न विशु अपने प्रणय-प्रसंग को याद करता है। सौम्य श्रीदत्त द्वारा उठाया गया सूर्यदेव और कुन्ती का प्रसंग परोक्ष रूप से विशु और शबर कन्या सारिका के प्रणय-सम्बन्ध और उसकी विडम्बना को अभिव्यक्त करता है। डा. गोविन्द चातक का इस सन्बन्ध में कहना है कि "विशु की निष्ठुरता, कायरता, अवैध सन्तान की प्राप्ति–इन सभी प्रसंगों परोक्ष रूप से विशु और सूर्य तथा कुन्ती और सारिका एक हो जाते हैं। मिथक का यह नाटकीय प्रयोग अनूठी काव्यात्मकता लिये हैं।" सारिका और उसकी अज्ञात सन्तान को छोड़कर– 'कला के आँचल में मुँह छिपाने वाले विशु की कायरता नाटकीय विडम्बना को उभारती है। विशु पछताता है कि "भव्य मन्दिरों को बनाने वाले मेरे ये हाथ सारिका और उसकी सन्तान के लिए एक झोपड़ी भी नहीं बना सके।" इस प्रसंग की नाटकीय विडम्बना तब और भी गहरी हो जाती है जब विशु की परित्यक्ता प्रेयसी का पुत्र धर्मपद ही कलश-स्थापना में उसकी सहायता करके उसे तथा अन्य शिल्पियो को महामात्य चालुक्य का कोपभाजन बनने से बचा लेता है। नाटक की कथा में ये नाट्य स्थितियाँ अपने पूरे प्रभाव के साथ उभरती हैं और नाट्यानुभूति को पूरी तीव्रता और सघनता के साथ दर्शक तक पहुँचाने में समर्थ हैं– नाटक में आये हुए प्रतीक और बिम्ब भी इसमें पूरा सहयोग

दो तत्त्वों के समन्वय से उपजी कृति है जिसमें इतिहास और जनश्रुति, स्वप्न और सत्य, भावना और तर्क, व्यष्टि और समष्टि, अतीत और वर्तमान एकात्म हुए दीखते हैं। कोणार्क अन्तर्मुखी और ऊर्ध्वमुखी दोनों प्रवृत्तियों का प्रतिनिधि दृश्य काव्य है। उसके केन्द्र में प्रणयिनी और माँ के रूप में छायावादी नारी है किन्तु कर्म का वृत्त पौरुष द्वारा अंकित हुआ है। इस प्रकार नाटककार ने अपूर्व सामंजस्य स्थापित किए हैं। कोणार्क में व्यक्तिगत अनुभूतियों के साथ-साथ लोक-मंगल की भावना की सन्निहित है। अनुभूति और आदर्श दोनों स्तरों पर वह हृदय को प्रभावित करती है।

नाटक का अन्त विशु के रौद्र रूप को प्रकट करता है और अत्यन्त प्रभावशाली बन गया है। कोणार्क को बचाने में धर्मपद वीरगति को प्राप्त होता है। इस घटना के पश्चात् विशु का वास्तविक पौरुष जाग उठता है। उसकी समस्त संशयात्मकता एक क्षण में लुप्त हो जाती है। वह कला की रक्षा के लिए एकदम तैयार हो जाता है। अन्त में विशु के अन्दर की पीड़ा, आक्रोश और पराजय का जैसा बिम्ब प्रस्तुत किया है वह उसके प्रत्येक शब्द और मुद्राओं में प्रकट होता है– "कोणार्क– मेरी निधि, कोणार्क मेरी सृष्टि ..... कारीगर की हार। असम्भव, कोणार्क शिल्पी की पराजय का प्रतीक नहीं रहेगा।" कोणार्क की जीवनता इस बात में भी है कि इसके अन्त में पात्रों के अन्तर्दहन का चित्रण अवश्य है किन्तु इसे त्रासदी नाटक नहीं मानना चाहिए। क्योंकि उसमें कला और कलाकार का अन्त उनकी विजय का द्योतक है, कला की स्वतन्त्रता और शाश्वत सत्य को प्रस्तुत करता है। अत्याचारी के हाथों कला को पराजित नहीं होना पड़ता अपितु वही उस कला के नीचे दब कर मर जाता है। इसके द्वारा कलाकार को एक नई दिशा मिलती है।

कोणार्क की प्रासंगिकता के विषय में विचार करने के पश्चात् यह जानना भी आवश्यक है कि यह समकालीन भाव-बोध के साथ-ही-साथ रंगधर्मिता से सम्बद्ध नए प्रयोगों को भी समेटे हुए है। भारतेन्दु और जयशंकर प्रसाद की नाट्यानुभूति का हिन्दी-नाट्य-जगत् में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके पश्चात् जगदीशचन्द्र माथुर का 'कोणार्क' एक ऐसा नाटक है जो प्राचीन और नवीन, कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों को सन्तुलित रूप में प्रस्तुत करता है। इसलिए समकालीन यथार्थवादी सृजनशील साहित्य में कोणार्क को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। अन्त में कहा जा सकता है कि रचना-प्रक्रिया, शिल्प-विधान, भाव-बोध, नाटक की प्रेरणा और परिणति सभी स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद के अद्भुत योग का परिचय देते हैं। इसलिए यह आधुनिक बौद्धिक चेतना का विषय बनने में समर्थ हैं। अतः इसकी प्रासंगिकता और जीवन्तता सुस्पष्ट है।

(v) अभिनेयता

डॉ. मीनाक्षी व्यास

प्रसाद के बाद हिन्दी नाटक को रंग-मंच से जोड़कर एक नई दिशा प्रदान करने वाले नाटककारों में श्री जगदीशचंद्र माथुर का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनका नाटक 'कोणार्क' साहित्यिक और कलात्मक सौन्दर्य से तो सम्पन्न है ही, साथ ही अभिनेयता की दृष्टि से भी पूरी तरह सक्षम है।

अभिनेयता या रंगमंचीयता को नाटक का अनिवार्य गुण माना जाता है। माथुर जी ने अपने नाटकों में रंगमंच और अभिनय के सम्बन्ध में विस्तार से संकेत दिए हैं जिनसे पता चलता है कि वे भी रंगमंच और अभिनय को नाटक का अनिवार्य गुण मानते हैं। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है कि– "काव्य रचना तो कोने में बैठकर भी की जा सकती है किन्तु लिखे जाने के बाद भी नाटक का अस्तित्व बिना प्रदर्शन के अधूरा है और उसके लिए संरक्षण आवश्यक है।" माथुर जी ने रंगमंच के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए कोणार्क की कथावस्तु, भाषा, संवाद और दृश्य की संयोजना की है।

कथावस्तु नाटक का आधारभूत तत्त्व है। नाटक की कथावस्तु इतिहास, पुराण, मिथक आदि कहीं से भी चुनी जा सकती है। लेकिन रंगमंच की दृष्टि से यह जरूरी है कि इतिहास के साथ-साथ समकालीन जीवन के संघर्षों, या फिर किसी शाश्वत सत्य का उद्‌घाटन करने वाली संवेदनशील कथा हो, तभी वह रंगमंच पर प्रभाव उत्पन्न कर पाएगी और दर्शकों के मर्म को स्पर्श कर पाएगी। इस दृष्टि से कोणार्क की कथावस्तु अत्यन्त प्रभावशाली और सार्थक है। कोणार्क के कथानक का चयन इतिहास से किया गया है लेकिन उसमें आये विभिन्न संवदेनशील प्रसंग आधुनिक अर्थों को अभिव्यक्त करते हैं। उड़ीसा के प्रसिद्ध मन्दिर कोणार्क के निर्माण और विध्वंस की ऐतिहासिक कथा पर इसका कथानक आधारित है। इस नाट्य कथानक में एक ओर कलाकार की सृजन प्रेरणा यथार्थ जीवन की भूमिका को महत्त्व देने का प्रयास किया गया है और इस सन्दर्भ में कलाकार के अन्तर्द्वन्द्व की विभिन्न स्थितियों को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है तो दूसरी ओर स्थापित सत्ता और कलाकार के बीच संघर्ष दिखाकर कलाकार के युग-युग से मौन पौरुष को भी वाणी देने का प्रयास किया गया है। इसलिए नाटक दर्शक की दृष्टि से अत्यन्त सार्थक, रोचक और प्रासंगिक बन गया है। नाट्य कथानक में इतिहास की स्थूल घटनाओं पर ध्यान न देकर उनके मार्मिक पक्षों और अनुभूति की गहराई पर बल दिया गया है, जिससे रंगमंच की दृष्टि से नाटक का प्रभाव बढ़ा है।

कोणार्क तीन अंकों का नाटक है। नाटक के प्रथम अक में कथा की गति कुछ धीमी है लेकिन आगे आने वाली घटनाओं की पृष्ठभूमि तैयार करने और पात्रों की मनःस्थिति को उजागर करने की दृष्टि से यह अक प्रभावशाली है। दूसरे अंक में घटनाओं के तीव्रता से घटित होने के कारण कथा को गति मिलती है। तीसरे अंक में कलाकार का अन्तर्द्वन्द्व सामने आता है। साथ ही घटना-व्यापार की चरम सीमा और मार्मिक परिणति के कारण नाट्य कथानक दर्शक की दृष्टि से हृदयस्पृशी बन पड़ा है।

कथावस्तु में आई हुई विभिन्न नाट्य स्थितियाँ अपनी विशेषताओं से नाटक को रोचक और कलात्मक बना देती हैं। कथावस्तु के आरम्भ में ही विशु, राजीव, सौम्य श्रीदत्त आदि को बातचीत के द्वारा जिस स्थिति की योजना की गई है उससे दर्शक प्रभावित तो होता ही है, साथ ही वह आगे की घटनाओं को जानने के लिए भी जिज्ञासु हो उठता है। मन्दिर का निर्माण-कार्य पूर्ण हो जाने पर भी कलश की स्थापना न हो पाना जिज्ञासा पैदा करता है। इसी स्थिति में उद्विग्न विशु अपने प्रणय-प्रसंग को याद करता है। सौम्य श्रीदत्त द्वारा उठाया गया सूर्यदेव और कुन्ती का प्रसंग परोक्ष रूप से विशु और शबर कन्या सारिका के प्रणय-सम्बन्ध और उसकी विडम्बना को अभिव्यक्त करता है। डा. गोविन्द चातक का इस सन्बन्ध में कहना है कि "विशु की निष्ठुरता, कायरता, अवैध सन्तान की प्राप्ति–इन सभी प्रसगों परोक्ष रूप से विशु और सूर्य तथा कुन्ती और सारिका एक हो जाते हैं। मिथक का यह नाटकीय प्रयोग अनूठी काव्यात्मकता लिये हैं।" सारिका और उसकी अज्ञात सन्तान को छोड़कर– 'कला के आँचल में मुँह छिपाने वाले विशु की कायरता नाटकीय विडम्बना को उभारती है। विशु पछताता है कि "भव्य मन्दिरों को बनाने वाले मेरे ये हाथ सारिका और उसकी सन्तान के लिए एक झोपड़ी भी नहीं बना सके।" इस प्रसंग की नाटकीय विडम्बना तब और भी गहरी हो जाती है जब विशु की परित्यक्ता प्रेयसी का पुत्र धर्मपद ही कलश-स्थापना में उसकी सहायता करके उसे तथा अन्य शिल्पियो को महामात्य चालुक्य का कोपभाजन बनने से बचा लेता है। नाटक की कथा में ये नाट्य स्थितियाँ अपने पूरे प्रभाव के साथ उभरती हैं और नाट्यानुभूति को पूरी तीव्रता और सघनता के साथ दर्शक तक पहुँचाने में समर्थ हैं– नाटक में आये हुए प्रतीक और बिम्ब भी इसमें पूरा सहयोग

देते हैं। इसके अलावा आकस्मिकता और जिज्ञासा के जो तत्त्व नाट्यकथानक के आरम्भ में मिलते हैं वे अन्त तक नाटक को रोचकता प्रदान करते हैं। आरम्भ में धर्मपद का सहसा आगमन और कलश स्थापना में सहयोग, चालुक्य का शिल्पियों को धमकाना, आगे चलकर चालुक्य का विद्रोह और आक्रमण, उसका सामना करते समय धर्मपद का घायल होना, अन्त में धर्मपद की प्रेरणा से उद्विग्न विशु द्वारा कोणार्क का ध्वंस– ये सभी प्रसंग अपनी आकस्मिकता और नाटकीयता के द्वारा दर्शक की जिज्ञासा को तुष्टि देने वाले हैं।

कोणार्क हालांकि ऐतिहासिक नाटक है लेकिन उसके भीतर जो यथार्थवादी दृष्टिकोण मिलता है, उसके कारण यह यथार्थवादी नाट्य परम्परा का ऐतिहासिक नाटक माना जाता है। इस परम्परा की विशेषताएँ तो इसमें मिलती ही हैं, साथ ही यूनानी, संस्कृत और लोक नाट्य परम्पराओं की कई युक्तियों और रूढ़ियों का भी सफलता से उपयोग किया गया है। नाटक की दृश्य-अंक योजना में उपक्रम, उपकथन और उपसंहार का विधान किया गया है। नाटककार ने नाटक में इनका उद्देश्य और कार्य स्पष्ट करते हुए लिखा है– "उपक्रम, उपकथन और उपसंहार मेरे नए प्रयोग हैं, जिनमें आप संस्कृत नाटकों की प्रस्तावना और पाश्चात्य नाटकों के 'प्रोलॉग' और 'एपिलॉग' एवं कोरस की झलक पाएँगें। मुख्य नाटक की गति इतनी तीव्र और अविच्छिन्न है कि नाटक प्रारम्भ होने से पूर्व दर्शकों की मानसिक पृष्ठभूमि तैयार करना, अंकों के बीच उन्हें कथा-प्रवाह और भाव-प्रवाह से अवगत कराना और समाप्त होते ही उद्रेलित और विश्रृंखल मानसिक दशा को संकलित करना मैंने जरूरी समझा। इस तरह दर्शकों की संवेदनशीलता को क्रमशः चढ़ाव (आरोह) और उतार (अवरोह) का मौका देना मेरा लक्ष्य है।" (परिशिष्ट : 1, पृष्ठ 84) उपक्रम और उपसंहार में क्रमशः पूर्व और बाद की ऐतिहासिक कथा की जानकारी संक्षेप में मिलती है। उपक्रम में कोणार्क के स्वरूप और सौन्दर्य का चित्रण किया गया है, साथ ही 'कब उसका शिखर पूरा होगा?' यह वाक्य दर्शक या पाठक में जिज्ञासा जगाकर नाटकीय वातावरण का निर्माण करता है। पहले उपकथन में कोणार्क का शिखर पूर्ण होने तथा मन्दिर के प्रतिष्ठापन के लिए महाराज नरसिंहदेव के आगमन की सूचना मिलती है। इसके अलावा–

"और विशु?

सृजन के बवण्डर के जिस गगन-मण्डल को झकझोर दिया था–

वही आज–

पूर्ति की स्निग्धता में आभासित है।

इन पंक्तियों से आरम्भ में चिंतित और उद्विग्न विशु की अब संतुष्ट और शान्त मनः स्थिति का आभास मिलता है। दूसरे उपकथन में घमासान युद्ध और उसमें घायल धर्मपद के कारण विशु की अधीर और आतुर मनः स्थिति की ओर संकेत किया गया है। उपसंहार नाटक के दुखान्त की सूचना देता है। उसमें यह बात स्पष्ट की गई हैं कि विशु द्वारा चुम्बक हटा देने पर कोणार्क का विमान टूट जाता है और उसके नीचे दबकर महामात्य चालुक्य, उसके सैनिक और खुद विशु मृत्यु को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार रंगमंचीय युक्ति के रूप में प्रयुक्त उपक्रम, उपकथन और उपसंहार दर्शक की दृष्टि से नाटक के प्रभाव को बढ़ाते हैं। इनके द्वारा नाटक और दर्शक के बीच सीधा सम्बन्ध स्थापित होता है। इनकी परिकल्पना में भाषा नाटकों के वृन्दवार्तिक या सूत्रधार और उसके संगियों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। तीनों कथानक के बारे में कई आवश्यक बातें बताते हैं। वाचिकाएँ एक-दूसरे से बात करती हैं और सूत्रधार से प्रश्न पूछती हैं। सूत्रधार उत्तर देकर उनकी और दर्शक की जिज्ञासा को सन्तुष्ट करता है तथा आगे होने वाली घटनाओं की और संकेत भी करता है।

श्री माथुर ने रंगमंच सम्बन्धी बातों में नाटकीय निर्देश, रंगमंच की व्यवस्था और पात्रों की वेशभूषा आदि पर भी ध्यान दिया है। नाटकीय निर्देशों के अन्तर्गत पात्रों के हाव-भाव और उनके प्रवेश-प्रस्थान आदि के बारे में निर्देश दिए जाते हैं। कोणार्क में दिए गए रंगमंच निर्देश इतने विस्तृत और स्पष्ट हैं कि पाठक भी पात्रों की रूपकल्पना कर सकता है। जैसे–

"राजीव का प्रवेश। साथ में एक और युवक– वय लगभग 16 वर्ष। साँवला रंग। इसके दृढ़ कपोल, तेजोमयि आँखें, घुंघराले बाल घोषित करते हैं कि वह असाधारण वृत्ति का व्यक्ति है। तंग अंगरखा और ऊँची धोती पहने है। राजीव के पीछे-पीछे आकर द्वार के निकट खड़ा होता है। जब विशु से बातें करता है, तब उसकी दृष्टि मानों विशु की काया के नीचे अंतर्हित किसी पुरातन विशु को खोजती है।" (कोणार्क, पृ. 33)

धर्मपद के बारे में दिए इस नाटकीय निर्देश से उसकी वेषभूषा, बाह्य आकृति और वय आदि का तो पता चलता ही है साथ ही उसके व्यक्तित्व की दृढ़ता, असाधारणता तथा सूक्ष्म पर्यवेक्षण क्षमता आदि का भी परिचय मिलता है। दूसरी और महामात्य चालुक्य के हाव-भाव और वेशभूषा का वर्णन इस प्रकार किया गया है– "x x x उसके बाद महामन्त्री चालुक्य

आते हैं। पुष्टकाय, आयु लगभग 45, मुख पर क्रुर मुद्रा बड़ी-बड़ी मूँछें। नेत्र छोटे हैं और बात करते समय संकुचित लगते हैं। बातचीत के वक्त भौहें सिकुड़ जाती हैं और बायें हाथ में ठुड्डी को सहलाते भी हैं। पोशाक– पुराने ढंग से बाँधी हुई धोती, रेशमी उत्तरीय, सुवर्ण पट मस्तक पर, बाजू पर एक बाजूबन्द, कमर में कटार, उत्तरीय कुछ लटक रहा है और एक हाथ में उसे पकड़ते हुए वेग से अन्दर आते हैं और अभ्यर्थना की उपेक्षा करते हुए बैठ जाते हैं।" (पृ. 37) इन पंक्तियों में चालुक्य के बाहरी स्वरूप, आकृति और हाव-भाव का ऐसा परिचय दिया गया है कि उसका कटु, कठोर, कुटिल और अहंकारी व्यक्तित्व भी सामने आ जाता है।

कोणार्क में कुछ स्थलों पर चित्रों के द्वारा रंगमंच का पूरा विधान भी स्पष्ट कर दिया गया है। नाटक की कथा तीन अंकों में विभक्त है जिनके कार्यस्थल के रूप में कोणार्क के खण्डहर, मन्दिर में विशु के कक्ष और मन्दिर के गर्भ-गृह से सटे अन्तराल की दृश्य सज्जा के संकेत तो दिए गए हैं साथ ही उनके रेखांकित चित्र भी दिए गए हैं।

हिन्दी नाटकों में निर्देशक के लिए अलग से संकेत प्रायः नहीं दिए जाते, प्रायः मंच का संक्षिप्त वर्णन या नेपथ्य की सूचनाएँ निर्देशक के लिए होती हैं। लेकिन माथुर जी ने कोणार्क में परिशिष्ट के अन्तर्गत निर्देशक के लिए अलग से अभिनय और निर्देशन सम्बन्धी संकेत दिए हैं, जिससे रंगमंच के प्रति नाटककार का दृष्टिकोण समझने में आसानी होती है।

गीत और कथागायन नाटक के कथ्य को अधिक प्रभावशाली ढंग से दर्शक तक संप्रेषित करने में सहायक होते हैं। इसलिए नाटकों में गीतों की योजना की जाती है लेकिन उन गोतों के सम्बन्ध में लय के उतार-चढ़ाव और राग सम्बन्धी सूचनाएँ प्रायः नहीं दी जातीं। कोणार्क में माथुर जी ने उपक्रम आदि में आए संगीत के सम्बन्ध में कुछ सूचनाएँ और संकेत विस्तार से दिए हैं। जैसे–

"झीने अन्धकार में कोणार्क के खण्डहर की हल्की झलक दीख पड़ती है। सम्मिलित वाद्यों का स्वर। उस संगीत की अन्तिम ध्वनियाँ ऐसी हैं जैसे सागर की लहरों का अनवरत, न थकने वाला, सृष्टि की व्यंग्यमयी वेदना से परिपूर्ण रुदन। x x x निश्शब्द वातावरण को भेदते हुए एक-एक करके तीनों के स्वर सुन पड़ते हैं, मानों शताब्दियों के सोपानों को पार करने वाले, चिर जागृत सागर की लहरें कथा सुनाती हों।" (पृ. 19) उपक्रम की इन पंक्तियों में संगीत की ध्वनियों और प्रभाव के सम्बन्ध में विस्तृत सूचनाएँ देकर करुण और गम्भीर वातावरण की सृष्टि की ओर संकेत किया गया है। दूसरी और "वही झीना अन्धकार। वही विराट् नेपथ्य संगीत, किन्तु पहले की अपेक्षा अधिक हलचलपूर्ण; मानों शिव का प्रलयंकर तांडव-राग हो।" (पृ. 63) यहाँ युद्ध के हलचल पूर्ण वातावरण के अनुकूल संगीत योजना का संकेत दिया गया है।

रंगमंच-व्यवस्था में संगीत-व्यवस्था के साथ-साथ पट-व्यवस्था, नेपथ्य-व्यवस्था, प्रकाश-व्यवस्था और ध्वनि-संकेत सम्बन्धी निर्देश भी होते हैं। कोणार्क में ध्वनि-प्रभावों के द्वारा नाटक के ऐतिहासिक वातावरण और प्रभाव को और गहरा बनाया गया है। उपकथन और उपसंहार के बीच में ध्वनि-प्रभावों का सार्थक प्रयोग हुआ है। तीसरे अंक के अन्त में गर्भ-गृह के अन्दर पत्थर पर एक चोट पड़ने की आवाज, फिर दुबारा पत्थर पर चोट, फिर अन्दर से विशु का अट्टहास और संवाद सुनाई पड़ता है, और कुदाली का आघात इसके बाद पत्थर गिरने की ध्वनि और अन्त में भीषण धमाके के साथ मूर्ति अदृश्य हो जाती है। नाटक के अन्त में माथुर जी ने इस दृश्य को रंगमंच पर दिखाने के सम्बन्ध में निर्देशक को उपयुक्त संकेत भी दिए हैं।

ध्वनि के अलावा प्रकाश का प्रयोग भी वातावरण के निर्माण के लिए कई स्थलों पर किया गया है। परिशिष्ट में नाटककार ने सुझाया है कि उपक्रम और उपसंहार में खण्डहर की झलक दिखाने के कई तरीके हो सकते हैं। उन्होंने श्री उदयशंकर का बैक प्रोजेक्शन टेकनीक या रंगपटी का उदाहरण दिया है जिसमें प्रोजेक्टर, स्लाइड और समुचित प्रकाश-व्यवस्था के द्वारा मन्दिर की रूपरेखा की झलक दिखाई जा सकती हैं। इसके अलावा उपक्रम, उपकथन आदि में झीने अंधकार के बीच सूत्रधार और वाचिकाओं पर पड़ता हुआ प्रकाश नाटकीय प्रभाव को और गहराता है– "प्रकाश सूत्रदार और वाचिकाओं पर पड़ता है, और एक-एक करके जब वे बोलते है तो बोलने वाले पर प्रकाश प्रखर हो जाता है।" (पृ. 43) तीसरे अंक के अन्त में भी प्रकाश का सार्थक उपयोग किया गया है।

इस प्रकार नाटककार ने रंगमंच और अभिनय को ध्यान में रखकर संगीत, ध्वनि-व्यवस्था व प्रकाश-व्यवस्था के सम्बन्ध में उपयुक्त निर्देश दिए हैं। साथ ही उन्होंने मंच-स्वस्था में बहुत अधिक आडम्बर को महत्त्व न देकर उत्कृष्ट अभिनय पर बल दिया है– "निर्देशक और संयोजक यह समझ लें कि नाटक की सफलता सेंटिंग और तड़क-भड़क पर इतनी निर्भर नहीं करती जितनी अभिनय की उत्कृष्टता पर। x x x यहाँ तो संवाद और अभिनय की चमत्कार से अधिक महत्ता है और इसलिए उन्हीं पर विशेष जोर डालना चाहिए।" (पृ. 89)

अभिनयेता की दृष्टि से नाट्य-भाषा और संवाद को पूरा महत्त्व 'कोणार्क' में दिया गया। हालांकि इसकी भाषा तत्सम-प्रधान है और संवादों में भी भावात्मकता व काव्यात्मकता अधिक है, रंगमंचीय गुण कम हैं। लेकिन फिर भी इसके संवाद नाटक में आये तनाव और भावावेश की स्थितियों तथा नाटकीय गति को वहन करने में समर्थ हैं। नाटककार ने संवादों में लय के उतार-चढ़ाव आदि के सम्बन्ध में भी निर्देश दिए हैं। परिशिष्ट में उन्होनें संवादों को मंच पर प्रस्तुत करने के सम्बन्ध में आने वाली कठिनाइयों, उच्चारण आदि के बारे में विस्तार से निर्देश दिए हैं। जैसे– "तीसरे अंक के पूर्वार्द्ध में संवाद काव्य-सुलभ सुकोमलता की सतह पर चलता है; इसलिए कुछ विलम्बित गति और आत्मविभोरता की गुँजाइश हैं। x x x विशु जब अकेला मूर्ति को संबोधित करके बोलता है, तब उसके एक-एक वाक्य की निजी सत्ता है। लगभग हर वाक्य के बाद थोड़ा विराम है और उसके बाद स्वर भिन्न होना चाहिए।" (पृ. 87)

इस प्रकार 'कोणार्क' अभिनेयता व रंगमंचीयता की दृष्टि से पूर्णतः समर्थ और प्रयोगात्मक प्रकृति का नाटक है। इसमें संस्कृत, पाश्चात्य, लोकनाट्य शैलियों व यथार्थवादी रंगमंच की विशेषताओं का समन्वय हुआ है पर उन्हें ज्यों-का-त्यों न अपनाकर नाटक की आवश्यकताओं आदि के अनुरूप नया रूप दिया गया है।

(vi) महत्त्वपूर्ण स्थलों की व्याख्या

डॉ. दिनेशकुमार गुप्ता

(1) ''हमने पत्थर में जान डाल दी हैं उसे गति दे दी है। (सोत्साह) वह भूल रहा है कि वह धरती का पदार्थ है। उसके पैर धरती पर नहीं टिकते। पत्थर का यह मन्दिर आज कल्पना के स्पर्श से हवा की तरह गतिमान, किरण की तरह स्पर्शहीन, सुगंध की तरह सर्वव्यापी हो रहा है। लेकिन..... लेकिन धरती उसे जकड़े हुए है, ईर्ष्या से। ....मुझे लगता है, जैसे अनजाने ही हम लोगों ने पृथ्वी और आकाश के बीच भीषण संघर्ष खड़ा कर दिया है।'' (पृष्ठ 26)

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश श्री जगदीशचन्द्र माथुर द्वारा रचित 'कोणार्क' नामक ऐतिहासिक नाटक के प्रथम अंक से लिया गया है। माथुर साहब हिन्दी नाट्यधारा में प्रसाद के पश्चात् नवीन प्रकार के प्रयोगधर्मी नाटककार के रूप में उभरे हैं।

संदर्भ– कोणार्क का देवालय बन रहा है। इसी सन्दर्भ में राजीव, सौम्य, श्रीदत्त और प्रधान-शिल्पी विशु परस्पर बातचीत कर रहे हैं। किसी ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की थी कि वह देवालय ज्यों ही पूरा हो जाएगा त्यों ही सारा मन्दिर आकाश में उड़ जाएगा। इस सम्बन्ध में विशु कह रहे है:

व्याख्या– कोणार्क का देवालय अत्यधिक सुन्दर और अद्‌भुत बना है, अतः यह कहना कठिन है ये विशालकाय पत्थर की मूर्तियाँ आकाश में उड़ेगी या नही। हाँ, हमने अपनी सम्पूर्ण कला के बल पर इसको सुन्दरता और सुगढ़ता दे दी है मानों पत्थरों में प्राण डाल दिए हों। मानो वे मुँह से बोल उठी हों। उन्हें देखकर ऐसा लगता है कि सजीव प्राणियों के समस्त गुण इन मूर्तियों में अनायास ही आ गए हैं। जिस प्रकार हवा का गुण गतिमान रहना है, निरन्तर प्रवाहित रहना है, उसी प्रकार पत्थर की मूर्तियों से बना यह मन्दिर भी गतिमान दिखाई देने लगेगा। जिस प्रकार किरणों का गुण स्पर्शहीनता है अर्थात् उन्हें छू नहीं सकते, उसी प्रकार मूर्त होते हुए भी इन पत्थरों में अमूर्त सौन्दर्य, चमक और प्रकाश विद्यमान है। जैसे–सुगन्ध के लिए कोई सीमा नही है, वह सर्वव्यापी है, उसी प्रकार इस मन्दिर का सौन्दर्य सार्वकालिक और सार्वभौमिक हैं। वह पृथ्वी और आसमान में दोनों मे अपने रूप-गुण का सम्मोहन फैला रहा है। किन्तु पृथ्वी उसे ईर्ष्या-वश पकड़े हुए हैं, क्योंकि वह इतनी सुन्दर और अद्वितीय वस्तु को अपने से अलग नहीं होने देना चाहती। वास्तविकता तो यह है कि इस देवालय का सौन्दर्य और प्रकाश पृथ्वी और आकाश दोनों के लिए ही सहज है। हम मनुष्यों ने ही पृथ्वी और आकाश के बीच मन्दिर को लेकर संघर्ष करवा दिया है। इस संघर्ष की कोई आवश्यकता नहीं है, कोई अवसर नहीं है, यह सब व्यर्थ है। सौन्दर्य, चमक गति की अद्‌भुतता पृथ्वी और आकाश दोनों के लिए ही सुलभ है।

विशेष–कोणार्क का मन्दिर अत्यन्त सुन्दर और अभूतपूर्व है। इसे स्पष्ट करने के लिए नाना प्रकार की कल्पनाएँ की गयी है।

यहाँ महत्त्वपूर्ण यह है कि नरसिंहदेव ने तो उसे बनवाया है। किन्तु उसी का देशद्रोही महामन्त्री राजराज चालुक्य कला की उस पराकाष्ठा को द्वेष की दृष्टि से देखता है। अन्त में उसी के कारण विशु स्वयं अपनी कला को नष्ट कर देता है किन्तु उसके अधिकार मे नहीं जाने देता। इस अर्थ में ज्योतिषी की भविष्यवाणी सच भी होती है।

मन्दिर के पत्थरों की जो विशेषताएँ इस संवाद में बताई गई है उनसे उच्चकोटि की स्थापत्य कला का परिचय मिलता है।

इसकी भाषा सरल और सारगर्भित है। कुशल कलाकार की भावना को व्यक्त करने की क्षमता लिये हुए है।

संवाद अत्यन्त छोटा किन्तु विशु के चरित्र को उजागर करने वाला है। नाटक के अन्त में जाकर इसकी सार्थकता सिद्ध हो जाती है।

(2) ''कुन्ती और सूर्यदेव! लोग समझते हैं कुन्ती ने ऋषि का वरदान जाँचने के लिए सूर्य भगवान् का आह्वान किया। .....जी नहीं। क्षितिज पर सवेरे की अरुणिमा की भाँति, तेजस्वी सूर्यदेव का मादक स्वरूप कुन्ती के मानस-गगन के छोर पर खिंच गया। और फिर? - जैसे पूर्व दिशा की लालिमा, मध्याह्न का जगमगाता और प्रचंड ताप बन जाती है, ठीक वैसे ही, दोनों का अनुराग एक उत्तप्त और विश्वव्यापी विलास बन गया। कोणार्क की युगल मूर्तियों में विलास बिखरा पड़ा है- उद्दाम और यौवन का वेग, उत्तान, श्रृंगार का उल्लास (पृष्ठ 30)

प्रसंग– पूर्ववत्

संदर्भ– कोणार्क के देवालय के पूर्ण हो जाने पर हर्षोल्लास व्यक्त करने के लिए मधुर प्रणय-प्रसंगों से पूर्ण नृत्य करने की योजना में भगवान सूर्य का ध्यान आता है। किन्तु विशु सौम्य श्रीदत्त से कहता है कि सूर्य की कथा में रमणीयता नहीं है। इस पर सौम्य बताता है कि सूर्य के जीवन में एक प्रेम-प्रसंग आता है उसमें रमणीयता अवश्य है। उसी का यहाँ प्रदर्शन किया जाएगा। उसी प्रेम-प्रसंग को यहाँ अभिव्यक्त किया है।

व्याख्या– कुन्ती और सूर्य का प्रेमभाव सबको पता है। सौम्य कहता है, इसका कारण यह नहीं था कि कुन्ती ने किसी तपस्वी के वरदान की जाँच-परख करने के लिए भगवान् सूर्य की पूजा-अर्चना की थी। वास्तव में प्रातः काल सूर्य के उदय के समय उनके सुन्दर-मादक-तेज को देखकर कुन्ती मोहित हो गई थी। धीरे-धीरे दोनों के बीच सहज सौहार्द्र हो गया और दोनों एक-दूसरे को प्रेम करने लगे। जैसे-जैसे सूर्य दिन में बढ़ता जाता है और अपनी गर्मी व प्रचण्डता से सभी को ढाँपता जाता है उसी प्रकार कुन्ती और सूर्य का कोमल मधुर प्रेम धीरे-धीरे घना होते हुए भोग-विलास की सीमा तक पहुँच गया। उसके पश्चात् सूर्य के वरदान के कुन्ती को एक पुत्र प्राप्त हुआ। उसी विलास का सागर और सुन्दर साज-श्रृंगार इन मूर्तियों को अद्‌भुतता प्रदान करता है। यह उसी कलाकार की बनाई हो सकती है जिसने स्वयं इस प्रकार का प्रेम-सम्बन्ध निबाहा हो।

विशेष– विशु ने भी एक बार एक नवयुवती से प्रेम किया था। प्रेम और भोग की पारकाष्ठा के कारण वह कौमार्य में ही गर्भवती हो गई थी और विशु उसे त्याग आए थे। सूर्य और कुन्ती की इसी प्रकार की कथा सुनकर उन्हें अपना समय याद आ गया। पूर्व प्रेम की स्मृति और प्रेयसी के त्याग की कायरता ने उन्हें यहाँ दुःख और कचोट की सीमा पर ला खड़ा किया। वे वास्तव में पछता रहे हैं कि मैंने उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। एक संवदेनशील कलाकार का यह व्यवहार घृणित है।

संवाद व्यंग्यात्मक और पूर्व घटना-प्रसंगों को परोक्ष रूप से उभारने में सक्षम हैं।

विशु के व्यक्तिगत जीवन-क्रम का संकेत देकर कलाकार की थोथी आदर्शवादिता को व्यक्त करता है।

भाषा संस्कृतगर्भित है। किन्तु पात्र के विचार को व्यक्त करने में समर्थ है।

(3) ''वियोग के बादलों पर सूर्य की किरणें बिखरी और कला का सतरंगी इन्द्रधनुष सारे उत्कल पर छा गया। कैसी विडम्बना है विशु, कि तुम्हारी टूटी हुई रागिनी का विषाद ही तुम्हारी चमत्कारपूर्ण कला का वैभव बना।'' (पृ. 32)

प्रसंग– पूर्ववत्।

सन्दर्भ– सौम्य श्रीदत्त, विशु को मन्दिर के प्रांगण में प्रस्तुत करने वाले संगीतक के विषय में बताते हुए जब कुन्ती-सूर्य–प्रणय-प्रसंग एवं उनके विरह की कथा सुनाने लगते हैं तब विशु एकाएक भावावेश में आ जाते हैं। विशु की भावभंगिमाओं को देखते हुए सौम्यश्री के हृदय में शंका होती हैं कि कहीं विशु भी इसी विरह-वेदना से पीड़ित तो नहीं है। बातों-बातों में यह रहस्य उद्‌घाटित होता है कि विशु अपने यौवन काल में मन्दिर निर्माण हेतु शबर अटीविका के निकट गया था। वहाँ एक सुन्दरी शबर कन्या सारिका से उसका प्रेम हो गया किन्तु ज्यों ही उसे ज्ञात हुआ कि सारिका गर्भवती है, वह प्रतिष्ठा एवं अपने सम्मान की रक्षा हेतु वहाँ से भाग खड़ा हुआ। सौम्यश्री के सम्मुख जब यह अपनी कायरता और असफलता का वर्णन करता हैं तो वे उसकी कला की प्रेरणा का मुख्य स्रोत इसी विरह को मानते हुए कहते हैं–

व्याख्या– विश्व का अधिकांश साहित्य विरह के आँसुओं से गीला है। कोई भी विरही व्यक्ति अपनी विरह व्यथा को व्यक्त करने के लिए किसी न किसी कला का सहारा लेता है। विशु। तुमने भी अपने असफल प्रेम को भुला देने के लिए स्थापत्य कला में अपने आप को तिरोहित कर दिया है। ये मूर्तियाँ तुम्हारे मानसिक विषाद का प्रतीक हैं। इसी कारण इन में अप्रतिम सौन्दर्य है। इस कलात्मक सौन्दर्य का प्रेरणा-स्रोत तुम्हारा अधूरा प्रेम-सम्बन्ध है और कहा जाये तो तुम्हारी यह भूल ही तुम्हें महान् शिल्पी बनाने में सहायक हुई हैं।

प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से विशु की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है।

विशेष– सौम्य श्रीदत्त कला का प्रेरणा-स्रोत 'विरह' को मानते हैं।

भाषा काव्यमयी है।

छायावादी कवि पन्त ने भी 'विरह' के सम्बन्ध में इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति की है–

वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान, उमड़ नयनों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।

(4) ''जीवन के आदि और उत्कर्ष के बीच एक और सीढ़ी है- जीवन का पुरुषार्थ। अपराध क्षमा हो आचार्य, आपकी कला उस पुरुषार्थ को भूल गयी है। जब मैं इन मूर्तियों में बँधे रसिक जोड़ों को देखता हूँ तो मुझे याद आती है पसीने में नहाते हुए किसान की कोसों तक धारा के विरुद्ध नौका खेने वाले मल्लाह की, दिन-दिन भर कुल्हाड़ी लेकर खटने वाले लकड़हारे की। ..... इसके बिना जीवन अधूरा है, आचार्य।'' (पृष्ठ 34)

प्रसंग– पूर्ववत्

सन्दर्भ– एक युवक कलाकार धर्मपद प्रधान-शिल्पी आचार्य विशु से मिलता है। जीवन और कला की पूर्णता-अपूर्णता और उसके प्रयोजन पर परस्पर बातचीत होती है। धर्मपद विशु द्वारा निर्मित मूर्तियों को कला की अपूर्णता, केवल कल्पना तथा आदर्श की प्रतिमूर्ति कहकर विरोध करता है। विशु कहता है कि जीवन का आरम्भ और विकास, उन्नति भी इसी रमणीयता, भोगविलास, शृंगार-प्रेम-अनुराग में निहित है। धर्मपद कहता है ऐसा नहीं है।

व्याख्या– जीवन का आरम्भ और उन्नति–इन दोनों के बीच एक सोपान और है, उसे कर्म कहते हैं। मनुष्य को जीवन में कर्म-पथ को कभी उपेक्षित नहीं करना चाहिए। उससे जीवन के यथार्थ और वास्तविकता का अनुभव होता है। उसी के बल पर कला को यथार्थ भावभूमि भी मिलती है। हे आचार्य विशु। मैं बहुत विनम्र भाव से क्षमा माँगते हुए आप से कहना चाहता हूँ कि आपकी कला में कल्पना और आदर्श तो हैं, प्रेम और अनुराग-तत्त्व तो है किन्तु पुरूषार्थ उसमें नहीं है। आपको जीवन-कर्म की व्यावहारिकता को बोध ही नहीं है। इसी कारण आपकी कला में इन सब बातों की अभिव्यक्ति नहीं हो पायी। मैं इससे आपके व्यक्तित्व और कला को अधूरी मानता हूँ। जो लोग पसीना बहाकर आठ-दस घण्टे तेज गर्मी में पत्थर कूटते हैं, पानी के बहाव के विरुद्ध जो लोग नाव चलाकर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं, जिनके हाथ सारा दिन लकड़ियाँ काटते-काटते निष्प्राण-से हो जाते हैं फिर भी कर्म को नहीं छोड़ते, जो लोग जीवनयापन के लिए न जाने कितनी-कितनी यातनाएँ सहन करते हैं, उनके प्रति भी संवदेनशील कलाकार का ध्यान आकृष्ट होना चाहिए। उनका चित्रण भी उसकी कला में होना चाहिए। केवल प्रेम-अनुराग में दो प्रेमियों को, उनके नाना प्रकार के हाव-भाव और प्रेम-क्रीड़ाएँ दिखाना जीवन की वास्तविकताओं से आँखें मूँदना हैं।

विशेष– धर्मपद नवयुवक व्यवहारकुशल व जागरूक शिल्पकार है। युवक होने के नाते और जीवन के संघर्षों से जूझने के पश्चात उसकी विचारधारा व्यावहारिकता और पुरुषार्थ से जुड़ी हुई है। कल्पना और यथार्थ का समन्वय ही सच्ची और पूर्ण कला को जनम देता है। इसी विचार को उसने विशु के समक्ष बहुत निर्भीकता से प्रस्तुत किया है।

विशु की एकपक्षीय, कल्पना की निस्सारता का धर्मपद ने सजग होकर विरोध किया है। अन्त में उसकी व्यावहारिकता और पुरुषार्थ का मन्त्र सम्पूर्ण शिल्पी-समाज में एक नए प्रकार की क्रान्ति ला देता है।

भाषा तीव्र, मुद्राओं को व्यक्त करने वाली है। धर्मपद के प्रखर प्रगतिशील व्यक्तित्व को उद्घाटित करती है।

संवाद रंगमंच पर अभिनय के अनुकूल हैं। इसकी महत्ता सम्पूर्ण नाटक की चेतना बदल देने में है।

(5) ''ऐसे समय में पावस की वातास की भाँति तृषित भूमि में यह युवक आ पहुँचा, इसकी अद्वितीय सूझ मेरे लिए आकाशवाणी बनी, खोये राही का पथ-प्रदर्शन हुआ। और रात दिन में ही इसके अनवरत परिश्रम और प्रतिभा ने कोणार्क के शिखर को पूरा कर दिया।'' (पृ. 50)

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश द्वितीय अंक के लिया गया है। शेष पूर्ववत्।

संदर्भ– महाराज नरसिंहदेव कोणार्क मन्दिर की भव्यता को देखकर अत्यन्त प्रभावित होते हैं और महाशिल्पी विशु का समादर करना चाहते हैं किन्तु विशु उन्हें बतलाते हैं कि इस सम्मान का वास्तविक अधिकारी धर्मपद है। महाराज नरसिंह देव को इस पर विश्वास नहीं होता। राजीव भी विशु के कथन की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि चाहे जैसे नाप-जोख करके वे विमान के ऊपर शिलाएँ रखते थे, वे सब नीचे आ पड़ती थी। सभी अपने स्वप्न को अधूरा देखकर व्याकुल थे। चारों ओर अन्धकार और उदासी छाई हुई थी। आचार्य विशु पुनः महाराज नरसिंहदेव को विश्वास दिलाते हुए कहते हैं–

व्याख्या– वर्षों के अथक परिश्रम के बावजूद भी हम लोग इस समस्या को सुलझाने में अपने को पूर्ण रूप से असमर्थ पा रहे थे। हम प्रायः इसी उधेड़-बुन में रहते कि कैसे मन्दिर के ऊपरी भाग में त्रिपटधर को स्थापित किया जाए। हमारे ऐसे निराशा से पूर्ण समय में धर्मपद नामक यह युवक वर्षा ऋतु की वायु की भाँति तृषित भूमि में आ पहुँचा। जीवन के घने अन्धकार में आशा की किरण पुनः चमक उठी। उसने हमारी समस्या को गहराई से समझा और आवश्वासन दिया कि यह कार्य वह निश्चित रूप से पूरा करेगा। धर्मपद की अद्वितीय और अद्भुत सूझबूझ मेरे लिए आकाशवाणी बनी। धर्मपद की युक्ति के द्वारा मैं अपनी भयंकर समस्या का समाधान पा गया। मुझे ऐसा लगा जैसे किसी खोये हुए राही का पथ प्रदर्शन

हो गया हो। मैं निःसन्देह धर्मपद की प्रशंसा करना चाहता हूँ– क्योंकि उसने हमारी हार को स्वीकार नहीं किया और अपने निरन्तर परीश्रम तथा प्रतिभा द्वारा कोणार्क के शिखर को पूरा कर दिखाया– जिसे मैं वर्षों से पूरा नहीं कर पा रहा था। इसी कारण सम्मान प्राप्त करने का पूर्ण अधिकारी यह युवक धर्मपद ही है। यह रत्नमाला इस युवक को ही पहनानी चाहिए।

विशेष– धर्मपद के स्थापत्य कौशल की जानकारी प्रस्तुत पंक्तियों में मिलती है। भाषा संस्कृतनिष्ठ है। शैली विचार प्रधान है। संवाद स्थिति के अनुरूप हैं।

(6) ''बहुत हुआ, बहुत हुआ दूत! क्या हम लोग भेड़-बकरियाँ हैं जो चाहे जिसके हवाले कर दी जाएँ? आज ही तो हमारे भाग्य का फैसला है। जिस सिंहासन को तुम आज डाँवाडोल कर रहे हो, वह हमारे कन्धों पर टिका है। क्या उस पर वह बैठेगा, जिसके कारण सैकड़ों घर उजड़ चुके हैं, वह जिसने कोणार्क के सौन्दर्य-निर्माता शिल्पियों को ठोकरों से तुच्छ मान ठुकराया है?'' (पृ. 57)

प्रसंग– यह गद्यांश द्वितीय अंक के लिया गया है। शेष पूर्ववत्।

सन्दर्भ– उत्कल राज्य का महामन्त्री राजराज चालुक्य देशद्रोही बनकर अपने राजा नरसिंहदेव से सम्पूर्ण राज्य हड़पना चाहता है। उसका दूत यह समाचार लेकर नरसिंहदेव के पास आता है। नरसिंहदेव उस समय कोणार्क-देवालय के पूर्ण हो जाने के उत्सव में विराजमान हैं। इस समाचार ने भी शिल्पकारों को एकाएक झकझोर दिया। धर्मपद इस मनमानी और द्रोह का डटकर मुकाबला करने के लिए तैयार है।

व्याख्या– धर्मपद उस दूत से कहता है कि तुम राजराज चालुक्य से जाकर कह दो कि अब उसके अत्याचार हम नहीं सहेंगे। हमारी निष्ठा नरसिंहदेव के प्रति है। हम केवल शिल्पी नहीं हैं हथियार उठाना और युद्ध करना भी जानते हैं। बहुत बड़े शब्दों में धर्मपद कहता है कि हम प्रजा भेड़ और बकरियों के समान नहीं हैं, कि हमारी इच्छा के बिना कोई भी हमारा स्वामी बन बैठे। हम सजग हैं, और समर्थ हैं। अपना स्वामी स्वयं चुनना हमारा अधिकार है। इसे हम किसी दूसरे को नहीं दे सकते। आज वह समय आ गया है जब समस्त प्रजा को एक सिपाही के समान अन्याय और विद्रोह का सामना करना है। अपने भाग्य का फैसला स्वयं करना है। इस, राज्य को तुम्हारे राजराज चालुक्य ने अनाचारों के द्वारा वर्षों से डाँवाडोल कर रखा था जिसकी चरम स्थिति आज आ पहुँची है। किन्तु वह यह तो भूल ही गया है कि इसे हमने अपने कन्धों पर स्थिर कर रखा है। इसका राजा वह कभी भी नहीं बन सकता जो सदा से अन्यायी, अत्याचारी, प्रजा का भक्षक रहा हो। जिसने अपने अधिकारों का दुरूपयोग किया हो। मानवता का गला घोंटा हो। कर्त्तव्य का कभी निर्वाह न किया हो। तुम्हारे चालुक्य ने कोणार्क-मन्दिर के शिल्पियों और कलाकारों का कभी सम्मान नहीं किया, उन्हें तुच्छ और फालतू के जीव-जन्तु समझा। ठोकरों से ही ठुकराया। सभी के घर उजाड़ दिए। कलाकारों के हाथ काटने की धमकी देने वाला तुम्हारा राजराज चालुक्य कलिंग का स्वामी कभी नहीं बन सकता। यह हमारा राज्य है। हम इस राज्य की प्रजा हैं। हम राजराज से युद्ध करेंगे और नरसिंहदेव को ही राजा बनाएँगें।

विशेष– धर्मपद निर्भीक और कर्मठ युवक है। संवेदनशील कलाकार होने के नाते वह प्रत्येक प्राणी के हृदय की धड़कन समझता है। अपने समय की राजनीति और कूटनीति से भलीभांति परिचित है। उसके प्रति जागरूक भी है। इसी कारण उसने दो-टूक शब्दों में दूत को उचित और सटीक उत्तर दिया।

प्रजा की महत्ता प्रत्येक राजा को समझनी चाहिए। इसका उसने संकेत भी कर दिया है।

कलाकार कोई कायर प्राणी नहीं है। समय आने पर वह हथियार चलाने की सामर्थ्य रखता है। इसका परिचय उसके इस संवाद से लगता है।

इसकी भाषा अत्यन्त दृढ और कठोर है, पात्र की क्रोधःपूर्ण मनःस्थिति को उद्घाटित करती है। हृदय की सच्चाई से भाषा सहज और प्रभावशाली हो गयी है।

समाज, राजनीति और कूटनीति की जागरूकता की प्रेरणा यह संवाद देता है। अतः इसमें व्यक्त विचार आज भी प्रासंगिक हैं।

(7) ''वे सौन्दर्य के विधाता हजारों शिल्पी जिनकी आत्मा की तड़पन ही कलिंग-नरेश का अमोध वज्र है, जिनकी सुकोमल भाव-तरंगों को अत्याचारी की ठोकर ने आज महारोष का उत्ताल सागर बना दिया है।'' (पृ. 61)

प्रसंग– पूर्ववत्

संदर्भ– महामात्य चालुक्य का दूत शैवालिक जब महाराज नरसिंहदेव से आत्मसमर्पण करने के लिए कहता है, तब धर्मपद नरसिंहदेव से आज्ञा चाहता है कि वह चालुक्य की उद्दण्डता को चुनौती दे सके। धर्मपद विश्वासघात करने वाले

नीच पुरुषों की धमकियों की चिन्ता न करते हुए कहता है कि आज इस कठिन परिस्थिति में वे अकेले नहीं है– उनके पीछे ऐसी शक्ति है जिसके पीछे चलने से धरती भी थर्रा उठेगी। नरसिंहदेव धर्मपद को कोणार्क का दुर्गपति बना देते हैं। धर्मपद नरसिंहदेव को आदेश देता है कि वे मन्दिर के पिछले भाग में ही रहें क्योंकि वह एक सुरक्षित स्थान है। धर्मपद महाराज को बताता है कि हमारे निर्देशक और सेनापति बाहर खड़े हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। महाराज नरसिंहदेव धर्मपद से पूछते हैं कि वे कौन हैं। यह सुनकर धर्मपद उनसे कहता हैं–

व्याख्या– हमारे निर्देशक और सेनापति वे शिल्पी हैं जो सौन्दर्य के विधाता हैं, जिनकी आत्मा की तड़पन ही कोणार्क मन्दिर की भव्य मूर्तियों को तराशने में सहायक हुई हैं, जिन्होंने स्वयं को तिल-तिल जलाकर कोणार्क का निर्माण किया है। वे कैसे नरसिंहदेव को इस स्थिति में देख सकते हैं। वे किसी भी परिस्थिति में चालुक्य से भयभीत होने वाले नहीं हैं, उनमें अद्म्य आहस है वे कठिनाइयों का सामना करना जानते हैं। इन शिल्पियों की आत्मा की तड़पन ही कलिंग-नरेश की अचूक शक्ति है। इस शक्ति के होते हुए कलिंग-नरेश का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। उन शिल्पियों की सुकोमल भावनाओं और भाव-तरंगों को अत्याचारियों ने गहरी ठेस पहुँचाई है। यही कारण है कि उनका महारोष उत्ताल सागर बन गया है जिस का वेग अत्यधिक तीव्र होता है। शिल्पीगण अपनी इस असीम शक्ति के बल पर चालुक्य का सामना करेंगे।

विशेष– संवाद अर्थपूर्ण और संक्षिप्त है। भाषा प्रवाहपूर्ण और प्रभावशाली है।

(8) **''आज शिल्पी पर अत्याचार का प्रहार हो रहा है। कला पर मदाधता टूट पड़ी है। सौन्दर्य को सत्ता पैरों के तले रौंद रही है। और कोणार्क- आपका सुनहरा सपना, जिस घौंसले में आपके अरमानों का पंछी बसेरा लेने जा रहा था- वही कोणार्क, एक पामर, अत्याचारी के हाथ का खिलौना बन जाएगा। आतंक के हाथों में जकड़ी हुई कला सिसकेगी। वही कारीगर की सबसे बड़ी हार होगी, सबसे भारी हार।''** (पृष्ठ 76-77)

प्रसंग– यह गद्य-खण्ड तृतीय अंक से लिया गया है। शेष पूर्ववत्।

सन्दर्भ– कोणार्क मन्दिर पर अत्याचारी चालुक्य ने रात को आक्रमण कर दिया है। धर्मपद को जैसे ही इसकी सूचना मिलती है वैसे ही वह युद्ध के लिए तैयार हो जाता है। इसके पिता विशु उसे रोकने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु धर्मपद अन्याय के सामने कभी भी झुकने वाला नहीं है। वह मोह-ममता को अपने कर्त्तव्य और अधिकार के सामने तुच्छ समझता है। इसीलिए अपने ओज-भरे शब्दों में वह विशु से कहता है–

व्याख्या– चालुक्य के अत्याचार और अन्याय की आज अन्तिम सीमा है क्योंकि उसने युद्ध-नियमों के विरुद्ध रात को कोणार्क मन्दिर के कोने में सेंध लगाकर आक्रमण कर दिया है। यह शिल्पियों और कलाकारों पर उसका अन्तिम प्रहार है। वह वास्तव में कला का गला घोंटना चाहता है। उसने सत्ता के लालच में अपने अधिकारों का गलत प्रयोग किया है। कला और सौन्दर्य पर किसी का जन्मजात अधिकार नहीं है। आज कला और सौन्दर्य को सत्ता के घमंड से खतरा पैदा हो गया है। वह उन्हें कुचल देना चाहता है। जिस कोणार्क मन्दिर को बनाने के लिए शिल्पियों ने इतनी मेहनत और वर्षों का समय लगा दिया, जब कोणार्क का स्वप्न साकार हुआ ठीक उसी समय राजराज चालुक्य ने कृतघ्न बनकर उस मन्दिर को नष्ट करना चाहा है। मैं आपके इस मूर्तिमान स्वप्न को कभी नष्ट नहीं होने दूँगा। अन्यथा आज कला और सौन्दर्य आंतक और अत्याचार के चंगुल में फँसकर निर्जीव होने लगेगी। यदि ऐसा हुआ तो कलाकार की सबसे बड़ी पराजय यही होगी। मैं इस अन्याय का बदला लूँगा और दिखा दूँगा कि संवेदनशील कलाकार अत्याचारी के हाथों में कभी नहीं आ सकता।

विशेष– धर्मपद कलाकार के प्रति पूर्णतः और ईमानदारी से समर्पित है। हमारे अधिकार और कर्त्तव्य की रक्षा करना और उनका निर्वाह करना बहुत अच्छी तरह जानता है। संवदेनशील होने के साथ-साथ वह कर्मठ और वीर योद्धा भी है। इन सब विशेषताओं का परिचय इस गद्य-खण्ड से मिलता है।

कला और सौन्दर्य किसी की सम्पत्ति नहीं हैं। अत्याचारी की तो बिल्कुल भी नहीं। धर्मपद का निर्णय सही है कि हममें अपनी कला का रक्षा स्वयं करने की क्षमता होनी चाहिए।

संवाद परिस्थिति के अनुसार अत्यन्त प्रभावशाली और चरित्रों के मनोभावों और मुद्राओं को व्यक्त करने में सहायक है। भाषा ओजपूर्ण, वाक्य छोटे-छोटे किन्तु गहन भाव-गरिमा को लिए हुए हैं।

रंगमंच की दृष्टि से भी यह अत्यन्त प्रभावशाली और चरित्रों के मनोभावों और भुद्राओं को व्यक्त करने में सहायक है। इस संवाद के द्वारा नाटक की अन्तिम परिणति का संकेत भी मिल जाता है। कला और सौन्दर्य की सुरक्षा का आश्वासन भी कलाकार स्वयं दे जाता है। प्रधान-शिल्पी विशु के आगामी कार्यकलाप को एक प्रकार से नया प्रकाश इसी ओजपूर्ण संवाद से मिलता है।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों को ध्यानपूर्वक पढ़कर अपनी पाठ्यपुस्तक और अध्ययन सामग्री के आधार पर उनके उत्तर लिखिए-

1. जगदीश चन्द्र माथुर का साहित्यिक परिचय बताते हुए 'कोणार्क' के कथानक की समीक्षा कीजिए।

2. सप्रसंग व्याख्या कीजिए–

''पत्थर का यह मन्दिर आज कल्पना के स्पर्श से हवा की तरह गतिमान, किरण की तरह स्पर्शहीन, सुगन्ध की तरह सर्वव्यापी हो रहा है। लेकिन ..... लेकिन धरती उसे जकड़े हुए है ईर्ष्या से। .....मुझे लगता है जैसे अनजाने ही हम लोगों ने पृथ्वी और आकाश के बीच संघर्ष खड़ा कर दिया है।''

3. कोणार्क में इतिहास और कल्पना का विवेचन कीजिए।

4. निम्नलिखित गद्यांश की सप्रसंग व्याख्या कीजिए–

''बरसों की खोयी निधि पा रहा हूँ, सोमू! .....कैसे उसे बताऊँगा? मुझे तो वह जानता नहीं, पर जान लेने पर क्या सोचेगा वह ? ..... शायद ..... शायद (विकल मुद्रा) ओह, सोमू। बरसों गुफा के अंधेरे के बाद यह बेदर्द उजाला क्या मुझे अन्धा बनाकर रहेगा?''

5. कोणार्क की अभिनेयता की समीक्षा कीजिए।

6. निम्नलिखित गद्यांश की सप्रसंग व्याख्या कीजिए–

''देवमूर्ति भी गिरेगी और शिखर भी। और फिर ..... (पुनः कुदाली का आघात) और फिर मन्दिर की सारी छत और दीवारें नीचे गिर पड़ेंगी, मेरे ऊपर, इन नीच विश्वासघातियों के ऊपर (अट्टहास और आघात) कोणार्क टूटेगा, टूटेगा-हा-हा-हा-''